डाक-पंजीयन म.प्र./भोपाल/4-472/2024-26
पोस्टिंग दिनांक : प्रतिमाह दिनांक 2 से 3, पृष्ठ सं. 140
प्रकाशन दिनांक : 1 से 1 प्रतिमाह

आर.एन.आई क्र. : 38470/83
आई.एस.एस.एन. क्र. : 2456-7167

मूल्य 50/-

42 वाँ वर्ष

अक्षरा

226

जनवरी 2024

साहित्य की मासिकी

साधो सबद साधना कीजै
अजित वडनेरकर

स्तंभ
अजहर हाशमी, रामेश्वर मिश्र पंकज, कुसुमलता केडिया

अनुवाद
विभा खरे

आलेख
राजनारायण बोहरे, स्मृति शुक्ल

आत्मकथ्य
गंगा प्रसाद बरसैंया

प्रसंगवश
प्रकाश मनु, गिरीश पंकज

कहानी
शकुन्तला कालरा, संतोष श्रीवास्तव, सुषमा मुनीन्द्र, सुदर्शन वशिष्ठ कुसुम रानी नैथानी, प्रमोद भार्गव, धनेश दत्त पाण्डेय, तपेश भौमिक

अक्षरा
अंक-226
मूल्य 50/- रुपये

वरिष्ठ छायाकार
जगदीश कौशल

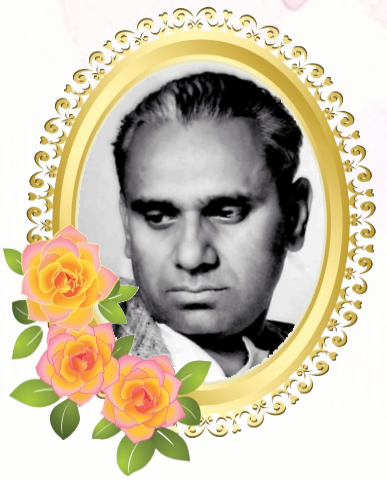

श्री केशवचन्द्र वर्मा

जन्म : 23 दिसम्बर 1925
प्रयाण : 25 नवम्बर 2007

श्री केशवचन्द्र वर्मा का जन्म 23 दिसम्बर 1925 को उत्तर प्रदेश के फैजाबाद में हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा फैजाबाद में पूरी करने के बाद उन्होंने उच्च शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्राप्त की थी। स्वतंत्रता के बाद हिंदी में हास्य व्यंग्य की विधा को साहित्यिक प्रतिष्ठा दिलाने में अग्रणी रहे। श्री केशवचन्द्र वर्मा जी द्वारा रचित हास्य नाटक, व्यंग्य उपन्यास, निबंध, कथा–कहानी और कविताएँ बहुत चर्चित हुए। संगीत और कला लेखन के क्षेत्र में भी उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। संगीत नाटक अकादमी लखनऊ से प्रकाशित 'छायानट' पत्रिका का संपादन भी वर्मा जी ने किया था। श्री वर्मा जी का रचना संसार बहुत समृद्ध है। उनके द्वारा रचित कुछ प्रमुख कृतियों का विवरण इस प्रकार है :– व्यंग्य उपन्यास–आँसू की मशीन, मोहब्बत मनोविज्ञान और मूँछ दाढ़ी, काठ का उल्लू और कबूतर, व्यंग्य कथा–निबंध लोमड़ी का माँस, प्यासा और बेपानी के लोग, मुर्गछाप हीरो, अफलातूनों का शहर, वृहन्नला का व्यक्तव्य, गधे की बात, हड़ताली बाबू, आधुनिक हिंदी हास्य व्यंग्य, कविता संग्रह–झरबेरिया, वीणापाणि के कंपाउंड में, उज्जवल नीलरस, समर्धा रति। हास्य नाटक–रस का सिरका, चिड़ी के गुलाम, अभिज्ञान शाकुंतल (भाग–2) अन्य शार्टकट की संस्कृति, भारतीय नृत्य कला, कोशिश संगीत समझने की, समसामयिक संगीत का परिवेश, शब्द की साख इत्यादि।
श्री केशवचन्द्र वर्मा जी का यह दुर्लभ फोटो 55 वर्ष पुराना है जिसे भोपाल के सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध छायाकार श्री जगदीश कौशल ने दिनांक 14 अप्रैल 1968 को आकाशवाणी केन्द्र, इलाहाबाद में क्लिक किया था।

अक्षरा

226

यू.जी.सी. द्वारा मान्यता प्राप्त
42 वाँ वर्ष

मनोज श्रीवास्तव
प्रधान सम्पादक

जवाहर कर्नावट
प्रबंध सम्पादक

जया केतकी
सम्पादन सहयोग

सुधा बाथम
अक्षर–संयोजन

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 500 रुपए
दस वर्षीय सदस्यता शुल्क : 5000 रुपए
एक प्रति 50 रुपये
विदेशों के लिए : एक अंक : 10 डॉलर, वार्षिक : 120 डॉलर
चेक या ड्राफ्ट 'म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति- 'अक्षरा' के नाम देय
ऑनलाइन पेमेंट के लिये- इंडियन बैंक, हिन्दी भवन शाखा, भोपाल
Ac/ No. 50413818696, IFSC- IDIB000T610

सम्पर्क : म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल - 462002 (म.प्र.)
दूरभाष : 0755- 2660909, (लेखाविभाग-2661087)
ई-मेल - **myakshara18@gmail.com**
hindibhawan.2009@rediffmail.com
वेबसाइट - **www.akshara.page, www.madhyapradeshrashtrabhasha.com**

यह गणतंत्र दिवस का माह है। इसी माह राममंदिर का उद्घाटन भी है। यह हमारे गणतंत्र की खूबी है कि हमने पूरे संवैधानिक धैर्य के साथ एक अत्यंत ध्रुवीकरणकारी मुद्दे को सुलझाया है।

और यह अंक हमने कहानी विशेषांक के रूप में भी चुना है क्योंकि कहानियों से हमारे जनगण का एक आदिम जुड़ाव–सा है। रामकथा की व्याप्ति तो हमें सहस्त्राब्दियों से प्रेरणा दे रही है। तब मैं सोचने लगा कि कथा का कोई रिश्ता हमारी गणतांत्रिकता से भी है क्या? मुझे याद आया कि तेलंगाना में बराकथा और जंगमकथा पर तत्कालीन ब्रिटिश मद्रास सरकार और निज़ामशाही ने बैन लगाया था क्योंकि उनके जरिए सामंती और औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध असंतोष फैलाया जा रहा था। प्रारंभ में बिरसा मुंडा भी कथावाचक थे, कालीचरण ब्रह्मा भी। ज़िम्बाब्वे में औपनिवेशिक सरकार ने कथावाचकों की गिरफ़्तारी के आदेश दिए थे। कत्थक, कथकली, यक्षगान, ओडिसी, भरतनाट्यम में नृत्य के माध्यम से कही जाने वाली कथाओं से साम्राज्यवादी सरकार की मुठभेड़ हुई और भारतीय नृत्यों का सार्वजनिक प्रदर्शन इन उपनिवेशकों ने बंद करवाया। मध्यकाल में यही हुआ था जब तुलसी ने रामकथा के ज़रिए भारतीय पौरुष को और सूर ने गोपियों के ज़रिए भारतीय स्त्री के भीतर के लोहे को जगाया था। यानी कथा प्रतिरोध और क्रांति, रेसिस्टेंस और रिवोल्यूशन में काम आई है क्योंकि वह प्रश्न करना, संदेह करना सिखाती है।

रामचरित मानस में एक प्रसंग आता है जब अंगद कथा में बताई सत्ताओं के सतही अर्थ ही समझने वालों को मूर्ख कहते हैं। वे रावण को कहते हैं –

राम मनुज कस रे सठ बंगा।
धन्वी कामु नदी पुनि गंगा।
पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा।
अन्नदान अरु रस पीयूषा।।
बैनतेय खग अहि सहसानन।
चिंतामनि पुनि उपल दसानन।।
सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा
लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा।।

कि क्यों रे दुष्ट मूर्ख राम क्या मनुष्य हैं? कामदेव धनुर्धारी हैं? गंगा नदी हैं? कामधेनु पशु हैं? कल्पतरु वृक्षारोपण? अमृतरस कोई अन्नदान जैसी चीज़ है? गरुड़ पक्षी हैं? शेषनाग सर्प हैं? चिंतामणि कोई पत्थर है? राम की अकुंठ भक्ति कोई लाभ है?

यहाँ कहा क्या जा रहा है? पूछा क्या जा रहा है? कथा या आख्यान इसीलिए ज्ञानात्मक है, यह आमंत्रित करती है कि हम समझें प्रकट के भीतर अगोचर क्या है? व्यक्त के भीतर अव्यक्त क्या है? अभिधा के भीतर लक्षणा और व्यंजना क्या है? रूप के भीतर का रूपक क्या है? यह कौन से मेटाफर हैं जो रावण की नजर में मर गए हैं? जिस संस्कृति ने ऐसे पैराबल, ऐसे आख्यान तैयार किए थे, उस संस्कृति को आज यदि इन्हें ही समझने में कठिनाई होती है तो कमोबेश उसकी हालत भी रावण की तरह ही होने वाली है, अंगद के बहाने तुलसी रावण को नहीं हमें सतर्क करते हैं।

ये सब इमेज जितनी चाक्षुष हैं, उतनी अवधारणात्मक भी। रावण इनके भीतर के स्कीमा को नहीं समझता। सिर्फ संरचना पर अटककर रह जाता है, यह एक गद्यात्मक मस्तिष्क की निशानी है। वह उस रूपक से संवेदना के रस को निकाल ही नहीं सकता। वह एक्सटेंशन में भटकता है, इंटेंशन की परवाह किए बिना। इसलिए टेंशन में रहता है। रावण के लिए इन प्रतीकों के देवता कूच कर गए हैं। एक संस्कृति है, जो इन आख्यानों के सहारे जीती है। उसकी विचार प्रक्रिया इन्हीं से बनी है। इन सबमें उसे एक आंतरिक संगति दिखती है। एक Systemacity, एक व्यवस्थापरकता। हमारी आधुनिक संस्कृति इन्हें मिथ कहती है, लेकिन मिथ शब्द जिस ग्रीक शब्द माइथोस से बना है, जिसका अर्थ है कहानी। पर क्या इन आख्यानों–कथाओं का सच हमारी आँखों से ओझल हो गया है? कि हमने माइथोस को लोगोस से भिड़ा दिया है। सत्य में कहानी छुपी है, कहानी में सत्य छुपा है। रावण को इनके कॉज्मिक मतलब समझ नहीं आते। वह इन्हें फेस वैल्यू पर ही लेता है। प्रो. सी.डब्ल्यू. लुइस का कहना था कि मिथक एक पर्वत है, जिसमें

से विभिन्न धाराएँ निकली हैं, जो घाटी में पहुँचते-पहुँचते सत्य होकर बहती है। रावण पर्वत को तो उठा लेता या उसकी कोशिश करता है, लेकिन घाटियों की गहराइयों में नहीं जा पाता। हमारी सभ्यता भी क्रमश: इन मर्मों की गहराइयों में बैठ पाने में कमजोर होती चली जा रही है। जरूरत है आख्यानों के मर्म के साथ अपने को एंगेज करने की। आख्यानों का मूल्य क्या है, यह पूछना चाहिए कि आख्यान में मूल्य क्या है।

बहरहाल बात लोक की लोकेशन की चल रही थी। खुदा न खास्ता एक बार यह उल्लेख फॉरवर्ड प्रेस और दिल्ली स्थित एक स्वनामधन्य विश्वविद्यालय के बुद्धिजीवियों ने थोड़े ठीक-ठाक तरह से कर दिया कि बिहार की एक असुर जाति स्वयं को महिषासुर का वंशज कहती है और वहाँ यह लोक आख्यान प्रचलित है कि दुर्गा एक सेक्स वर्कर थी, जिन्होंने नौ दिन महिषासुर से हनीमून मनाने के बाद छल से उसका वध कर दिया। अपनी पुस्तक 'अपराजिता' में मैंने इस तथाकथित लोक कथा की पूरी पड़ताल की है। बिहार के गुनगा जिले के एक गाँव में यह असुर जनजाति रहती है। इस पर 1995 से पहले तक की जो भी पुस्तकें या मोनोग्राफ लिखे गए, उनमें कहीं भी इस तथा-कथा का उल्लेख नहीं है। इसका उल्लेख तभी होना शुरू हुआ जब मिशनरियों ने इन्हें कन्वर्ट कर लिया। मेरे तो कान हनीमून शब्द पर ही बड़े हो गए थे, क्योंकि यह हनीमून की अवधारणा ही पाश्चात्य है, फिर इस कथा का फॉरवर्ड प्रेम जैसे मिशनरी संपर्क वाले पत्रों में छपना भी शंका पैदा करता था। मुझे यह लगा कि डेमनोलॉजी (दैत्यशास्त्र) तो यूरोप में भी है, तब वहाँ किसी ने डेविल के, सेटन के, लेबियाथन के, ल्युसीफर के, मैमन के, इन्क्यूबी के, बेहिमोथ के अंचल, बस्तियाँ, उनकी लोकेशन ढूँढ़ने की कोशिश क्यों नहीं की?

कभी आप इस पर भी ध्यान दें कि इस नई अमरिकन स्कॉलरशिप की कथाओं में बड़ी रुचि है। इन कथाओं के बीच में पुराणों द्वारा की गई तत्व मीमांसा की एकांत उपेक्षा कर देते हैं। इनकी बद्धमूल प्रतिज्ञा सी है कि इन्हें दर्शन की, फलसफे की पूरी तरह अनदेखी करना ही करना है। उनके हिसाब से दर्शन के लिए कथा नहीं रची गई है, कथा के लिए दर्शन का स्वांग किया गया है। कथा से ये लोग बहुत खुश होते हैं क्योंकि उनमें व्याख्या की हतप्रभ करने वाली मनमानियाँ चल सकती हैं। तब ये गणेश जी के द्वारा शिव जी का रास्ता रोकने पर माँ-बेटे के बीच में अवैध सम्बन्धों की भी परिकल्पना कर सकते हैं, ईडीपस ग्रंथि की भी। यदि पुराण-कथाओं में निहित दर्शनों की बात करेंगे तो वह भारतीय धर्म का प्रचार-विस्तार-प्रसार हो जाएगा। अत: उसके फलसफे की जगह फ्रायड की मदद लो, जो धर्ममात्र को ही ईडीपस ग्रंथि को नियंत्रित करने का प्रयास मानता था। पुराण इन लोगों के लिए ईसप की कहानियों की तरह हैं। कथा-संग्रह जैसे, पुराण और जातक कथाओं के बीच फर्क क्या था? क्या जातक कथाएँ बौद्ध पुराण कही जा सकती थीं? क्या पुराण हिंदू जातक कहे जा सकते थे? क्यों छांदोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों ने पुराण को पाँचवाँ वेद कहा? जातकों की बहुत-सी कथाएँ पंचतंत्र में भी मिलती हैं। लेकिन पाँचवें वेद और पंचतंत्र में फर्क है। वह फर्क पौराणिक कथाओं के मेटाफर होने से, एलीगी होने से, उनके दर्शन होने से उपजता है। गणेश जी के अस्थिचर्ममय देह पर इन बुद्धिजीवियों को रस आएगा, उनके आतिवाहिक शरीर, उनके हिरण्मय कोष पर इनकी कृपादृष्टि न होगी। ये गणेश के कर्णपट देखेंगे, उनकी श्रुति नहीं, ये गणेश जी की प्रतिभा पर बात नहीं करेंगे, प्रतिमा पर करेंगे और फिर भी आइडोलेट्री का आरोप हम भारतीयों पर लगाएँगे।

और फॉल्ट लाइन कुछ ऐसे भी निर्मित कर ली जाती है कि भारतीय शास्त्रों तथा लोक आख्यानों के संदर्भ में कथा परंपरा तो इनके शास्त्र और लोक के बीच ही द्वन्द्व पैदा कर दो। एक सज्जन का कहना है कि 'महाकाव्य सत्ता के आख्यान हैं, इनके समानान्तर लोक आयाम प्राचीन काल से हैं। इन आख्यानों का लक्ष्य आम लोक द्वारा अपनी पहचान दर्ज कराना ही नहीं' है, जीवन की नई परिभाषा देना भी है। 'ताकतवर' की सभ्यता द्वारा रौंदी गई भावनाओं का लोक आख्यानों में बार-बार पुन:सृजन हुआ है।' यह मनोरचना राहुल सांकृत्यायन तक में थी जब 'वोल्गासे गंगा में' वे वाल्मीकि को राजभक्त चाटुकार कह बैठे थे। लोक और शास्त्र के बीच आदान-प्रदान का संवाद और समन्वय इतना चलता रहा है कि पता करना मुश्किल है कि कब लोक आस्था शास्त्र का विस्तार बन गया और कब शास्त्र ने लोककथा को अपने उपाख्यानों में विन्यस्त कर लिया। कब लोक ने शास्त्र-कथा की पुनर्रचना अपनी संदर्भ-संवेदनशीलता के साथ की, कब शास्त्र ने वाचिक को लिखित में उतारा। यदि भट्टनारायण वेणीसंहार में महाभारत से छूट ले सकते हैं तो

पंडवानी या रामायनी के लोक आख्यान आज महाभारत और रामायण पर ही आधारित होने के बावजूद भी यदि उनसे किंचित भिन्न ट्रीटमेंट के हैं, यह उनकी रचनात्मक स्वतंत्रता है। वह विविधता है पर उनसे भिन्नता का डायलेक्टिक्स कैसे पैदा किया जा सकता है? श्रुति और स्मृति की परंपरा वाले देश में शास्त्र और लोक के बीच वैसे तनाव नहीं थे जैसे तनावों में, लोक से व्यवहारत: कटे हुए आधुनिकों और आधुनिकाओं को, रहने की आदत पड़ गई है। उनके बारे में वर्डस्वर्थ की पंक्ति ही सही लगती है- 'दे पीप एंड बॉटनाइज अपान देयर मदर्स ग्रेव' अपनी माँ की कब्र पर वनस्पतिशास्त्र!

लोक आख्यान और शास्त्रीय आख्यानों के बीच किसी तरह का गतिहीन सह-अस्तित्व हमारे देश में नहीं रहा है। भारतीय आख्यानों की एक विशेषता यह है कि उनका अर्थ भी जड़ नहीं है, बल्कि हर युग में उस पाठक, उस श्रोता को नए तजुर्बों की रोशनी देता है, जो स्वयं नए टेक्स्युअल रिश्ते विकसित कर रहा है। आख्यानों के लेखक मर चुके हैं, पर उनका पाठक, उनका सहृदय, उनका सामाजिक अमर हो गया है। लगता है जैसे इनके अर्थ का एक अमृतगर्भ है। इनके शब्द जैसे कालयात्री हैं, समय बीतने के साथ नई ऊर्जा से भरते जाते हैं। नए संदर्भों में वे आसानी से खुद को रिपोजीशन कर लेते हैं।

ये कहानियाँ जो इस अंक में शामिल हैं, हो सकता है कि उनमें से सभी अर्थ के स्तर पर उतनी श्लिष्ट न हों, पर यदि वे इकहरी भी हैं तो भी उन्हें उनकी सादगी में पढ़ा जाना चाहिए।

♦ ♦ ♦ ♦

यह माह राममंदिर के उद्घाटन का भी माह है। शताब्दियों से चले आए इस संघर्ष को अब जाकर सफलता मिली। यह संघर्ष तब तक चलना है जब तक असत् की शक्तियों की हठधर्मी चलती रहेगी। यह संघर्ष एक जन-संघर्ष होकर उभरा तो ही वह राम की शैली के अनुरूप हुआ। राम वंचितों के साथ खड़े होते हैं। बालि वध का प्रसंग देखिए।

राम उस अत्यन्त शक्तिशाली के साथ खड़े नहीं होते जिससे रावण भी युद्ध में परास्त और अपमानित हुआ था। सुन्दरकांड में हनुमान बालि से रावण की भिड़ंत की व्यंग्यात्मक याद दिलाकर रावण को चिढ़ाते भी हैं : 'समर बालि सन करि जसु पावा।' तो यदि राम का उद्देश्य रावण के विरुद्ध अपनी स्वार्थसिद्धि का होता तो उसमें उनका तार्किक सहयोगी, उनका नेचुरल अलाई बालि ही होता, सुग्रीव नहीं। उनके लिए बालि प्रस्तुत होता भी सहज और सुलभ। लेकिन राम 'डिस्पज़ेस्ड' को चुनते हैं। राम का बालि से कोई व्यक्तिगत द्वेष नहीं था लेकिन वंचितों को उनका हक़ दिलाने के लिए कृतसंकल्पित राम के लिए स्वार्थ नहीं, सिद्धांत महत्त्वपूर्ण था। राम की भगवत्ता और पुरुषार्थ सत्तासीनों का संघ बनाकर प्रतिपक्षी सम्राट से लड़ने में सिद्ध नहीं होनी थी। उनकी खासियत तो 'नृप दल मद गंजा' में है, वे राजाओं के समूह का गर्व चूर्ण करने वाले हैं। वे क्यों नहीं भरत से अयोध्या की सेना बुला लेते? वे बालि के साधनों से ही नहीं, अपने पितृराज्य की सम्पन्नता से भी विरत रहते हैं। उनकी तथाकथित शरणागति है क्या? वह डिस्पज़ेस्ड की, डिस्एडवांटेज्ड की मदद है। वह निर्वासित और बेदखल की सहायता है। वे जान-बूझकर यह कठिन रास्ता चुनते हैं। बल्लाल कवि ने भोज प्रबन्ध में शायद उन जैसों के लिए ही लिखा था- 'क्रियासिद्धि: सत्वे भवति महतां नोपकरणे' यानी महापुरुषों की कार्यसिद्धि सत्व से होती है, उपकरणों से नहीं। राम का सत्व क्या है। वे कमजोरों को एकता के सूत्र में बाँधते हैं। वे ठुकरा दिए गए लोगों के - कहें कि व्यवस्था के विस्थापितों के आश्वासन हैं। बालि तो व्यक्तिगत रूप से ही इतना समर्थ था कि राम को रावण से निपटने के लिए एक उसी का साहाय्य ही पर्याप्त था। लेकिन राम एक पद्दलित जनजाति का आत्म-गौरव बहाल करते हैं, एक पूरी जनजाति में स्फूर्ति पैदा करते हैं। किसी व्यक्ति-विशिष्ट की सहायता पाने की जगह वे वनवासियों के वृन्द को साथ लेते हैं। रावण अपराजेय नहीं था। सहस्त्रबाहु और बालि उसे हरा चुके थे। राम के लिए कूटनीति की माँग यह होती कि वे बालि को साथ ले लेते। अंगद तो तब भी उन्हें मिलता लेकिन राम कूटनीति की माँग का उत्तर देने नहीं आए, वे अपने आदर्श की माँग का उत्तर देने आए हैं। इस कारण कूटनीति के शॉर्टकट उन्हें नहीं लुभाते। सुग्रीव को बालि का पदाघात या विभीषण को रावण का पदाघात बंधुत्व की भावना को भूलकर लोगों को पद्दलित करने का रूपक है। ये पद्दलित लोग उस राम को अपना सहारा मानते हैं, जिसके पदस्पर्श से पाषाण में भी चेतना का संचार हो गया था।

राम ने जीवन में उस भूमिका को स्वीकार नहीं किया जो समाज ने उन पर थोपी थी। उन्होंने कैकेयी के वरों में अपनी एक नई पहचान निर्मित करने का अवसर देखा। उन्होंने राजवंश को यह मौका नहीं दिया कि वह उन्हें परिभाषित करे। उन्हें अपने चरित की स्थापना करनी थी। वे वंशगत विरासत को कबूल लेते तो उसके साथ उन सीमाओं को भी ढोते। उन्हें अपना एक 'पर्सोना' खुद रचना था। यदि वे उन सीमाओं को ढोते तो उन सीमाओं की सुविधा और सरलता में उनका न पुरुषार्थ सिद्ध होता, न भगवत्ता। वे जब अयोध्या से बाहर निकले तो वे एक राज्य की सरहदों से ही बाहर नहीं निकले; एक प्रदत्त भूमिका, एक परिनिर्मित व्यक्तित्व की सरहदों से भी बाहर निकले। उन्होंने जब वस्त्र बदले और तपस्वी के गैरिकवल्कल वस्त्र पहने तो उसकी तुलना गाँधी जी के उस सायास चयन से की जा सकती है जब उन्होंने बैरिस्टर के सूट, कोट, पैंट, टाई छोड़कर आम भारतीय की लँगोटी धारण कर ली थी। क्या यह कॉस्ट्यूम बदलना मात्र थियेट्रिकल था? विश्व रंगमंच पर राम का यह नाट्य, यदि कोई लीला थी भी तो इसलिए कि पिछली कतारों के लोग, आखिरी आदमी उनसे आईडेन्टिफाई कर सकें। यह एक तपस्वी का आइकॉन है। रामचरितमानस की कथा बायोग्राफी नहीं है, वह जन-समर्थन को उत्तीर्ण करने के लिए एक राजकुमार द्वारा अपने आप को पुनरान्वेषित करने की कथा है। यह राजतंत्र के बीच जनतंत्र की स्थापना है जहाँ जन एक मैनीपुलेट किया जा सकने वाला वोट नहीं है बल्कि वह संघर्ष में अपने नायक के साथ-साथ हैचेग्वारा से लेकर आज तक कई जनसंघर्ष गुरिल्ला युद्धों के बीच पनपे हैं। बालि से राम का किंचित् छिपकर युद्ध करना उसी गुरिल्ला युद्ध का रूपक है।

राम ने जिस दिन वनगमन का निर्णय किया, उस दिन से उन्होंने अपने व्यक्तित्व की कमान अपने हाथ में ली उन्होंने प्रमथ्यु की तरह कोई डिफाएंस नहीं किया बल्कि उस संपूर्ण घटनाक्रम को आज्ञापालन की तरह दर्शाया। हालाँकि दशरथ तो उन्हें दूसरी आज्ञा दे चुके थे लेकिन राम ने पालनीय आज्ञा के निर्वाचन का विकल्प अपने पास रखा और अपने व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया का नियंत्रण अपने हाथों में ले लिया। कभी पिता तो कभी गुरु विश्वामित्र की आज्ञा की छाया में अभी तक चलते आए राम के पास अब वह चयन का क्षण (मोमेंट ऑफ़ च्वॉइस) आकर खड़ा होता है और राम अपना डिस्पज़ेशन चुनते हैं। वे वंचित होते हैं ताकि वंचितों के साथ सहानुभूति कर सकें। उनका पहला स्वचेतन निर्णय तक जब स्वअर्थ का नहीं था तो सुग्रीव से मैत्री कैसे स्वार्थपूर्ण हो सकती थी? जब तक राम के पास सीता की शक्ति थी तब तक उन्हें कभी ओट लेने तक की ज़रूरत नहीं पड़ी, बाद में जनशक्ति साथ आ मिलने से भी वह नौबत कभी न आई, सिर्फ़ बालि के वक्त ओट ली गई लेकिन आज की कवर फायर के युग में युद्ध की उस स्ट्रेटेजी को समझना अधिक मुश्किल नहीं है। युद्ध के दौरान अब तो नित्य प्रति ही ओट ली जाती है और इस युग में रहते हुए हम राम के एक बार ओट ले लेने पर उनके प्रति कितने मोटिव्ज़ आरोपित कर लेते हैं।

राम में बालि से लड़ने की शक्ति और सामर्थ्य है, यह तो वे सुग्रीव को एक ही बाण से अनेक वृक्षों का छेदन करके बता देते हैं। उनकी ईमानदारी कोई भोंथरा हथियार नहीं है जैसा कि रॉबर्ट ग्रीन ऑनेस्टी के बारे में कहते हैं कि वह एक ब्लंट औजार है। उसमें धार है और बस वही तो है। वृक्षच्छेदन उसी बात का प्रतीक है-'सारा लोहा उन लोगों का/अपनी केवल धार'। लेकिन गुरिल्ला युद्ध की तकनीक में सफल होकर ही हम वह आत्मविश्वास अर्जित करते हैं कि उसे जन अभियान का रूप दे सकें। वरना जिन पेड़ों को उन्होंने छेद दिया, उन्हीं पेड़ों के पीछे छुपने की क्या जरूरत थी? वह छुपना दिखाई देता है, वह छेदन दिखाई नहीं देता क्यों राम इस महाबाहुबली व्यक्ति के शक्ति-साम्राज्य को नहीं चुनते? क्यों वे निर्वासित और निष्कासित, खदेड़ दिए गए और विस्थापित लोगों के समुदाय को चुनते हैं? एक व्यक्ति की जगह एक समुदाय को चुनने का अर्थ धर्म की सामुदायिकता की स्थापना में है। मैं धर्म की संस्था नहीं कह रहा हूँ; मैं इसे धर्म के समाज के रूप में देखने को कह रहा हूँ। ईसा ने प्रभु के राज्य की बात की थी यह प्रभु का समाज है। धर्म को वैयक्तिक मोक्ष के साथ-साथ सामाजिक रूप से भी साथ होना है। यह बुद्ध का संघ नहीं है, यह चर्च भी नहीं है। इस रूपक में ज़ोर सांस्थानिकता पर नहीं है, सामुदायिकता पर है। समस्याएँ ऊपर-ऊपर भी सुलझ सकती हैं लेकिन सामाजिक सहभागिता के बिना वे सिर्फ़ थोपी हुई निर्मितियाँ रह जाएँगी और सशक्तीकरण का कोई अहसास लोगों में पैदा न कर सकेंगी। राम अन्ततः दीपावली की संस्कृति के सूत्रधार बने थे। वे अकेले अपना दीपक लेकर नहीं चलते, वे तो दीप की पंक्ति बनाते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि उन वनवासियों के भीतर एक विलक्षण आलोक

है। उनके देवांश होने का पैराबल यही है कि वे भी अपने भीतर चिंगारी रखते हैं और उन्हीं को एक पंक्ति में बाँधना राम का काम है। यहाँ भी वे उस तरह का विकेन्द्रीकरण नहीं करते हैं कि जिसमें आम आदमी एक पूर्व निश्चित पैकेज का वाहक या कुली बनकर रह जाए। वे उन्हें जिम्मेदारियाँ सौंपते हैं और नक्शा (या नुस्खा) भी नहीं देते। तब जाकर उन लोगों में आत्मशक्ति की चेतना जागृत होती है जिसे जाम्बवान के द्वारा हनुमान को उनकी शक्ति याद दिलाने से इंगित किया गया है।

कांट कहते थे कि अच्छा जीवन जीने की इच्छा रखने वालों को एक साथ आकर एक 'नैतिक राष्ट्रमंडल' (एथिकल कॉमनवेल्थ) बनाना होगा। राम वही करते हैं। लेकिन जैसा कि कांट ने कहा कि यह राष्ट्रमंडल भी सच्चे धर्म की अनुभूति के लिए अपने आप में अपर्याप्त आधार है और उसे इस अतिरिक्त विश्वास की आवश्यकता है कि कोई एक ही सत्ता, कोई एक ही स्त्रोत, उनके कि कमांड्स' के मूल में है, कोई ईश्वर है जो उन सभी को एक साथ निर्देशित कर रहा है। राम और वानरों के समुदाय के प्रसंग में यही सन्देश चरितार्थ होता है। रावण को हराने से राम बड़े नहीं हुए जैसे बालि बड़ा नहीं हुआ, सहस्त्रबाहु नहीं हुआ। राम तब राम हुए जब उन्होंने वानरों-रीछों का साथ लिया। रावण की पूर्व पराजयों और इस पराजय में यही अंतर है। इसकी सामाजिक सार्थकता स्पष्टत: अधिक है।

अब उसके पूर्व हुए एक और विवादास्पद कृत्य की चर्चा कर लें। शूर्पणखा का अंग-भंग। उसे भी राम का 'पाप' कहा जाता है। ऐसे कि जैसे शूर्पणखा राम के पास न आई हो, राम स्वयं उसके पास गए हों। आरोप यह है कि जब उसने प्रेम प्रस्ताव किया तो राम उसे शिष्टतापूर्वक मना कर देते, उसे लक्ष्मण को 'रेफर' करने और उसके नाक-कान कटवाने की अत्यन्त उग्र प्रतिक्रिया की क्या ज़रूरत थी? कुछ लोग कहते हैं कि सीता अपहरण और राम युद्ध की नींव यहीं पड़ी अतुल अजनबी का एक शेर है-बुनियाद साज़िशों में यक़ीनन शरीक थी/वरना फिर ऐसे कैसे ये दीवार गिर गई आज के फ्री सेक्स के ज़माने में राम की प्रतिक्रिया कुछ-कुछ तालिबानी लगती है। मॉरल सेंसरशिप की अति। लेकिन कुछ चीज़ों पर ध्यान धर लेंसेक्स की स्वच्छन्दता और स्वैराचार जिसका रूपायन शूर्पणखा में होता है, तुलसी के जान-बूझकर किए गए प्रयास की तरह तो नहीं, कविता के अपने दबाव से उस प्रसंग में अंकित हुआ है-मनु माना कछु तुम्हहि निहारी सेक्स का मनमानापन। राम जो अंतर्यामी हैं क्या शूर्पणखा उन्हें धोखा दे सकेगी? शूर्पणखा निम्फोमैनिआक है, यह तो इसी से स्पष्ट है कि वह 'देखि बिकल भइ जुगल कुमारा' यह दोनों राजकुमारों को देखकर काम से पीड़ित होती है। यह अस्वाभाविक है ही, साथ ही निष्ठा के अभाव का भी परिचायक है। ये दोनों भाई अपनी इंडीविजुअलिटी में उसके लिए महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, उनकी इयत्ता का उसके मन में कोई सम्मान नहीं है। उसे तो अपनी भूख मिटाना है। इसलिए राम यदि लक्ष्मण के पास या लक्ष्मण उसे राम के पास रेफर करते हैं तो वे उसका मज़ाक उड़ाने का आरंभ नहीं करते। यह शुरुआत तो स्वयं शूर्पणखा ने की कि जब वह दोनों को ही देखकर काम-अग्नि से दग्ध हो गई।

तुलसी इसी कारण उसका परिचय 'दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी' के रूप में कराते हैं। बात इस हृदय की ही है। रूप की नहीं। रूप तो शूर्पणखा ने शृंगार प्रसाधन की माया से सुन्दर बना ही लिया था 'रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई।' ईश्वर के पास रूप धरकर जाओगे? ईश्वर रूप का सम्मान करेगा कि हृदय का? ईश्वर के यहाँ 'धारे हुए' रूप का आई कार्ड नहीं चलता। शहनाज़ हुसैन के ब्यूटी पार्लर वहाँ काम नहीं आते। ईश्वर रूप-सौन्दर्य धारण करने वालों के द्वारा वरा नहीं जाता, वह तो उनके द्वारा वरा जाता है जो 'सुन्दरता कह सुन्दर करई', जो सौन्दर्य को भी सुन्दर करती है। सीता। ईश्वर के सामने यह रूप धारण करना क्या है? सुन्दरता के एक बने-बनाए स्टीरिओटाइप से चलना। प्रभु भक्ति की नींव हृदय में धरें न धरें, फाउंडेशन तो लगाएँगे ही। तो शूर्पणखा ने फेशियल किया, आर्टिफिशियल नेल्स किए। ईश्वर जो सभी रंगों का निर्माता है वह आपका काम्प्लेक्शन देखेगा? कि काम्प्लेक्शन की चिन्ता करने वाली का काम्प्लेक्स या ग्रंथि देखेगा? सौन्दर्य के प्रोडक्ट क्या सुन्दरता के उत्पादक हैं? वे बाज़ार के प्रोडक्ट हैं। शूर्पणखा ने क्या कास्मेटिक सर्जरी करवाई होगी? एंटी रिंकल क्रीम लगवाई होगी? डाई किया होगा? हेयरस्प्रे किया होगा? ये सब वैनिटी प्रयास किए होंगे। यह अंग्रेज़ी का वैनिटी शब्द जितना 'प्रसाधन' अर्थ के लिए सच है, उतना ही उसके दूसरे अर्थ 'अहंकार' के लिए भी। तो अहंकार आ ही गया तत्कालीन मिस वर्ल्ड, मिस यूनिवर्स में। न मो सम नारी। लेकिन वैनिटी (प्रसाधन/अलंकृति) 'वेन' (व्यर्थ) ही होती है।

शूर्पणखा शब्द में 'नखा' है। मदाम को अपने नखों पर/नाखूनों पर भी गर्व होगा। मैनीक्योरिस्ट की सेवाएँ ली होंगी। नकली प्लास्टिक टिप लगाई होगी, उन्हें एक्रिलिक केमिकल से रंगा होगा, उनकी सिल्क रैपिंग की गई होगी, किसी क्रिस्टल जैल से उन्हें आकार दिया होगा, किसी नेल सिरम का इस्तेमाल किया होगा। डायमंड डस्ट वाला नेल बेस प्रयुक्त हुआ होगा। फिर पूर्णत: आश्वस्त होकर चली होंगी मदाम क्रुएलाचीन में अभी दिसम्बर 2004 में 'कृत्रिम सौन्दर्य' शो हुआ यह उन स्त्रियों के लिए था जिन्होंने चेहरे या शरीर पर प्लास्टिक सर्जरी करवाई थी। शूर्पणखा भी 'रुचिर रूप धरि' चली। उसका जादू चल भी जाता। लेकिन सामने पड़ गए प्रभु और वैराग्य की प्रतिमूर्ति लक्ष्मण। अपने शृंगार दर्प में मोहतरमा बोलीं–'मनु माना कछु तुम्हहि निहारी।' जिन प्रभु को देखकर सबका मन सम्पूर्णत: केन्द्रित और समर्पित हो जाता है, उन प्रभु पर 'कुछ' का अहसान। अब तुमको देखकर कुछ मन माना है। माने तुम भी मेरे मन की पूरी एकाग्रता के पात्र नहीं हो, लेकिन हाँ, चल जाओगे। शूर्पणखा की भाषा एक्सीडेंटल नहीं है। वह राम के पास संस्कृति के साथ नहीं जा रही, कि वह राम के साथ पाणिग्रहण संस्कार करना चाहती हो, तुलसीदास ने इस पूरे प्रसंग में उसे अपने कौमार्य के बारे में चिन्तित बताया है, न कि विवाह के बारे में 'ताते अब लगि रहिउँ कुमारी'।

इसलिए मैथिलीशरण गुप्त ने जब पंचवटी में यह कहलाया कि 'पाप शान्त हो पाप शान्त हो/ कि मैं तो विवाहित हूँ बोले/किन्तु क्या नहीं पुरुष होते हैं/दो–दो दाराओं वाले' तो वे तुलसी के इस घटनाचक्र को भूल गए जहाँ बात पाणिग्रहण संस्कार की नहीं थी, भोग की थी। संस्कृति की ओर से शूर्पणखा आती तो स्वयं राम को पिता की याद न आती जिनकी तीन रानियाँ थीं। शूर्पणखा प्रकृति की ओर से भी नहीं आई क्योंकि एक तो उसने अपने प्राकृतिक और नैसर्गिक रूप को छिपाया, दूसरी बात सिर्फ़ उसकी 'जैविक ज़रूरत' की भी नहीं थी क्योंकि वह तो दोनों राजकुमारों को देखकर कामदग्ध हो गई। वह न संस्कृति की प्रतीक थी, न प्रकृति की। वह सिर्फ़ विकृति की प्रतीक थी कि राम और लक्ष्मण जहाँ सिक्के की तरह खर्च होते हैं। एक्सचेंज होते हैं। वे वस्तुओं की तरह इंटरचेंजेबल हैं। अपनी विकृत भूख के चलते वह उन्हें पहचान न पाती, कोई बात नहीं थी लेकिन वह प्रभु को पदार्थ में बदल देती है। वे 'डिग्रेडेड ऑब्जेक्ट्स आफ़ एक्सचेंज़' हैं। बात यह नहीं है कि प्रभु राम उन्हें लक्ष्मण के पास रेफर करते हैं। बात यह है कि वह रेफर होने पर यह आपत्ति नहीं करती कि नहीं, मेरा तो मन बस तुम पर आया है। वह तो पूरी बेहयाई से दूसरे के पास चली जाती है। जैसे पूँजीवादी विनिमय व्यवस्थाओं में वस्तुओं का बार्टर है, वैसे ही शूर्पणखा के जीवन–मूल्यों में पुरुष सेक्सुअलिटी भी एक पदार्थ (कमोडिटी) है जिसमें तू नहीं और सही की ही मौजमस्ती नहीं है, बल्कि किसी के भी व्यक्तित्व और इयत्ता का है अवधान और आदर नहीं है। यह तो सेक्स का एडिक्शन है जो राम–लक्ष्मण को राक्षसी लगता है। एक सज्जन को यह राम का झूठ लगता है जब वे शूर्पणखा को 'अहइ कुआर मोर लघु भ्राता' कहकर लक्ष्मण के पास भेज देते हैं। उनका कहना है कि लक्ष्मण कुँआरे नहीं थे, उनकी उर्मिला से शादी हो चुकी थी। फिर उन्हें कुमार कहने का क्या मतलब? ये सज्जन दो चीज़ें नहीं देखते हैं। एक कि कुमार शब्द का प्रयोग राजकुमार के अर्थों में है 'देखि विकल भइ जुगल कुमारा' में हुआ तो 'अहइभ कुआर' का अर्थ 'ये राजकुमार' के रूप में भी होत सकता है।

दूसरे, स्वयं शूर्पणखा जब विवाहिता होते हुए भी राम से यह साफ़ झूठ बोल देती है –कि तातें अब लगि रहिउँ कुमारी, तो राम के यह कहने में हर्ज क्या है कि जैसे तुम कुमारी हो, वैसे ये कुमार हैं। फोर्ड बैचलर। जो औरत अभी–अभी यह बोल रही कि 'तुम्ह सम–सम पुरुष न मो सम नारी/यह संजोग विधि रचा विचारी', वह अब लक्ष्णम से एक्सचेंज पर तैयार हो गई। ऐसी स्त्री के राक्षसी स्वभाव को क्या राम लक्ष्मण नहीं पहचान गए होंगे। लक्ष्मण ने 'रिपु भगिनी जानी' के बावजूद भी मृदुलता से ही उसे टरकाया। उन्होंने उसे राम का असली परिचय भी दिया। प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। लेकिन तब भी उस दुर्बुद्धि को समझ में न आया। राम–लक्ष्मण ने कुछ छुपाया नहीं, न उसे भ्रमित किया। हालाँकि उसकी परीक्षा लेकर उसके राक्षसत्व की पुष्टि अवश्य कर ली। तब जाकर शूर्पणखा अपनी वाली पर आती है, अपनी असलियत पर, अपनी औक़ात पर। 'रूप भयंकर प्रगटत भई' उसका पाखंड खुल गया। जो शृंगार की स्मोकस्क्रीन थी उसे भेदकर भीतर की कुरूपता सामने आ गई। यही शूर्पणखा जब रावण को अपनी पीड़ा सुनाती है, तो वह रति–दान की अपनी प्रार्थना और प्रयास का उल्लेख अपने भाई

से नहीं करती। वह राम-लक्ष्मण को स्त्री पर हाथ उठाने वाले कायर भी नहीं कहती जैसे कि आजकल के कुछ सज्जन लोग कहने लगे हैं वह उन्हें 'पुरुष सिंघ बन खेलन आए' ही कहती है। अपनी सेक्सुअल अभिप्रेरणाओं का उल्लेख अपने भाई से करने में संकोच हो या अपने प्रति अन्याय को एकतरफा बताने की मंशा हो, वह मूल घटना प्रसंग को गोल कर जाती है। वह राम-लक्ष्मण को 'परम धीर धन्वी गुन नाना, अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता' ही कहती है।

वह आधुनिक आलोचकों की तरह अपने भाई से यह नहीं कहती कि राम ने उसके स्त्रीत्व का अपमान किया है। वह रावण को यह कहकर भड़काती है कि 'सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा।' यह बात सिर्फ़ भड़काने की नहीं है कुछ हद तक सच भी है क्योंकि लक्ष्मण स्वयं उससे 'रिपु भगिनी' जानकर ही पेश आते हैं और उसे 'नाक, कान बिनु' करने में एक संदेश भेजते हैं ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्हि। रिपु भगिनी अपना दंड अपने दुष्कृत्य से अर्जित करती है लेकिन फिर भी वह प्रसंग एक माध्यम है और मार्शल मैकलुहान के शब्दों में मीडियम इज़ मैसेज तो शूर्पणखा के साथ वह सब करके लक्ष्मण चुनौती पेश कर ही देते हैं : ताके कर रावन कह मनौ चुनौती दीन्हि। उसके हाथ मानो रावण को चुनौती दी हो। शूर्पणखा राम रावण के बीच अकारण नहीं आ गई। अपनी हरकतों से वह माध्यम बनी। उसे सीता पर विशेष डाह रहा कि जिसके रहते राम ने उसे आँख उठाकर भी नहीं देखा बल्कि जब राम बोले भी तो 'सीतहि चितइ कही प्रभु बाता' के अनुसार सीता जी की ओर देखकर ही बोले। प्रसाधन, अलंकरण और कृत्रिमता 'प्रभु' में इतनी उत्सुकता भी नहीं जगाते हैं कि वे शूर्पणखा को एकबारगी देख भी लें। यह सीता के प्रति राम की निष्ठा और अनन्यता तो थी लेकिन इसका स्रोत सीता को समझकर शूर्पणखा ने रावण के मन में यह कहकर उत्सुकता जगाई कि 'रूप रासि विधि नारि सँवारी/रति सत कोटि तासु बलिहारी'। यह शूर्पणखा का बदला लेने का अपना तरीका था। रावण 'हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ' की बात कर शूर्पणखा की लगाई आग में जलना स्वीकार कर लेता है।

इस पूरे प्रसंग में (शूर्पणखा के बदले वाले) राम के नारी अत्याचार वाली थियरी को कहीं स्थान नहीं है। रावण सीता को इसलिए नहीं हरता कि वह शूर्पणखा के अपमान का मूल स्रोत थी बल्कि इसलिए कि वह सौ करोड़ रतियों से ज्यादा सुन्दर थी। रावण कहानी के उतने ही अंश से प्रेरित हो सकता था जितनी उसे सुनाई गई थी। जो उसे बताया ही न गया उसे रावण की प्रेरणा कैसे कहा जा सकता है? आलोचक चाहते हैं कि कलियुग में तो बलात्कार का प्रयास कटुतम रूप से दंडित हो, लेकिन त्रेता में उसे सहा जाना चाहिए क्योंकि वह नारी की ओर से था। रूप भयंकर प्रगट करने और सीता को डराने का आशय क्या था? लक्ष्मण-राम उसे दंडित नहीं करते यदि वह अपने इस भयंकर रूप में आती नहीं क्योंकि उसके पूर्व तो उसे मृदुता से टरकाने की बात चल रही थी। उसके लगातार आग्रह ने लक्ष्मण को उसे प्रकारान्तर से निर्लज्ज कहने की प्रेरणा दी। लेकिन उसे भी वश में करते हुए लक्ष्मण ने इतना ही बोला कि तुम्हें वह चुनेगा जो तृण तोड़कर लज्जा को त्याग देगा। अब शूर्पणखा के अमर्ष का क्षण आया। अब उसके अपनी असलियत में आने का क्षण आया। इसलिए बाद में वह लक्ष्णम के लाघव का शिकार बनी। अब उसे राम -लक्ष्मण के अस्तित्व का अर्थ भी समझ में आ गया। रावण को वह यही अर्थ बताती है। 'समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी/रहित निसाचर करिहहिं धरनी।' वह एक न झुकने वाली प्रतिरोधी सत्ता का उदय उनमें देखती है। राक्षसों के सामने खड़ी एक अदम्य ऊर्जस्वी चुनौती। वह राम को पापी नहीं कहती बल्कि 'खल बध रत' शब्दों द्वारा 'पापियों के बध करने वाले रूप' में उनका वर्णन करती है। इसलिए शूर्पणखा-प्रसंग को शूर्पणखा के पाप की तरह न देखकर राम-लक्ष्मण के पाप की तरह देखना सेक्सुअल परमिसिवनेस की हद है। शूर्पणखा की सी हरकतों को समाज-निर्मात्री हरकतें नहीं कहा जा सकता। शूर्पणखा आज की आधुनिकता की प्रतीक है, जितनी नक़ली उतनी आक्रामक।

राममंदिर हमें अपनी सनातनता में ले जाए, न कि इस चालाक आधुनिकता में।

(मनोज श्रीवास्तव)
राम-रज, 3-पारिका-फेज 2,
चूना भट्टी, कोलार रोड,
भोपाल-462016 (म.प्र.)
मो.-9425150651
ईमेल-shrivastava_manoj@hotmail.com

कहानी विशेषांक

अंक 226 जनवरी

अनुक्रम

सम्पादकीय

साधो सबद साधना कीजै

उम्र की इमारत/ **अजित वडनेरकर/11**

हिंदी एक विचार अनेक-1

हिंदी और हम/ **अजहर हाशमी/13**

धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित समाज शास्त्र - 10

धर्मशास्त्रों में ब्रह्मचर्य एवं गृहस्थ आश्रम / **रामेश्वर मिश्र पंकज/14**

सम्राट गय की महिमा और अगस्त्य लोपामुद्रा विवाह / **कुसुमलता केडिया/18**

अनुवाद

स्वतंत्रता के लिए मैं मरने को तैयार हूँ (**मूल : नेल्सन मंडेला**) / **अनु. विभा खरे/21**

आलेख

सदी के आखिरी दशक का कथासाहित्य / **राजनारायण बोहरे/31**

कहानी आंदोलनों से गुजरती हिंदी कहानी/**स्मृति शुक्ल/38**

प्रसंगवश

स्वामी विवेकानंद : गौरव के प्रतीक / **प्रकाश मनु/44**

श्रीकृष्ण सरल, जीवित शहीद थे / **गिरीश पंकज/50**

आत्मकथ्य

कच्ची भूमि का पैदल यात्री / **गंगा प्रसाद बरसैंया/53**

कहानी

पुण्या / **शकुन्तला कालरा/58**

अपनी ही कैद में / **संतोष श्रीवास्तव/61**

मामले को कुछ ऐसे समझा जाए / **सुषमा मुनीन्द्र/67**

पंचरत्न / **सुदर्शन वशिष्ठ/73**

नई सोच / **कुसुम रानी नैथानी/79**

पूर्ण–बंदी / **प्रमोद भार्गव/83**

मौत के आगोश में / **धनेश दत्त पाण्डेय/92**

पुत्रेष्टि / **तपेश भौमिक/99**

गाँव की ओर / **महावीर रवांल्टा/104**

किरच / **आर. एस. खरे/111**

रंग मंडप / **दीपक शर्मा/114**

या में दो न समाय / **हरिप्रकाश राठी/118**

संजीवनी / **शीला मिश्रा/122**

रविकांत की मौत / **अरुण अर्णव खरे/125**

भाग्य/ **दिनेश प्रताप सिंह 'चित्रेश'/129**

अनुवाद

डाकमुंशी : मूल : फकीर मोहन सेनापति / **अनु. : दिनेश कुमार माली/134**

उम्र की इमारत

– अजित वडनेरकर

जन्म – 1962।
शिक्षा – हिंदी साहित्य में स्नातकोत्तर उपाधि।
रचनाएँ – पाँच पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – राजकमल प्रकाशन का विद्यानिवास मिश्र कृति पांडुलिपि सम्मान।

उम्र की इमारत :– आयु के लिए हिन्दी का सबसे लोकप्रिय शब्द उम्र है। इसके अलावा अंग्रेजी का एज शब्द भी हिन्दी में खूब प्रचलित है। इसके उमर, उमिर, उमरिया जैसे रूप भी हिन्दी की विभिन्न शैलियों में प्रचलित हैं। उम्र मूलत: सेमिटिक परिवार की अरबी भाषा का शब्द है और बरास्ता फ़ारसी इसकी आमद हिन्दी में हुई है। हिन्दी में सर्वाधिक बोले जाने वाले शब्दों में यह भी एक है। गौर करें कि किन-किन सन्दर्भों में हम सुबह से शाम तक उम्र / उमर शब्द का प्रयोग करते हैं। अरबी में उम्र का अर्थ जीवन, जीवनकाल है।

उम्र यानी जीवनकाल :– प्राय: सभी भाषाओं में जीवन, ज़िंदगी के साथ निर्माण या रचना जैसे शब्दों का प्रयोग होता है। 'ज़िंदगी बनाना', 'ज़िंदगी बनना', 'जीवन सँवारना', 'जीवननिर्माण' आदि वाक्यों से यह स्पष्ट हो रहा है। वय शब्द में बुनावट वाले भाव का आशय जिस तरह से जीवन को सँवारने से जुड़ रहा है वही बात उम्र की मूल सेमिटिक धातु अम्र में भी है जिसमें निर्माण का भाव प्रमुख है। अरबी में उम्र का आशय जीवन या जीवनकाल से है। जीवनकाल यानी व्यतीत किया हुआ जीवन। बिताई गई आयु। अन्द्रास रज्की के मुताबिक फ़ारसी में इसका उच्चारण ओम्र की तरह है तो अज़रबैजानी और तुर्की में ऊमूर, हिन्दी यह उमर या उम्र है तो स्वाहिली में उम्री, उज़्बेकी में यह उम्र है और तातारी में गोमेर।

जन्म लेना भर जीवन नहीं :– अल सईद एम बदावी की अरेबिक इंग्लिश डिक्शनरी ऑफ कुरानिक यूसेज़ के मुताबिक। अम्र से ही अमारा बनता है जिसका अर्थ है बसना, बसाना, सभ्य होना, शिष्ट होना, सुधारना आदि। गौर करें, आदिम युग से ही तमाम मानव समूहों की ये आरम्भिक क्रियाएँ रही हैं। जन्म लेना भर जीवन नहीं है। जन्म लेने के बाद का शारीरिक विकास ही जीवन नहीं है। बीहड़ इलाके को रहने योग्य बनाना, फिर भोजन के लिए बंजर भूमि को खेती योग्य बनाना, फिर समूह में रहते हुए रीति-नीति का विकास जिससे सभ्यता और संस्कृति का निर्माण होता है। यह है अमारा का मूल भाव।

जीवन निर्माण ही उम्र की सार्थकता :– सिर्फ़ जी भर लेने से उम्र नहीं गिनी जाती बल्कि युग की तरह जीवन का निर्माण करने में उम्र की सार्थकता है। अरबी के तामीर और इमारत शब्दों का हिन्दी में खूब इस्तेमाल होता है। तामीर यानी निर्माण, पुनर्निर्माण, रचना, सृजन आदि। यह तामीर भी इसी मूल से उपजा शब्द है। अपना जीवन अपने काम आने के साथ-साथ औरों के काम आए, उसे ऐसा गढ़ना पड़ता है। जीवन को जीने लायक बनाने का भाव ही उम्र में है। तामीर अच्छी होगी तो इमारत भी बुलंद होगी। इल्म, हुनर, लियाक़त और क़ाबिलियत से ज़िंदगी को बेहतरीन बनाना ही असल बात है।

जीवन की कठिनाइयाँ :– यूँ देखें तो अमारा में आवास और जीवन दोनों हैं। मूलत: आवास पहले, जीवन बाद में। मकान, भवन के अर्थ वाला इमारत शब्द इसी मूल से निकला है। ज़िंदगी की इमारत सिर्फ़ दीर्घायु (उम्रे-दराज़) से बुलंद नहीं होती क्योंकि उम्रे-दराज़ का जीवन की कठिनाइयों (उम्रे-परीशाँ) से गहरा रिश्ता है। जीवन के हर कालखण्ड का

निर्माण करना पड़ता है। इसे ही ज़िंदगी बनाना कहते हैं। आजकल लोग इसमें 'लाइफ़ बनना' देखते हैं। अब आते हैं आयु पर। उम्र के अर्थ में आयु शब्द का प्रयोग भी खूब होता है।

आयुस यानी जीवनीशक्ति :- मराठी में उम्र के लिए वय शब्द का प्रयोग अधिक होता है ठीक उसी तरह हिन्दी में आयु का। हिन्दी में उम्र के अर्थ में अकेले वय का प्रयोग बहुत कम होता है, अलबत्ता वय:संधि, अल्पवय, मध्यवय, किशोरवय जैसे युग्मपदों का प्रयोग ज्यादा होता है। कृ.पा. कुलकर्णी के मराठी कोश के मुताबिक आयु की व्युत्पत्ति आयुस् से है जिसका अर्थ है जीवनीशक्ति, जीवनकाल। वाशि आप्टे आयुस की व्युत्पत्ति आ + इ + उस से बताते हैं जिसमें जीवनावधि, जीवनदायक शक्ति जैसे भाव हैं। गौरतलब है कि संस्कृत की 'इ' धातु में मूलत: गति का भाव है, जाना, बिखरना, फैलना, समा जाना, प्रविष्ट होना आदि।

अयन, यान, यात्री :- मोनियर विलियम्स के मुताबिक 'इ' का विशिष्ट रूप अय् से भी व्यक्त होता है जिसमें भी गति का भाव है। ध्यान रहे, जीवन का मूल लक्षण गति ही है। अय का रिश्ता 'या' धातु से भी है जिसमें भी जाने, गति करने का भाव है। यान, यात्री जैसे शब्द इसी कड़ी से निकले हैं। इस 'अय' की व्याप्ति हिन्दी के कई शब्दों में है जैसे अयन् जिसका संस्कृत रूप है अयनम् या अयणम् जिसमें जाने, हिलने, गति करने का भाव है। अयनम् का अर्थ रास्ता, मार्ग, पगडण्डी, पथ आदि भी होता है। अवधि या संधिकाल जैसे भाव भी इसमें निहित हैं।

चिरायु, शतायु, दीर्घायु :- अयनम् बना है अय् क्रिया से। इसमें फलने-फूलने, निकलने का भाव है जो गतिवाचक हैं। जाहिर है अयनम् में निहित गति, राह, बाट का आशय तार्किक है। रामायण या कृष्णायन पर गौर करें जिसमें राम की राह पर चलने या कृष्ण की बाट जाने का भाव है। कुल मिला कर आयु का अर्थ जीवन के फलने-फूलने, उसे सभ्य-संस्कारी बनाने से है। वही भाव, जो उम्र में व्यक्त हो रहा है। चिरायु, शतायु, दीर्घायु जैसे अन्य कई शब्दों से यह ज़ाहिर है।

आयु, युग, काल :- भारोपीय भाषाओं में 'य' और 'ज' आपस में रूपान्तरित होते हैं। भारोपीय भाषा परिवार में भाषाविदों द्वारा परिकल्पित एक क्रिया 'अयु' aiw है जो संस्कृत आयु की समरूप है। 'य' का रूपान्तर 'ज' में होने से अंग्रेजी का एज age इसी से बनता है जिसमें परिपक्वता, प्रौढ़ता, जीवनकाल जैसे भाव हैं। एज में काल और युग जैसी अर्थवत्ता भी है। इसीलिए महान व्यक्तियों के जीवनकाल को युग कहा जाता है क्योंकि वे जीवन जीते नहीं हैं, बल्कि निर्माण करते हैं। अंग्रेजी के एज age शब्द में जहाँ उम्र की अर्थवत्ता है वहीं युग और काल का आशय भी है।

जी-37 , फेज-1, ग्रीन मीडोज
भोजपुर रोड, पी.ओ. मिसरोद,
भोपाल-462047 (म.प्र.)
मो.- 6265739044

सूचना :-

अक्षरा के सम्मानित सदस्य, दिसंबर माह में जिन पाठकों की सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे अपनी सदस्यता का नवीनीकरण कराने का कष्ट करें। यदि आप ऑनलाइन रुपया जमा करते हैं तो कृपया अक्षरा की ईमेल आईडी पर स्क्रीनशॉट भेजने का कष्ट करें।

myakshara18@gmail.com

हिंदी और हम

- अजहर हाशमी

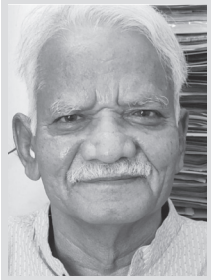

अपनी बात बेबाकी से रखने वाले श्रेष्ठ कवि, चिंतक, लेखक, एवं व्यंग्यकार हैं। आपकी सात पुस्तकें प्रकाशित हैं एवं नियमित स्तंभ प्रकाशित होते हैं। आप म.प्र. साहित्य अकादमी के अखिल भारतीय निर्मल वर्मा सम्मान सहित अनेक पुरस्कारों से अलंकृत हैं।

भाषाओं के उद्यान में हिंदी ऐसा पुष्प है जो माधुर्य, सौन्दर्य और सुगंध से भरपूर है। माधुर्य के कारण हिंदी मिष्ट है। सौन्दर्य के कारण हिंदी शिष्ट है। सुगंध के कारण हिंदी विशिष्ट है। विश्व की सभी भाषाओं की तुलना हम हिंदी से करें तो हिंदी उन्नीस नहीं बीस ही साबित होती है। क्योंकि हिंदी के पास सामर्थ्य की जो सुगंध है, वह विश्व की किसी भाषा के पास नहीं है। हिंदी की वर्णमाला में ही यह सामर्थ्य है कि वह संसार की किसी भी बोली और भाषा को ज्यों-का-त्यों लिख सकती है। हिंदी का व्यक्तित्व वर्णमाला में विराट् है जबकि अन्य भाषाओं और बोलियों का लघु।

व्यक्तित्व की विराट्ता से तात्पर्य हिंदी वर्णमाला का ग्राह्यता का वह गुण है, जिसके अंतर्गत किसी भी भाषा अथवा बोली के उच्चारण को जस-का-तस प्रस्तुत किया जाता है। तात्पर्य यह है कि बोले जाने वाले शब्दों और लिखे जाने वाले शब्दों में कोई अंतर नहीं होता। उनमें एकरूपता होती है, विवधिता नहीं। उदाहरणार्थ हम कोण बोलेंगे तो हिंदी में लिखेंगे भी कोण ही। 'ण' ही लिखेंगे, 'न' नहीं। परंतु उर्दू, अरबी, फ्रेंच और अंग्रेजी भाषा में 'ण' को 'न' ही लिखा जाएगा। इस प्रकार हिंदी भाषा का 'कोण' अन्य भाषाओं में 'कोन' हो जाएगा। परिणामस्वरूप अर्थ में ही अंतर आ जाएगा। इससे सिद्ध होता है कि समर्थ्य की जो सुगंध हिंदी के पास है वह अन्य भाषाओं के पास नहीं। फिर भी हिंदी को समुचित आदर नहीं मिला पा रहा है तो इसका कारण यह है कि जिस प्रकार कुछ लोगों को (कृपया, पाठकगण मुझे क्षमा करें।) सुगंध से अप्रियताबोध अर्थात् एलर्जी होती है, ठीक उसी प्रकार से भारत में अभिजात्य वर्ग (अपवाद को छोड़कर) है जिसकी नाक के नथुने हिंदी के सामर्थ्य की सुगंध से सिकुड़ने लगते हैं और उन्हें 'अंग्रेजियत की छींके' आने लगती हैं अर्थात् एलर्जी हो जाती है। यहाँ मेरे ऐसा लिखने का तात्पर्य यह नहीं है कि हिंदी का अंग्रेजी से कोई वैर-विरोध है या अंग्रेजी के प्रति हिंदी का कोई दुराग्रह है। मेरा तात्पर्य तो यह है कि हिंदी भी भली-भाँति समादृत हो। यहाँ यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा कि हिंदी ने तो उदारतापूर्वक अंग्रेजी भाषा के कई शब्दों को (जैसे : नैरेटिव) अपने में समाहित कर लिया है। हिंदी की यह उदारता, संस्कृत की उक्ति 'उदार चरितानाम् वसुधैव कुटुम्बकम्' को ही रेखांकित करती है। मेरे विनम्र मत में, हिंदी किसी भी भाषा को लेकर कोई ग्रंथि नहीं पालती। सामर्थ्य की सुगंध के कारण ही हिंदी गुलाब की तरह मोहक है तभी तो रूस के वरान्निकोव और बेल्जियम के बुल्के भारत आकर हिंदी को समर्पित हो गए।

एक महत्त्वपूर्ण बात और! बह यह कि अंग्रेजी भाषा सीखने के लिए या अन्य भाषाओं को जानने के लिए हिंदी की तरफ से कोई मनाही नहीं है। यही तो हिंदी की विशेषता है कि वह किसी भाषा पर कोई 'कर्फ्यू' नहीं लगाती बल्कि वह तो सबको 'व्यू' रखने का अवसर प्रदान करती है। आशय यह है कि हिंदी किसी हीनताबोध से ग्रस्त नहीं है। हाँ, अंग्रेजीभाषा 'उच्चताबोध' के कारण 'उच्च रक्तचाप' से ग्रस्त होकर अहंकार की आसंदी पर (अपवाद को छोड़कर) हाँफती रहती है। हिंदी वर्णमाला की विनम्रता की वह वैक्सीन उसके पास नहीं है जो उसकी साँसों को संतुलित कर सके। हिंदी भाषा में महिमा भी है और गरिमा भी। परंतु हमारी मानसिकता का आलम यह है कि हम हिंदी को 'कुलियों' की और अंग्रेजी को 'कुलीनों' की भाषा समझते हैं। राजनीतिक दृष्टि से देश स्वाधीन है परंतु वैचारिक और मानसिक दृष्टि से हम आज भी दास हैं। यही कारण है कि कई बातों में बदलाव के बावजूद हिंदी के बारे में हम मजबूत कदम नहीं उठा पाए हैं। स्वार्थ की राजनीति हिंदी की राह में रोड़ा है। कुर्सी की कामना और सुविधा की साधना ने हिंदी को आहत किया है। जहाँ तक अखबारों की हिंदी का प्रश्न है तो कुछ अखबार तो नि:संदेह हिंदी की महिमा और गरिमा को बनाए हुए हैं किंतु कुछ अखबारों में हिंदी के मुद्रण में त्रुटियों की भरमार होती है। व्याकरण संबंधी अशुद्धियाँ भी देखने को मिलती हैं। यह दिक्कत तभी दूर हो सकती है जब हिंदी का विशेषज्ञ संपादक हर हिंदी अखबारों में हो।

32, इन्दिरा नगर,
रतलाम-457001 (म.प्र.)
फोन-07412-260221

धर्मशास्त्रों में ब्रह्मचर्य एवं गृहस्थ आश्रम

- रामेश्वर मिश्र पंकज

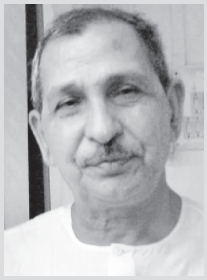

रीवा मध्य प्रदेश में जन्मे प्रसिद्ध दार्शनिक, समाजवैज्ञानिक एवं इतिहासविद, समाजवादी एवं गाँधीवादी आंदोलनों में सक्रियता, विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों से सेवा निवृत्त। वर्तमान में निरंतर सृजनरत। आपकी बाइस पुस्तकें प्रकाशित हैं।

धर्मशास्त्रों में वर्णधर्म के साथ ही चारों आश्रमों के धर्म भी विस्तार से प्रतिपादित हैं। परन्तु समकालीन भारत राष्ट्र में आश्रम धर्म को कोई विधिक मान्यता प्राप्त नहीं है। वस्तुत: स्वयं ब्रह्मचर्य आश्रम को समकालीन भारतीय राज्य व्यवस्था में कई स्तरों पर अस्वीकृत और रद्द कर दिया गया है। पहला स्तर तो यह है कि शिक्षा देने का दायित्व विद्वानों और ज्ञानियों के स्थान पर स्वयं शासकों और प्रशासकों ने अपने हाथ में ले लिया है। यह भारतवर्ष के लिये तो अभूतपूर्व स्थिति है ही, स्वयं यूरोप और अमेरिका की दृष्टि से भी यह स्थिति अलग है। पश्चिमी यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका में शिक्षा के स्वरूप का निर्धारण बहुसंख्यकों की रेलिजस संस्थाओं के संगठनों के हाथ में है जिन्हें चर्च की परिषद या महासभा आदि कहा जाता है। भारत में इस निर्धारण का दायित्व शासकों और प्रशासकों ने स्वयं ले रखा है। इस प्रकार गुरुकुल या गुरुगृह निवास की ब्रह्मचर्य की अनिवार्य शर्त का दूर-दूर तक कहीं कोई अस्तित्व ही नहीं है।

दूसरा स्तर जीवन और दिनचर्या से संबंधित है। ब्रह्मचर्य की आयु में विद्यार्थियों को संयम की प्रेरणा देना तो समाप्त ही है, उन्हें सेक्स संबंधी शिक्षा दिए जाने का उत्साह शासन-प्रशासन में है। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के व्यसनों और स्वच्छंदता को विद्यार्थी जीवन का गौरव बना डाला गया है। यह काम प्रशासन और संचार माध्यमों के द्वारा सम्पन्न हुआ है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य आश्रम का समकालीन भारत में कोई अस्तित्व नहीं है।

आधुनिक गृहस्थ जीवन में रति और आसक्ति की पराकाष्ठा है :-

आकार और बाहरी स्वरूप की दृष्टि से गृहस्थ आश्रम का रूप व्यापक हुआ है। यही नहीं, गृहस्थ आश्रम न सही, गृहस्थ जीवन में रति और आसक्ति की पराकाष्ठा का प्रचार और प्रोत्साहन किया जाता है। परंतु गृहस्थ जीवन के विषय में शासन और संचार माध्यमों के द्वारा व्यक्ति और उसकी पत्नी या पति तथा बच्चों को ही परिवार कहे जाने और बताए जाने का चलन व्यापक है। शेष लोगों से या समाज से परिवार का संबंध केवल संस्कार के रूप में या रीति-रिवाजों के अवशेष के रूप में अवश्य बचा है। परंतु शिक्षा और विधि-व्यवस्था में उसका कोई औपचारिक स्थान नहीं है। व्यक्ति अपनी पत्नी और पति तथा संतति के सिवाय अन्यों को अपने परिवार का अंग माने या न माने अथवा माने तो किस रूप में माने, इस विषय में व्यक्ति को ही निर्णय करने की सम्पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है। यह स्वतंत्रता गृहस्थ आश्रम की अवधारणा को पूरी तरह समाप्त करने पर ही संभव है। न तो अतिथि सत्कार की कोई विधिक मान्यता है, न ही नित्य कर्म के रूप में गोबलि, श्वान बलि, वायस बलि, पिपीलिकादि बलि और देव बलि की कोई विधिक मान्यता या अनिवार्यता है और न ही उसका कोई गौरव प्रचारित किया जाता है।

विवाह विधि में से राष्ट्र सम्बन्धी आहुतियों का विस्मरण :-

इसी प्रकार ज्ञातियों, सम्बन्धियों, पड़ोस आदि से धर्मसम्मत व्यवहार की भी कोई विधिक मान्यता नहीं है। इसके स्थान पर इन सब विषयों में भी व्यक्ति स्वतंत्र है। साथ ही विवाह संस्कार के समय राष्ट्र भक्त आहुतियाँ देते हुए राष्ट्र के लिए कार्य करने की जो प्रतिज्ञा लेने का गृहस्थ आश्रम में प्रवेश के लिए अनिवार्य विधान है, उसका भी कोई विधिक स्थान स्वीकृत नहीं है। यह व्यक्ति के अपने विवेक और निर्णय पर है कि वह वैसी किसी भावना को जीवित रखे या न रखे।

इसके साथ ही गृहस्थ आश्रम के लिए धर्मशास्त्रों में विहित अन्य नियम एवं उपबंध भी कोई विधिक अधिकार नहीं रखते। सगोत्र विवाह यदि बंद है तो केवल परंपरा के संस्कारों के कारण। शासन के स्तर पर उस संबंध में कोई कानून नहीं है

और व्यक्ति को सगोत्र विवाह भी करने की छूट है। धर्मशास्त्रों के ज्ञान से रहित और उस ज्ञान के प्रति सम्मान से रहित विधिपालिका के अधिकारीगण ऐसे सगोत्र विवाह को वयस्क व्यक्ति का अधिकार घोषित करते हैं।

अनुराग होने पर अथवा राजनैतिक कारणों से एक से अधिक विवाह की परंपरा धर्मशास्त्रों में सहज रूप से मान्य है। महाभारत में आदिपर्व में अध्याय 160 का 36 वाँ श्लोक है –

न चाप्यधर्मः कल्याण बहुपत्नीकता नृणाम्।
स्त्रीणामधर्मः सुमहान्भर्तुः पूर्वस्य लंघने।।

(अनेक पत्नियों का होना कोई अधर्म नहीं है अपितु कल्याणकारी भी हो सकता है। परन्तु स्त्रियाँ अपने पति के प्रति कर्तव्य का लंघन करें, तो इसमें अधर्म है। इसका यह अर्थ है कि पति के प्रति किसी भी पत्नी का अनुराग शिथिल होने की स्थिति आ रही हो तो अनेक पत्नियाँ अकल्याणकारी सिद्ध होंगी।)

चाणक्य ने भी लिखा है कि एक व्यक्ति अनेक विवाह कर सकता है परन्तु किसी भी पत्नी को स्त्रीधन से वंचित नहीं किया जा सकता।

चाणक्य के समय विवाह की आयु :- चाणक्य के समय 12 वर्ष की कन्या और 16 वर्ष के लड़के को 'प्राप्त व्यवहार' (वर्तमान पदावली में वयस्क) माना जाता था। लड़की पत्नी रूप में कुछ अनुचित करे तो पति कठोर वाक्यों से शिक्षा दे, ऐसा चाणक्य का कथन है। परन्तु फिर तत्काल यह भी कहा है कि अधिक कठोर वचन बोलने पर या हल्का भी प्रहार करने पर वाक्पारुष्य और दंड पारुष्य का दंड मिलेगा। इसी प्रकार स्त्री यदि पति से कठोर वचन बोले तो उसे अपने स्त्रीधन से पति को अर्थदंड देना होगा।

पति के मना करने पर भी किसी अन्य के साथ मद्यमान करने पर या क्रीड़ा करने पर स्त्री अर्थदंड से दंडित होगी। पराए पुरुष से कामवार्ता करने पर स्त्री को अपने स्त्रीधन में से 24 पर्ण अर्थदंड पति को देना होगा और जिस परपुरुष से वह वार्ता कर रही है, उसे भी दुगुना अर्थात् 48 पर्ण अर्थ दंड स्त्री के पति को देना होगा। संदिग्ध अवस्था में मिलने पर दोनों को बेंत भी मारे जाएँगे।

विवाह सम्बन्धी नियम :- पुरुष के द्वारा एक से अधिक विवाह करने के नियम चाणक्य के समय प्रचलित थे। अतः उनका ही उल्लेख चाणक्य ने किया है। तद्नुसार यदि संतान न होती हो तो आठ वर्ष तक प्रतीक्षा करने के बाद पुरुष अन्य विवाह कर सकता है। परंतु पहली पत्नी का अधिकार घर में यथावत बना रहेगा। यदि मृतपुत्र ही पैदा होते हों तो दस वर्ष की प्रतीक्षा के उपरांत अन्य विवाह किया जा सकता है और यदि केवल कन्या ही होती हो तो पुत्र के लिए 12 वर्ष तक प्रतीक्षा के उपरांत पति दूसरा विवाह कर सकता है। परंतु यदि 12 वर्ष से पहले ही पुरुष विवाह कर लेता है तो प्रथम पत्नी को उनका स्त्रीधन और दहेज में मिला संपूर्ण धन देना होगा और साथ ही क्षतिपूर्ति धन भी देना होगा।

इच्छा का महत्व :- स्त्री संगम की इच्छा न रखती हो तो पति की कितनी भी तीव्र कामवासना हो, वह धर्मपरायणा पत्नी को संगम का आग्रह नहीं कर सकता। इसी प्रकार स्त्री की कामना हो परंतु पति की न हो तो पत्नी भी पति पर दबाव नहीं डाल सकती है।

पति के शरीर पर अन्य स्त्री से मिलने का कोई चिह्न देखने पर पत्नी को पति 12 पण अर्थदंड देगा। परंतु निर्दोष पति या पत्नी को एक-दूसरे से अलग होने का अधिकार नहीं है। हाँ, यदि परस्पर द्वेष भाव दृढ़ हो जाए तो दोनों को अलग होने का अधिकार है (परस्परं द्वेषान्मोक्षः)। अन्यथा धर्ममय विवाह में किसी को अलग होने का अधिकार नहीं है (अमोक्षो धर्मविवाहानाम्)। नीच चरित्र वाले पति का त्याग पत्नी कर सकती है। इसी प्रकार नपुंसक या महापापी पति का त्याग करने का भी पत्नी को अधिकार है। यदि पति परदेश जाकर वहीं बस गया हो और कई वर्षों तक नहीं आए तो पत्नी को पति त्यागने का अधिकार है। पति को त्यागने के बाद पत्नी अन्य विवाह कर सकती है। याज्ञवल्क्य स्मृति का भी प्रावधान है कि यदि पत्नी मदिरा पीती हो या वंचना करती हो, धोखेबाज हो और कटुभाषिणी हो तथा अपव्ययी हो तो दूसरा विवाह करणीय है। मनुस्मृति एवं बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार कटुवादिनी पत्नी का त्याग कर दूसरा विवाह करणीय है।

सामान्यतः एक ही विवाह की प्रतिष्ठा :- इस प्रकार सिद्धांत रूप में बहुपत्नीकता धर्मशास्त्र-सम्मत है। परन्तु यह भी सत्य है कि व्यवहार में सामान्यतः प्रथम पत्नी के रहते दूसरा विवाह करने का गृहस्थ आश्रम में चलन नहीं था। परन्तु ईसाइयों के मैरिज लॉ से प्रेरित होकर जो हिन्दू कानून वर्तमान में लागू है, वह बहुत ही विचित्र है और गृहस्थ आश्रम को सब प्रकार से ध्वस्त करने वाला है। उसमें प्रावधान है कि किसी भी रूप में दूसरा विवाह नहीं हो सकता। परन्तु दूसरी ओर 'लिव इन' तथा अन्य सहमतिपूर्ण दैहिक संबंधों को पूरी तरह विधिक मान्यता प्राप्त है। यह दिखाया तो स्त्री के पक्ष में जाता है परन्तु वस्तुतः यह पूरी तरह स्त्रीविरोधी है क्योंकि लिव इन या अन्य दैहिक रिश्तों से स्त्री को कोई भी वित्तीय या सामाजिक या अन्य गौरवपूर्ण स्थान एवं अधिकार प्राप्त नहीं होता। जिससे कि उसकी मनोदशा एक गहरी कुंठा से भर जाती है। यह स्थिति किसी भी प्रकार स्त्री के पक्ष में नहीं है। या तो स्त्री या पुरुष किसी का भी विवाहेतर संबंध दंडनीय अपराध घोषित हो जो यद्यपि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानव इतिहास में सर्वथा असंभव स्थिति है क्योंकि एक से अधिक से संबंध मानवीय इतिहास का सर्वविदित सत्य है। परन्तु विवाहेतर संबंध रखने को विधिक मान्यता देकर संबंधित स्त्री को पुरुष की सम्पत्ति में अधिकार नहीं देने की स्थिति तो पूरी तरह विचित्र है और शासकों के इस विषय में विचारविहीन होने का प्रमाण है। परन्तु मुख्य बात यह है कि ये सब विचित्र प्रकार के कानून एक टेढ़े-मेढ़े जीवन का ही लक्षण हैं। इसमें गृहस्थ आश्रम की मूल भावना और धारणा का सर्वथा विलोप है।

मनुस्मृति वर्तमान विधि-व्यवस्था में पूर्णतः अमान्य है :- मुख्य बात यह है कि मनुस्मृति का यह निर्देश कि 'पति-पत्नी को धर्म, अर्थ और काम विषयक कार्यों में परस्पर कभी भी पृथक नहीं होना चाहिए। इन सभी विषयों में अव्यभिचारी संबंध आजीवन होना चाहिए' **(अध्याय 9, श्लोक 101 एवं 102)**, वह तो वर्तमान विधि व्यवस्था में पूरी तरह अमान्य है। क्योंकि इसमें दोनों ही व्यक्तियों की निजता और स्वतंत्रता का लोप वर्तमान कानून में माना जाएगा जो कानूनन अमान्य होगा।

गृहस्थ आश्रम की अवधारणा का विधिक स्तर पर विलोप :- इस प्रकार गृहस्थ आश्रम की आधारभूत अवधारणा ही वर्तमान विधि व्यवस्था में अस्वीकृत एवं अमान्य है। दोनों ही पक्षों के अन्य कर्तव्यों का धर्मशास्त्रों में जो विवेचन है, उनकी तो कोई विधिक मान्यता है ही नहीं। ऐसी स्थिति में समकालीन भारत राष्ट्र में गृहस्थ आश्रम नाम की कोई भी संस्था विधिक रूप में स्वीकृत नहीं है। 'फैमिली लाइफ' और 'मैरिज' ही वर्तमान में स्वीकृत है।

गृहस्थ आश्रम की धर्मशास्त्रों में महत्ता विस्तार से वर्णित है। गौतम धर्मसूत्र (3/3) का कथन है कि 'गृहस्थ आश्रम ही सभी आश्रमों की योनि अर्थात् आधार है। क्योंकि शेष तीनों ही आश्रम अपनी संतति उत्पन्न नहीं करते अर्थात् ब्रह्मचारी किसी अन्य ब्रह्मचारी को पैदा नहीं कर सकता, वानप्रस्थी किसी अन्य वानप्रस्थी को पैदा नहीं कर सकता और संन्यासी किसी अन्य संन्यासी को पैदा नहीं कर सकता। इस प्रकार ये तीनों ही आश्रम प्रजनन या अपने जैसा उत्पादन करने में असमर्थ हैं। केवल गृहस्थ आश्रम ही इन सभी प्रकार के लोगों को न केवल उत्पन्न करता है अपितु आश्रय देता है, आधार देता है, संरक्षण देता है और पोषण तथा समृद्धि देता है। इस प्रकार यह आश्रम सबका मूलभूत है।

इसी प्रकार मनुस्मृति में भी यही कहा है कि –

सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान्बिभर्तिहि।।

(अध्याय 6, श्लोक 89)

अर्थात् इन सभी आश्रमों में वेद और स्मृति के विधान से गृहस्थ ही श्रेष्ठ है। क्योंकि वही इन तीनों का भरण-पोषण करता है।

महाभारत के शांतिपर्व में अध्याय 269 में कहा है कि –

यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः।
एवं गार्हस्थ्यमाश्रित्य वर्तन्त इतराश्रमाः।।
गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः।
गार्हस्थ्यमस्य धर्मस्य मूलं यत्किंचिदेजते।।

(जिस प्रकार समस्त प्राणी माँ के आश्रय से ही जीवित रहते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ आश्रम का आश्रय लेकर ही अन्य आश्रम टिके हुए हैं। गृहस्थ ही यज्ञ कर्ता है और तप तथा शुभकर्मों का आचरण करता है। इस प्रकार धर्म का मूल गृहस्थ आश्रम ही है।)

वाल्मीकि रामायण, बौधायन धर्मसूत्र, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि

में भी यही कथन है। मार्कण्डेयपुराण, नृसिंहपुराण, कूर्मपुराण आदि में भी गृहस्थ धर्म का विस्तार से प्रतिपादन है।

गृहस्थ आश्रम का आचार-विचार और व्यवहार धर्मशास्त्रों का एक बड़ा विषय है। जिन्हें आह्निक कृत्य कहा जाता है, उनमें प्रात:काल उठना, शौच आदि, स्नान, संध्या और तर्पण तथा पंचमहायज्ञ, भोजन, धनार्जन के लिए आवश्यक कृत्य, दान और यथासमय शयन आदि सम्मिलित हैं। इन सभी विषयों पर धर्मशास्त्रों में विस्तार से प्रतिपादन है। उनके पालन के बिना विवाहित व्यक्ति के जीवन को गृहस्थ आश्रम का जीवन नहीं कहा जा सकता। दिवस विभाजन धर्मशास्त्रों में स्पष्टता से प्रतिपादित है। इसी प्रकार आन्तरिक और बाह्य शौच और स्वच्छता के नियम भी विस्तार से प्रतिपादित हैं। विभिन्न प्रकार के स्नानों का भी विस्तृत निरूपण है और वस्त्रधारण की विधियों का भी। इसी प्रकार होम और पंच महायज्ञ का भी विस्तृत प्रतिपादन है तथा जप भी प्रत्येक गृहस्थ के लिए अनिवार्य बताया गया है। (14)

वर्तमान में सर्वाधिक उल्लेखनीय बातें चार हैं :-

1. तर्पण-इन दिनों अधिकांश गृहस्थ न तो नित्य तर्पण करते हैं और न ही पितृपक्ष में शास्त्रसम्मत कोई तर्पण आदि कर्म करते हैं। इस प्रकार तर्पण से रहित गृहस्थ व्यक्ति को गृहस्थ आश्रमी नहीं कहा जा सकता।

2. जप-नियमित संध्या ब्राह्मण के लिए अनिवार्य है परंतु होम और जप प्रत्येक गृहस्थ के लिए अनिवार्य है। इन दिनों अधिकांश विवाहित हिन्दू जप नहीं करते। अत: वे गृहस्थ आश्रमी नहीं माने जा सकते। इसी प्रकार पंच महायज्ञों का न करना भी गृहस्थ आश्रमी होने का प्रमाण नहीं है। ये पंच महायज्ञ प्रत्येक गृहस्थ के लिए आवश्यक हैं।

3. भोजन संबंधी विचार अर्थात् भक्ष्य-अभक्ष्य विचार -
भोजन संबंधी विचार गृहस्थ आश्रम में भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। क्योंकि आहार शुद्धि पर वेदों, उपनिषदों, पुराणों और धर्मशास्त्रों का स्पष्ट बल है। भोजन करने की विधियाँ और आवश्यक शिष्टाचार आदि तो महत्त्वपूर्ण हैं हीं परन्तु विहित और निषिद्ध तथा भक्ष्य और अभक्ष्य का विचार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इन दिनों हिन्दू गृहस्थों में इस विचार का तेजी से लोप हो रहा है। लोप का कारण वर्तमान शासन तंत्र के द्वारा दी जा रही शिक्षा का स्वरूप है। अत: इस लोप का संपूर्ण दोष शासकों और प्रशासकों पर है और वे ही इस विषय में पाप के मुख्य भागी हैं। इसी प्रकार मद्यपान को धर्मशास्त्रों में महापाप कहा गया है। यह महापाप हिन्दू गृहस्थों का बहुमत इन दिनों कर रहा है।

4. दान-गृहस्थ आश्रम में दान का सर्वाधिक महत्व है। वर्तमान भारत राष्ट्र में हिन्दू समाज से धर्मशास्त्र सम्मत दान का लगभग लोप हो चला है। दान के अभाव में विवाहित व्यक्ति को गृहस्थ आश्रमी नहीं कहा जा सकता। दान गृहस्थ आश्रम का मर्मभाग है। वैदिक काल से ही दान की प्रशस्तियाँ गाई गई हैं। स्वयं ऋग्वेद में दाताओं की प्रशस्ति का गायन है। तदुपरान्त उपनिषदों में भी।

दान के छ: अंग हैं-दाता, प्रतिग्रहिता, श्रद्धा, धर्मयुक्त देय, उचितकाल एवं उचित स्थान। इन छहों का विचार दान में आवश्यक है। इष्ट एवं पूर्त कर्म दोनों में ही दान का प्रधान स्थान है। मुख्यत: पूर्त कर्मों में दान सबसे प्रधान है। वापी (बावड़ी), कूप, तड़ाग (तालाब), मंदिर, आराम (जनोद्यान या जनवाटिका) के लिए दान देना तथा अन्न दान प्रत्येक गृहस्थ का यथाशक्ति कर्तव्य है। इसीलिए आज भी परंपरागत हिन्दू भिक्षुक भी ग्रहण आदि के समय दान अवश्य देते हैं।

दान के योग्य एवं अयोग्य पात्रों पर भी धर्मशास्त्रों में विस्तार से विचार है। इसी प्रकार क्या देय है और क्या अदेय है, इसका भी सांगोपांग विवरण है। दान के प्रकारों की भी मीमांसा है और दान के समय, दान के स्थान तथा दान देने की विधि का भी बहुत विस्तार से वर्णन है (जिसका अलग से संदर्भ दे चुके हैं)। वर्तमान में दान के इन रूपों का विलोप हो चला है और इस प्रकार गृहस्थ आश्रम का भी विलोप ही हो चला मानना चाहिए। 'मेरिड लाइफ' मात्र को ही गृहस्थ आश्रम नहीं कहा जा सकता। उसे ही गृहस्थ आश्रम कहना अतिचार होगा। वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम पर अगले अंक में चर्चा। **(क्रमश:)**

ए 141, आकृति हाईलैण्ड
डाकघर-फंदा, भोपाल-462030 (म.प्र.)
मो. 8349350267

सम्राट गय की महिमा और अगस्त्य लोपामुद्रा विवाह

- कुसुमलता केडिया

इतिहास, समाज विज्ञान और अर्थशास्त्र की गहरी अध्येता और तर्कपूर्ण विवेचना में सिद्धहस्त विदुषी प्रो. कुसुमलता केडिया के वैचारिक आलेखों का शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशन किया जा रहा है ताकि हमारे पाठकों में बौद्धिक उत्तेजना उत्पन्न हो और वे हमारी ज्ञान परंपरा को तार्किक ढंग से आत्मसात कर मौलिक लेखन की ओर प्रवृत्त हों। प्रस्तुत है इस लेखमाला की अगली किश्त **'सम्राट गय की महिमा और अगस्त्य लोपामुद्रा विवाह'** *। पाठकों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।*

- सम्पादक

स्वदेशी अर्थचेतना की संवाहक।
जन्म - 2 जुलाई 1954।
जन्म स्थान - पडरौना (उ.प्र.)।
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी।
रचनाएँ - अनेक पुस्तकें प्रकाशित।

महाभारत के वनपर्व में पांडवों की तीर्थयात्रा के प्रसंग में बहुत सी महत्त्वपूर्ण गाथाएँ वर्णित हैं। उन पर विस्तार से चर्चा तो मूल विषय से बिल्कुल अलग दिखेगी परंतु फिर भी उनमें से कुछ की चर्चा भारतीय इतिहास की दृष्टि से अत्यावश्यक है। इनमें से दो अलग-अलग प्रसंग इस लेख में दिए जा रहे हैं।

नैमिषारण्य आदि तीर्थों में यात्रा करते हुए पाण्डवों ने देवताओं की यज्ञ भूमि प्रयाग में पहुँचकर संगम स्नान किया और कई दिनों तक तपस्या करते रहे। तपस्या के अंत में ब्राह्मणों को दान दिया और फिर धर्मज्ञ राजर्षि गय के द्वारा यज्ञों से शुद्ध किए गए उत्तम गया तीर्थ पहुँचे। गया तीर्थ गयशिर नामक पर्वत पर है और उसके तट पर रमणीय महानदी के दोनों सुंदर तट विशेष शोभा बढ़ाते हैं। वहीं पर ब्रह्म सरोवर भी है जहाँ सनातन धर्मराज स्वयं निवास करते हैं।

ऋषि वैशम्पायन बताते हैं- **'उवास च स्वयं तत्र धर्मराजः सनातनः। सर्वासां सरितां चैव समुद्भेदो विशाम्पते।।'**

अर्थात् वहाँ स्वयं सनातन धर्मराज निवास करते हैं और समस्त नदियाँ वहाँ प्रकट होती हैं। भगवान महादेव वहाँ नित्य निवास करते हैं। वहीं पर एक महान अक्षयवट है (यह प्रयाग के अक्षयवट से भिन्न है)। पाण्डवों ने वहाँ उपवास करते हुए विधिपूर्वक अनेक यज्ञ किएँ और महात्मा पुरुषों की पवित्र कथाएँ सुनीं। उनमें से ही एक कथा सम्राट गय की है। गय राजर्षि थे। उन्होंने इस स्थान पर बहुत बड़ा यज्ञ किया था। जिसमें बहुत अन्न दान किया गया था तथा बहुत अधिक दक्षिणा बाँटी गई थी। घी के सैकड़ों कुण्ड वहाँ सदा भरे रहते थे। ब्राह्मणों और याचकों को वहाँ नित्य भोजन और दान दिया जाता था। मंत्रों के पवित्र शब्दों से पृथ्वी, दिशाएँ, आकाश और स्वर्ग परिपूर्ण हो गए। चारों ओर लोग महाराज की आज्ञा से घूम-घूम कर यह पूछते थे कि कोई भी प्राणी (केवल मनुष्य नहीं) भूखा तो नहीं रह गया है, पता करके सबको भोजन अवश्य कराया जाता था। ऐसे सम्राट गय की महिमा विश्वविख्यात है। इसीलिए गया तीर्थ भी परम पवित्र और पावन है। वायु पुराण में गया माहात्म्य नामक एक अलग ही प्रकरण है जो वायुपुराण के अध्याय 105 से 112 तक विस्तृत है। राजेन्द्रलाल मित्र ने जो ईस्ट इंडिया कंपनी के सहयोगी विद्वान थे, इसे अर्वाचीन दिखाने का प्रयास किया है और इसका समय तीसरी शताब्दी ईस्वी बताया है। परन्तु यह अत्यन्त प्राचीन है। गयावाल

ब्राह्मण संख्या में बहुत थोड़े हैं और तीसरी शताब्दी ईस्वी में उनकी संख्या लगभग 200 पुरुष और 175 स्त्रियाँ ही बची थी। परंतु इनके यजमान समस्त भारतवर्ष और जम्बूद्वीप में तथा समस्त विश्व में हैं।

यहाँ उल्लेखनीय है कि सम्राट गय का उल्लेख स्वयं ऋग्वेद के दशम मण्डल में है। वहाँ उन्हें ऋषि कहा गया है। गया में ही विष्णुपद है। फल्गु नदी से ऊपर उठने वाली पहाड़ी का वर्णन विष्णु धर्मसूत्र में भी है। विष्णुपद में भगवान विष्णु के पदचिह्न दिखाई देते हैं। गयशीर्ष या गयशिर और विष्णुपद गया तीर्थ के सर्वाधिक पवित्र स्थल हैं और तथागत बुद्ध के कम से कम 600 वर्ष पहले से यह तीर्थ पवित्र था। बोधगया इस तीर्थ के परिसर में होने से ही इतना पवित्र माना गया और स्वयं भगवान बुद्ध ने वहाँ बोध साधना की। फल्गु नदी (महानदी) गयशिर और अक्षय वट में पितरों को दिया गया भोजन अक्षय हो जाता है। जब व्यक्ति गया जाकर पितरों को भोजन देता है तो पितर अत्यधिक प्रसन्न होते हैं और इसकी स्पष्ट अनुभूति श्राद्ध कर रहे पुत्र को होती है। यह करोड़ों लोगों का अनुभूत तथ्य है। ऐसे पुत्र से पितर पुत्रवान होते हैं। अनेक स्मृतियों में भी गया तीर्थ का महात्म्य वर्णित है और वायु, मत्स्य, वामन, अग्नि तथा अन्य पुराणों में भी।

अगस्त्य-लोपामुद्रा आख्यान :- गया से प्रस्थान कर महाराज युधिष्ठिर भाइयों के साथ अगस्त्य आश्रम पहुँचे। वहाँ उन्होंने महर्षि अगस्त्य की गाथा जानने की जिज्ञासा महर्षि लोमश से की। महर्षि लोमश ने बताया कि यह आश्रम मणिमती नगरी के अन्तर्गत है। पूर्वकाल में यहाँ इल्वल और वातापि-ये दो दैत्य रहते थे। इल्वल ने नगर के एक तपस्वी ब्राह्मण से कहा कि आप कृपा कर हमें इन्द्र जैसा पराक्रमी एक पुत्र होने का वरदान दीजिए। ब्राह्मण ने इसकी असमर्थता व्यक्त की। इससे इल्वल समस्त ब्राह्मणों पर ही कुपित हो गया और अपने भाई को माया से भोज्य पदार्थ बनाकर उन्हें खिलाता और फिर पुकारता कि भाई, वातापि बाहर आ जाओ। वातापि ब्राह्मण का पेट चीरते हुए बाहर निकल आता और इस प्रकार ब्राह्मण की मृत्यु हो जाती। ऐसा करते हुये उसने सैकड़ों ब्राह्मणों को मार डाला। तब ब्राह्मणों ने ऋषि अगस्त्य से रक्षा करने की प्रार्थना की। ऋषि अगस्त्य ने ब्राह्मणों को आश्वासन दिया कि वे यथासमय उस दानव का नाश अवश्य करेंगे।

अगस्त्य ऋषि महाप्रतापी थे और उन्होंने ही विंध्य को झुककर रहने का आदेश देकर दक्षिणापथ के लिए विंध्य क्षेत्र से मार्ग बनाया था। उन्होंने ही तमिल व्याकरण शास्त्र की रचना की। जिसे 'आगस्त्यम' कहा जाता है। इस प्रकार तमिल भाषा का प्रवर्तन ऋषि अगस्त्य ने ही किया। उनके अनेक पराक्रम विख्यात हैं।

एक दिन जब वे वनमार्ग से जा रहे थे, एक गड्ढे में उनके पितर लटके हुए मिले। ऋषि ने इसका कारण पूछा तो पितरों ने कहा कि संतान परंपरा के लोप की संभावना से हम यहाँ दुखी होकर लटके हैं। तब उन्होंने विवाह का वचन दिया और विवाह का संकल्प लिया। ऋषि अगस्त्य ने ध्यान साधना के द्वारा अपनी भावी पत्नी को देखा और तपस्या द्वारा उसकी रचना कर विदर्भराज के महल में पुत्री के रूप में उसे प्रदान किया। ब्राह्मणों ने उस कन्या का नाम लोपामुद्रा रखा। जब लोपामुद्रा युवती हुई तो महर्षि अगस्त्य उसे पत्नी रूप में स्वीकार करने के लिये विदर्भराज के यहाँ पहुँचे। विदर्भराज ने विधिपूर्वक कन्यादान किया। ऋषि के आश्रम में लोपामुद्रा भी तपस्या करने लगीं। जिससे उनका तेज और पवित्र सौन्दर्य बढ़ता गया। परंतु जब एक दिन ऋषि अगस्त्य ने रमण की इच्छा व्यक्त की तो लोपामुद्रा ने लज्जित सी होते हुए कहा -

ततः सा प्रान्जलिर्भूत्वा लज्जमानेव भाविनी।
तदा सप्रणयं वाक्यं भगवन्तमथाब्रवीत्।।
असंशयं प्रजाहेतोर्भार्यां पतिरविन्दत।
या तु त्वयि मम प्रीतिस्तामृषे कर्तुमर्हसि।।
यथा पितुर्गृहे विप्र प्रासादे शयनं मम।
तथाविधे त्वं शयने मामुपैतुमिहार्हसि।।

(महाभारत, वनपर्व, अध्याय 97, श्लोक 15 से 17)

अर्थात् लजाती हुई सी लोपामुद्रा ने ये प्रणयपूर्ण वाक्य अगस्त्य ऋषि से कहे–'निश्चय ही आपने संतान के लिए ही मुझे पत्नी रूप में ग्रहण किया है। परंतु मेरे हृदय में जो प्रीति है, उसे भी सफल करना आपका कर्तव्य है। मैं ये जीर्ण–शीर्ण काषाय वस्त्र पहनकर तो समागम नहीं करूँगी। पिता के महल में जैसी उत्तम शैया पर मैं सोती थी, वैसी शैया ही हमारे समागम के योग्य है।'

ऋषि ने कहा कि मेरे पास वैसा धन कहाँ परंतु लोपाम्रुदा ने कहा कि आप अपनी तपस्या क्षीण न करें अपितु दान लेकर धन प्राप्त करना उचित होगा जिससे दोनों का मान रह जाए। तब ऋषि अगस्त्य अनेक बड़े राजाओं के पास गए और दान माँगा। राजाओं ने आय–व्यय का संपूर्ण ब्यौरा ऋषि के सामने रख दिया –

तत आयव्ययौ पूर्णो तस्मै राजा न्यवेदयत्।
अतो विद्वन्नुपादत्स्व यदत्र वसु मन्यसे।।
तत आयव्ययौ द्रष्ट्वा समौ सममतिर्द्विजः।
सर्वथा प्राणिनां पीडामुपादानादमन्यत।।

अर्थात् राजा ने महर्षि के सामने आय–व्यय का संपूर्ण विवरण रख दिया। तब महर्षि ने देखा कि यह तो सम्यक है और इस राजकोष से कुछ भी लेना किन्हीं अन्य के कष्ट का ही कारण बनेगा। अतः कुछ भी लेना अस्वीकार कर दिया।

यहाँ महत्त्वपूर्ण बात यह है कि महाभारत के भी हजारों वर्ष पूर्व से भारत के राजाओं द्वारा आय और व्यय का विस्तार से विवरण रखा जाता था। जिसे देखते ही यह स्पष्ट हो जाता था कि आय के स्रोत क्या–क्या हैं और व्यय के मुद्दे क्या–क्या हैं। विश्व में और कहीं भी इतने प्राचीन समय से आय–व्यय विवरण रखे जाने का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

अंत में सभी राजाओं के यहाँ जब आय–व्यय के निर्दोष विवरण से कहीं से भी धन लेने में महर्षि को बहुत संकोच हुआ, तो महर्षि चिंता में पड़ गए। तब सब राजाओं ने सम्मिलित रूप से निवेदन किया कि इल्वल नामक दानव इस पृथ्वी पर सबसे अधिक धनी है। अतः हम सब आपके साथ चलकर उनसे ही धन माँगते हैं। जब राजाओं के साथ महर्षि अगस्त्य इल्वल के यहाँ पहुँचे तो उसने उनके साथ वही युक्ति अपनाई जो अब तक अन्य ब्राह्मणों के साथ कर रहा था। परंतु महर्षि अगस्त्य ने वातापि को पचा लिया और तब इल्वल ने उनकी महिमा से अभिभूत होकर बहुत सा धन दिया। जब उसके दिए स्वर्णरथ में लादकर समस्त धन लेकर महर्षि अगस्त्य चले तो इल्वल ने पीछे से उन्हें मार डालने का प्रयास किया और महर्षि की हुंकार से वह भस्म हो गया।

महर्षि धन के साथ अपने आश्रम पहुँचे और लोपामुद्रा की कामना पूरी की। उन दोनों के दृढ़स्यु नाम से एक महाविद्वान, महातपस्वी और तेजस्वी पुत्र हुए। इसके बाद महर्षि पुत्र को यज्ञ और स्वाध्याय का दायित्व सौंपकर तपस्या में लीन हो गए तथा उनके सभी पितरों ने मनोवांछित लोक प्राप्त किए। महर्षि का आश्रम अगस्त्य आश्रम के नाम से विख्यात हो गया।

ऋषि लोमश महाराज युधिष्ठिर को बताते हैं कि इल्वल–वातापी दैत्यराज प्रह्लाद के कुल में उत्पन्न हुए थे। परन्तु उनमें प्रह्लाद के संस्कार नहीं थे। दानव संस्कार ही थे। इसलिए वे इस प्रकार महर्षि अगस्त्य के द्वारा नष्ट किए गए।

इसी प्रकार ऋषि लोमश ने धर्मराज युधिष्ठिर को भगवान श्री परशुराम और भगवान श्रीराम की कथा बताते हुए भगवान परशुराम द्वारा भगवान श्रीराम को दिव्य धनुष तथा दिव्यबाण प्रदान किए जाने की अद्भुत गाथा भी सुनाई। **(क्रमशः)**

ए–142, आकृति हाईलैण्ड
डाकघर–फंदा, भोपाल–462036 (म.प्र.)
मो.–8349350267

स्वतंत्रता के लिए मैं मरने को तैयार हूँ

मूल – नेल्सन मंडेला
अनु. – विभा खरे

शिक्षा – एम.एच.एस.सी., एम.ए.।
रचनाएँ – पत्र-पत्रिकाओं में लेखन।
विशेष – अनुवाद में विशेष कार्य।

(गतांक से आगे) : प्रारंभिक योजना हमारे देश की राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति की सावधानीपूर्वक की गई समीक्षा पर आधारित थी। हम जानते थे कि मौटे तौर पर दक्षिण अफ्रीका विदेशी पूँजीगत निवेश तथा विदेशी व्यापार पर निर्भर था। हमारा विचार था कि विद्युत उत्पादन इकाइयों का योजनाबद्ध तरीके से विनाश तथा रेल तथा दूरभाष संचार प्रणालियों के साथ छेड़-छाड़ के परिणाम स्वरूप विदेशी निवेश में कमी आएगी, उत्पाद को तय समय पर औद्योगिक क्षेत्रों से गोदी तक पहुँचाने में कठिनाई होगी, और यह आगे चलकर देश की आर्थिक स्थिति के लिए गंभीर रूप से घातक होगा। इस प्रकार यह कदम देश के वोटरों को अपनी स्थिति पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य करेगा।

देश की जीवन रेखा पर आक्रमण शासकीय इमारतों और रंगभेद के अन्य प्रतीकों में तोड़-फोड़ के साथ जोड़ा जाना था। यह आक्रमण हमारे लोगों के लिए प्रेरणा के स्रोत बन जाते। इसके अतिरिक्त, ये उन व्यक्तियों को एक निर्गम भी प्रदान करते जो उग्र तरीके अपनाए जाने की माँग करते रहे थे और यह हमें अपने अनुयायियों को एक ठोस सबूत देने के लिए सक्षम बनाते कि हमने सरकारी हिंसा के विरुद्ध लड़ने हेतु एक ताकतवर रवैया इख़्तियार किया है।

इसके अतिरिक्त, यदि सामूहिक प्रयास सफलतापूर्वक सुनियोजित तरीके से आयोजित किये जाएँ, और सामूहिक प्रतिशोध की कार्यवाही हो, तो हमें लगा कि हमारे कृत्यों के कारणों के प्रति दूसरे राष्ट्रों में भी सहानुभूति पैदा होगी तथा इस प्रकार दक्षिण अफ्रीका की सरकार पर अधिक दबाव बनाया जा सकेगा।

तब यही योजना थी। उमखोंतो को तोड़-फोड़ की कार्यवाही करना थी, और शुरुआत से ही इसके सदस्यों को सख्त निर्देश थे कि उन्हें अपनी क्रन्तिकारी गतिविधियों की योजनाओं और उनके संचालन के दौरान किसी भी स्थिति में न ही लोगों की हत्या करना है और न ही उन्हें क्षति पहुँचाना है। यह निर्देश श्री 'क' और 'ख' के बयानों में संदर्भित किए जा चुके हैं।

उमखोंतो के मामले एक राष्ट्रीय आलाकमान द्वारा निर्देशित तथा नियंत्रित किए जाते थे, जिसे सह विकल्प की शक्तियाँ प्राप्त थीं, और जो क्षेत्रीय कमान की नियुक्ति कर सकता था जैसा कि उसने किया भी। आलाकमान वह संस्था थी जो लक्ष्य और तरीके निर्धारित करती थी और जिसके पास प्रशिक्षण तथा वित्तप्रबंधन का प्रभार था। आलाकामन के अधीन क्षेत्रीय कमान थे जिन पर स्थानीय तोड़-फोड़ समूहों को निर्देशित किए जाने की जिम्मेदारी थी। राष्ट्रीय आलाकमान द्वारा बनाई गई नीति के दायरे में, क्षेत्रीय कमान को आक्रमण हेतु लक्ष्यों का चयन करने का अधिकार प्राप्त था। उन्हें राष्ट्रीय आलाकमान द्वारा निर्धारित कार्ययोजना के परे जाने का अधिकार नहीं था अत: उन्हें उन कार्यों को शुरू करने का भी अधिकार नहीं था जो मानवीय जीवन के लिए खतरा हों या जो कि तोड़-फोड़ की समग्र योजना के ढाँचे के उपयुक्त नहीं थे। उदाहरण के तौर पर उमखोंतो को अपने अभियान पर सशस्त्र जाना प्रतिबंधित था। संयोग से, विशेषण आलाकमान और क्षेत्रीय कमान एक राष्ट्रीय भूमिगत नाज़ समूह इर्गुन ज़्वाई से आयतित किए गए थे जो इज़राइल में सन 1944 तथा 1984 के मध्य सक्रिय था।

उमखोंतो का प्रथम अभियान 16 दिसंबर 1961 को प्रारम्भ हुआ जब जोहान्सबर्ग में शासकीय इमारतों, एलिजाबेथ और डरबन बंदरगाहों पर आक्रमण किया गया। लक्ष्यों का चयन उस नीति का सबूत है जिसका उल्लेख मैंने किया था। यदि हमारा उद्देश्य इन्सानी जिंदगियों को नुकसान पहुँचाना होता, तो हम बजाय रिक्त इमारतों और विद्युत उत्पादन संयंत्रों के उन लक्ष्यों का चयन करते जहाँ लोगों की भीड़ इकट्ठी होती हो। 16 दिसंबर 1961 के पूर्व की तोड़-फोड़ पृथक समूहों का कार्य था और इससे उमखोंतो का कोई सरोकार नहीं था। वास्तव में,

इनमें से कुछ और बाद के कई कार्यों की जवाबदारी अलग समूहों द्वारा ली गई थी।

उमखोंतो का घोषणापत्र इसके अभियान प्रारम्भ किए जाने के दिन ही जारी हुआ था। हमारे कार्यों और घोषणापत्र के प्रति श्वेत जनसंख्या की प्रतिक्रिया विशेष रूप से उग्र थी। सरकार ने कठोर कार्यवाही किए जाने की धमकी दी तथा अपने सहयोगियों से दृढ़ता पूर्वक डटे रहने और अफ्रीकन लोगों की माँगों की उपेक्षा करने का आह्वान किया। श्वेत लोग परिवर्तन के सुझाव के रूप में प्रतिक्रिया देने में विफल रहे, उन्होंने हमारे आह्वान पर अपनी प्रतिक्रिया वैगनों या बख्तरबंद वाहनों के घेरे द्वारा संरक्षित एक छावनी के सुझाव से दी।

इसके विपरीत, अफ्रीकियों की प्रतिक्रिया उत्साहवर्धक थी। अचानक आशा पुन: जाग गई थी। पुन: कुछ होना शुरू हुआ था। शहरों के लोग राजनैतिक समाचारों के लिए आतुर हो गए थे। प्रारंभिक सफलताओं ने लोगों में नए जोश और उत्साह को जन्म दिया था और लोग इस बात का अंदाजा लगाने लगे थे कि अब कितनी जल्दी स्वतंत्रता मिल जाएगी।

पर उमखोंतो में हमने श्वेत प्रतिक्रिया का व्याकुलता से मूल्यांकन किया। रेखाएँ खींची जा रहीं थीं। श्वेत तथा अश्वेत पृथक खेमों की तरफ जा रहे थे तथा गृहयुद्ध को टालने की संभावनाएँ दिन-ब-दिन कम होती जा रहीं थीं। श्वेत समाचारपत्रों में रिपोर्ट जारी की जा रही थी कि तोड़-फोड़ की सजा मृत्युदंड होगी। अगर ऐसा था, तो हम अफ्रीकियों को आतंकवाद से दूर रखना कैसे जारी रख सकते थे।

पहले ही बड़ी संख्या में अफ्रीकन लोग वर्णभेदी विवादों के परिणामस्वरूप मारे जा चुके थे। 1920 में, जब प्रसिद्ध नेता, मसाबाला, को एलिजाबेथ बंदरगाह के कारावास में बंदी बनाया गया था, अफ्रीकियों के एक समूह, जो कि उनको छोड़े जाने की माँग कर रहा था, के 24 लोगों को पुलिस तथा श्वेत नागरिकों द्वारा मार दिया गया था। 1921 में बुल्होएक प्रकरण में सौ से अधिक अफ्रीकन मारे गए थे। 1924 में दो सौ से अधिक अफ्रीकन मार दिए गए थे जब दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका के प्रशासन ने श्वान कर लगाए जाने के विरुद्ध प्रदर्शन कर रहे लोगों के प्रति बल प्रयोग किया था। 1 मई 1950 को एक हड़ताल के दौरान पुलिस की गोलियों से 18 अफ्रीकन मारे गए थे। 21 मार्च 1960 को शार्पविले में 69 नि:शस्त्र अफ्रीकी मारे गए थे।

हमारे देश के इतिहास में और कितने ज्यादा शार्पविले होंगे? और देश बिना हिंसा और आतंक को रोजाना का नियम बनाए ऐसे और कितने शार्पविले सहन करेगा? और जब ऐसी स्थिति आ जाएगी तब हमारे लोगों का क्या होगा? लम्बी अवधि में शायद हम कुछ जीत भी हासिल कर लें, पर अपनी और बाकी देश के लिए किस कीमत पर? और अगर ऐसा हुआ तो श्वेत और अश्वेत शांति और भाईचारे के साथ कैसे साथ-साथ रह सकेंगे? ये वो समस्याएँ थीं जिनका हमें सामना करना पड़ा और यह हमारे निर्णय थे।

अपने अनुभवों के द्वारा हमें यह यकीन था कि हमारे विद्रोह सरकार को हमारे लोगों का अविवेकपूर्ण रूप से वध करने की असीमित संभावनाएँ प्रदान करेंगे। पर फिर भी यह बिल्कुल सही था क्योंकि दक्षिण अफ्रीका की धरती पर वैसे भी मासूम अफ्रीकियों का काफी रक्त बह चुका था और हम लम्बी अवधि के उपक्रम के रूप में अपने विरुद्ध शक्ति बल के प्रयोग से अपने आपको बचने के लिए शक्ति बल का प्रयोग करने की तैयारी किए जाने को अपना कर्तव्य समझते थे। अगर युद्ध अपरिहार्य था तो हम यह चाहते थे कि यह लड़ाई उन शर्तों पर लड़ी जाए जो हमारे लोगों के लिए सर्वाधिक अनुकूल हों। वो लड़ाई, जिसमें हमारे लिए सर्वश्रेष्ठ सम्भावनाएँ हों और दोनों पक्षों के लिए जीवन के अंत का खतरा कम से कम हो, गुरिल्ला युद्ध थी। इसलिए हमने तय किया कि भविष्य के लिए हमारी तैयारियों में गुरिल्ला युद्ध की सम्भावना हेतु प्रावधान रखने होंगे।

सभी श्वेत लोगों को अनिवार्य रूप से सैन्य प्रशिक्षण दिया जाता था पर अफ्रीकियों को ऐसा कोई प्रशिक्षण नहीं दिया जाता था। हमारी दृष्टि में कुछ प्रशिक्षित लोगों का एक नाभिकीय केंद्र बनाया जाना जरूरी था जो गुरिल्ला युद्ध छिड़ने की स्थिति में आवश्यक नेतृत्व प्रदान कर सके। इससे पहले कि विधिवत तैयारी के लिए विलम्ब हो जाए, हमें उस स्थिति के लिए अपने आपको तैयार करना ही था। सामान्य प्रशासन तथा अन्य पेशों में प्रशिक्षित लोगों का भी एक नाभकीय केंद्र बनाया जाना आवश्यक था ताकि हम अफ्रीकी देश की सरकार में शामिल होने का अवसर प्रदाय किए जाने पर उसमें शामिल होने के लिए भली-भाँति तैयार हों।

इस चरण में यह तय किया गया कि मुझे मध्य, पूर्व और दक्षिण अफ्रीका हेतु पैन अफ्रीकन स्वतंत्रता संग्राम के सम्मलेन में भाग लेना चाहिए जो कि सन 1962 के आरम्भ में आदिसबाबा में आयोजित था और हमारी तैयारी की आवश्यकता के मद्देनजर ये भी निश्चित किया गया कि सम्मेलन के पश्चात् मैं, सैनिकों के प्रशिक्षण की सुविधा की दृष्टि से अफ्रीकी राज्यों का दौरा करूँगा और माध्यमिक शिक्षा प्राप्त अफ्रीकियों की उच्च शिक्षा हेतु वजीफे की भी माँग करूँगा। दोनों ही क्षेत्रों में प्रशिक्षण की

आवश्यकता होगी भले ही परिवर्तन शांतिप्रिय माध्यमों से ही क्यों न प्राप्त हो। ऐसे प्रशासकों की आवश्यकता होगी जो एक वर्ण भेद मुक्त राज्य का प्रशासन करने हेतु सक्षम हों और इच्छुक हों और ऐसे ही लोग ऐसे राज्य में सेना और पुलिस बल के नियंत्रण हेतु आवश्यक होंगे।

इस प्रकार मैंने ए. एन. सी. के प्रतिनिधि के तौर पर दक्षिण अफ्रीका से आदिसबाबा हेतु प्रस्थान किया। मेरा दौरा सफल रहा। मैं जहाँ भी गया मुझे हमारे कार्यों के लिए संवेदना तथा मदद के वादे मिले। श्वेत दक्षिण अफ्रीका के पक्ष के विरोध में समूचा अफ्रीका एकजुट था, यहाँ तक कि लन्दन में भी मुझे श्री गैट्सकेल तथा ग्रिमोंड जैसे राजनैतिक नेताओं से बहुत संवेदना प्राप्त हुई। अफ्रीका में मुझे जिन लोगों मदद का वादा किया उनमें श्री जूलियस न्येरेरे, वर्तमान राष्ट्रपति तांगान्यिका, श्री कावावा तांगान्यिका के तत्कालीन प्रधानमंत्री, इथिओपिआ के नरेश हैले सेलसिए, सूडान के राष्ट्रपति जनरल अब्बौड, टुनेशिया के राष्ट्रपति हबीब बौरगुइबा, अल्जीरिया के वर्तमान राष्ट्रपति बेन बेल्ला, माली के राष्ट्रपति मोदीबो कइटा, सेनेगल के राष्ट्रपति लियोपोल्ड सेंघोर, गिनी के राष्ट्रपति सेकौ तौरे, लाइबेरिया के राष्ट्रपति तुबमेन, यूगांडा के प्रधानमंत्री मिल्टन ओबोटे जैसे नेता शामिल हैं। बेन बेल्ला ने मुझे औज्दा आने का न्यौता दिया जो कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता की अल्गेरियन आर्मी का मुख्यालय है, यह यात्रा जो मेरी एक डायरी में वर्णित है जो मैंने सबूत के तौर पर प्रस्तुत की है ।

मैंने युद्ध कौशल तथा क्रांति पर एक अध्ययन करना प्रारम्भ किया और जब मैं विदेश में था सैन्य प्रशिक्षण का एक कोर्स भी कर लिया। अगर गुरिल्ला युद्ध होता तो मैं अपने लोगों के साथ खड़े होने और लड़ने के योग्य बनना एवं युद्ध के खतरे उनके साथ साझा करना चाहता था। अल्जीरिया में प्राप्त व्याख्यान के नोट प्रादर्श 16 के रूप में सबूत के तौर पर प्रस्तुत किए गए हैं। गुरिल्ला युद्ध और सैन्य रणनीति पर पुस्तकों का सारांश भी प्रस्तुत किया है। मैं पहले ही यह स्वीकार कर चुका हूँ ये दस्तावेज़ मेरी हस्तलिपि में हैं और यह भी स्वीकार कर चुका हूँ कि मैंने यह पढ़ाई अपने आपको उस भूमिका को निभाने के लिए सुसज्जित होने के उद्देश्य से की थी जो मुझे हमारे संघर्ष को गुरिल्ला युद्ध की ओर सरकने की दशा में मुझे निभाना पड़ती। मैंने इस प्रश्न को उसी तरह लिया जैसे इसे हर अफ्रीकी राष्ट्रवादी को लेना चाहिए। मैं पूर्णतः निष्पक्ष था। न्यायालय देखेगी कि मैंने इस विषय पर हर प्रकार के अधिकारों का अध्ययन करने का प्रयास किया–पूर्व की ओर से तथा पश्चिम की ओर से, क्लाउसेवित्ज़ के शास्त्रीय कार्यों की ओर लौटना और एक तरफ माओ त्से तुंग और चे गुएवारा एवं दूसरी ओर एंग्लो–बोएर युद्ध के लेखों जैसी विविधता को देखना। बिल्कुल, ये टीप केवल उन पुस्तकों का सारांश है जो मैंने पढ़ीं और इनमें मेरे निजी विचार नहीं हैं।

मैंने अपने भर्ती किए लोगों के भी सैन्य प्रशिक्षण की व्यवस्था की। परन्तु यहाँ अफ्रीका में ए. एन. सी. के कार्यालयों के सहयोग के बिना कोई भी योजना चलाई जाना असंभव था। परिणामस्वरूप मैंने दक्षिण अफ्रीका में यह करने के लिए ए. एन. सी. से अनुमति ली। इस सीमा तक वहाँ ए. एन. सी. के मूल निर्णय से जरा प्रस्थान था किन्तु यह केवल अफ्रीका के बाहर ही लागू हुआ था। दरअसल प्रशिक्षुओं की पहली खेप तांगान्यिका तब पहुँची जब मैं दक्षिण अफ्रीका की वापसी की यात्रा के दौरान उस देश से गुजर रहा था।

मैंने दक्षिण अफ्रीका वापस पहुँच कर अपने सहयोगियों को अपनी यात्रा के निष्कर्षों से अवगत कराया। अपनी वापसी पर मैंने पाया कि राजनैतिक परिदृश्य में थोड़ा बदलाव हुआ है यह कि तोड़–फोड़ की कार्यवाही पर मृत्युदंड की धमकी अब एक वास्तविकता बन चुकी थी। उमखोंतो में मेरे सहयोगियों का नजरिया कुल मिला कर वैसा ही था जैसा कि यह मेरे जाने के पहले था। वे अपनी राह को सावधानीपूर्वक तरीके से अनुभव कर रहे थे और यह महसूस करते थे कि तोड़–फोड़ की सम्भावनाओं को समाप्त होने में वक्त लगना था। वास्तव में, किसी ने यह विचार भी व्यक्त किया था कि रंगरूटों का प्रशिक्षण समय से पूर्व की जाने वाली कार्यवाही थी। मेरे द्वारा इसे प्रादर्श आर 14 के दस्तावेज में दर्ज किया गया है। हालाँकि, एक सम्पूर्ण विचार विमर्श के बाद यह तय किया गया कि हम प्रशिक्षण की कार्ययोजना को आगे बताएँगे क्योंकि यह तय था कि गुरिल्ला युद्ध अभियान प्रारम्भ करने के लिए पूर्ण प्रशिक्षित सैनिकों का एक नाभिकीय केंद्र तैयार करने में कई साल लग जाएँगे और कुछ भी हो प्रशिक्षण मूल्यवान ही होगा।

अब में कुछ सामान्य अभियोगों की ओर जाना चाहूँगा जो इस प्रकरण में शासन द्वारा मुझ पर लगाए गए हैं। पर ऐसा करने से पहले मैं कुछ घटनाओं पर लौटना चाहता हूँ, जो गवाहों के हवाले से बताई गई हैं कि पोर्ट एलिज़ाबेथ और पूर्वी लन्दन में घटित हुई हैं। मैं सितम्बर, अक्टूबर तथा नवम्बर 1962 में सरकार का समर्थन करने वाले लोगों के निजी भवनों में बम फेंके जाने के सम्बन्ध में बात कर रहा हूँ। मैं नहीं जानता कि इन घटनाओं को कैसे उचित कहा जा सकता है न ही ये कि किस तरह से इन्हें उकसाया गया होगा। किन्तु यदि जो मैंने कहा उसे

पहले ही मान लिया गया हो तो यह स्पष्ट ही है कि इन घटनाओं से उमखोंतो की नीतियों को चलाए जाने का कुछ लेना-देना नहीं था।

अभियोग में एक प्रमुख आरोप यह है कि ए. एन. सी. ही वह दल था जिसने सामन्यत: तोड़-फोड़ की कार्यवाही का षड्यंत्र रचा। मैं पहले ही यह बता चुका हूँ कि यह क्यों गलत है पर किस तरह बाहरी तौर पर ए. एन. सी. द्वारा निर्धारित मूल सिद्धांतों से पलायन हुआ था। आंतरिक रूप से भी कार्यों में परस्परव्याप्ति बिल्कुल हो रही थी क्योंकि समिति द्वारा कमरे के भीतर के वातावरण में लिए गए संकल्प और व्यावहारिक क्रियान्वयन के क्षेत्र में पैदा होने वाली ठोस समस्याओं के बीच अंतर था। थोड़े बाद के स्तर पर प्रतिबंधित करने और नजर बंद करने तथा लोगों द्वारा विदेशों में राजनैतिक कार्यों को शुरू करने के लिए देश छोड़ने के कारण स्थिति और प्रभावित हुई। इसने लोगों को अलग-अलग क्षमताओं में कार्य करने के लिए अग्रसर किया। पर चाहे इसने उमखोंतो और ए. एन. सी. के बीच के अंतर को थोड़ा धुँधला कर दिया हो, किसी भी तरह से उसे समाप्त नहीं किया। दक्षिण अफ्रीका में इन दोनों संगठनों के कार्यों को अलग-अलग रखे जाने में बहुत सावधानी बरती गई थी। ए. एन. सी. अफ्रीकियों का आम राजनैतिक दल बना रहा और उसी तरह के राजनैतिक कार्य करता रहा जो वह सन 1961 के पूर्व कर रहा था। उमखोंतो छोटा संगठन बना रहा जो अपने सदस्यों को विभिन्न जातियों और दलों के माध्यम से भर्ती करता रहा और अपने खुद के विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करता रहा। यह तथ्य कि उमखोंतो के सदस्य ए. एन. सी. से भर्ती किए गए और यह तथ्य कि सोलोमन बैंजवा जैसे लोग दोनों संगठनों में सेवाएँ दे रहे थे, हमारे मतानुसार ए. एन. सी. का स्वरूप नहीं बदलता एवं इसे हिंसा की नीति नहीं देता। हालाँकि अधिकारियों की यह परस्परव्याप्ति नियम से अधिक अपवाद थी। इसीलिए लोग श्री 'क' और श्री 'ख', जो अपने क्षेत्र की क्षेत्रीय कमान में थे , ए. एन. सी. की किसी समिति या गतिविधि में भाग नहीं लेते थे तथा क्यों लोगों जैसे श्री बेनेट मशीयना और श्री रेजिनाल्ड दूबी ने अपनी ए. एन. सी. की बैठकों में तोड़-फोड़ के बारे में नहीं सुना।

अभियोग में एक अन्य आरोप यह है कि उमखोंतो का मुख्यालय रिवोनिया था। यह उस समय तक तो सत्य नहीं था जब तक मैं वहाँ था। मुझे बताया जरूर गया था, और मैं जानता था कि वाम दल की कुछ गतिविधियाँ वहाँ से संचालित होती थीं। पर यह कोई कारण नहीं था (जैसा कि मैं अभी बताऊँगा) कि मैंने उस जगह का इस्तेमाल क्यों नहीं किया।

मैं वहाँ इस तरीके से आया था :- 1. जैसा कि पूर्व में इंगित किया गया है, अप्रैल 1961 के प्रारम्भ में मैं मई की सामान्य हड़ताल आयोजित करने के लिए भूमिगत था। मेरे कार्य में सम्पूर्ण देश की यात्रा अपरिहार्य थी, अभी अफ्रीकी शहरों में रह रहा हूँ, फिर सुदूर ग्राम में और फिर नगर में। वर्ष के उत्तरार्ध में मैंने ऑर्थर गोल्डरिच के गृह पार्कटाउन का भ्रमण शुरू किया, जहाँ मैं निजी तौर पर अपने परिवार से मिला करता था। हालाँकि उनके साथ मेरा कोई सीधा राजनैतिक सम्बन्ध नहीं था किन्तु मैं ऑर्थर गोल्डरिच को सामाजिक रूप से 1958 से जानता था।

2. अक्टूबर में ऑर्थर गोल्डरिच ने मुझे सूचित किया कि वह शहर से बाहर जा रहा है और उसने मुझे छुपने के लिए एक जगह का प्रस्ताव दिया। उसके कुछ दिनों बाद उसने मिचेल हार्मेल को मेरे पास मुझे रिवोनिआ ले जाने के लिए भेजा। मुझे स्वाभाविक रूप से रिवोनिआ एक ऐसे आदमी के रहने के लिए उपयुक्त स्थान लगा जो एक दस्यु का जीवन बिता रहा हो। उस समय तक मैं दिन के समय घर के अंदर रहने के लिए मजबूर था और केवल अँधेरे के आवरण में सावधानी पूर्वक बाहर निकल सकता था। पर लिलीस लीफ (रिवोनिआ का फार्म) में अलग तरीके से रह सकता था और अपना कार्य अधिक दक्षता के साथ कर सकता था।

3. जाहिर कारणों से मुझे वेशभूषा बदलनी पड़ी और मैंने अपना एक काल्पनिक नाम डेविड रख लिया था। दिसंबर में ऑर्थर गोल्डरिच और उसका परिवार आ गया। मैं वहाँ 11 जनवरी 1962 को अपने विदेश जाने तक रहा। जैसा कि दर्शाया गया है मैं जुलाई 1962 में वापस आया और नटाल में 5 अगस्त को गिरफ्तार कर लिया गया।

4 . मेरी गिरफ्तारी के समय तक लिलीज़ लीफ फॉर्म न तो अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस का मुख्यालय था न ही उमखोंतो का। मेरे अलावा इस संस्थाओं का कोई भी अधिकारी अथवा सदस्य वहाँ नहीं रहा, प्रशासनिक निकायों की कोई बैठकें वहाँ कभी भी आयोजित नहीं की गईं, और उनसे सम्बंधित कोई भी गतिविधि न तो वहाँ आयोजित की गई और न ही ऐसा कोई निर्देश वहाँ से जारी किया गया। मेरे लिलीज़ लीफ फॉर्म में निवास के दौरान कई अवसरों पर मैं ए. एन. सी. तथा एन. एच. सी. की कार्यकारिणी समिति से मिला पर वे बैठकें कहीं और हुआ करती थीं फॉर्म पर नहीं।

5. लिलीज लीफ फॉर्म में रहने के दौरान मैं अक्सर ऑर्थर

गोल्डरिच से उसके मुख्य घर में मिलने जाता रहता था और वह भी मेरे कमरे पर आता था। हमारे बीच में विभिन्न विषयों पर अनेक राजनैतिक चर्चाएँ होतीं थीं। हम सामान्यत:, आदर्शवादी और व्यावहारिक प्रश्नों, कांग्रेस गठबंधन, उमखोंतो और इसकी गतिविधियाँ और पाळमच, हगनाह की सैन्य शाखा, में एक सैनिक के रूप में उसके अनुभवों के बारे में विचार-विमर्श करते थे। हगनाह, पलेस्तीन में ज्यूइश राष्ट्रीय अभियान का राजनैतिक प्राधिकरण था।

6. गोल्डरिच के बारे में मेरी जानकारी के आधार पर अपने दक्षिण अफ्रीका वापस लौटने पर मैंने उसे उमखोंतो में भर्ती किए जाने की सिफारिश की। मेरी व्यक्तिगत जानकारी में नहीं है कि यह हुआ या नहीं।

राज्य द्वारा लगाया गया एक और आरोप यह है कि ए.एन.सी. और कम्युनिस्ट पार्टी के लक्ष्य और उद्देश्य समान हैं। मैं इसकी और अपनी राजनीतिक स्थिति की चर्चा करना चाहता हूँ, क्योंकि मुझे स्पष्ट है कि राज्य कुछ प्रदर्शनों से यह तर्क देने की कोशिश कर सकता है कि मैंने ए.एन.सी. में मार्क्सवाद को पेश करने की कोशिश की थी। ए.एन.सी. पर लगाया गया आरोप गलत है। यह एक पुराना आरोप है जिसे राजद्रोह के मुकदमे में खारिज कर दिया गया था और जिसने फिर से अपना सिर उठाया है। लेकिन चूँकि आरोप फिर से लगाया गया है, इसलिए मैं इसके साथ-साथ ए.एन.सी. और कम्युनिस्ट पार्टी और उमखोंतो और उस पार्टी के बीच संबंधों की भी चर्चा करूँगा।

ए. एन. सी का वैचारिक पंथ अफ्ररीकी राष्ट्रवाद का पंथ है और हमेशा से रहा है। यह अफ्ररीकी राष्ट्रवाद की अवधारणा नहीं है जो 'श्वेत व्यक्ति को समुद्र में ले जाओ' के नारे में व्यक्त की गई है। अफ्रीकी राष्ट्रवाद, जिसके लिए ए. एन. सी. साथ है, अफ्रीकी लोगों के लिए उनकी अपनी भूमि में स्वतंत्रता और संतुष्टि की अवधारणा है। ए. एन. सी. द्वारा अभी तक अपनाया गया सबसे महत्त्वपूर्ण राजनीतिक दस्तावेज़ 'स्वतंत्रता चार्टर' है। यह किसी भी तरह से समाजवादी राज्य का खाका नहीं है। यह भूमि के पुनर्वितरण की माँग करता है, लेकिन राष्ट्रीयकरण की नहीं; यह खानों, बैंकों और एकाधिकार उद्योग के राष्ट्रीयकरण का प्रावधान करता है, क्योंकि बड़े एकाधिकार का स्वामित्व केवल एक जाति के पास निहित है, और इस तरह के राष्ट्रीयकरण के बिना, राजनीतिक शक्ति के प्रसार के बावजूद, नस्लीय वर्चस्व कायम रहेगा। जब सभी सोने की खदानें यूरोपीय कंपनियों के स्वामित्व में हैं, तो अफ्रीकियों के खिलाफ स्वर्ण कानून के प्रतिबंधों को रद्द करना एक खोखला संकेत होगा। इस संबंध में ए. एन. सी. की नीति वर्तमान राष्ट्रवादी पार्टी की पुरानी नीति से मेल खाती है, जो कई वर्षों से अपने कार्यक्रम के हिस्से के रूप में सोने की खदानों का राष्ट्रीयकरण कर रही थी, जो उस समय विदेशी पूँजी द्वारा नियंत्रित थीं। स्वतंत्रता चार्टर के तहत निजी उद्यम पर आधारित अर्थव्यवस्था का राष्ट्रीयकरण होना था। स्वतंत्रता चार्टर के साकार होने से मध्यम वर्ग सहित सभी वर्गों की समृद्ध अफ्रीकी आबादी के लिए नए क्षेत्र खुल सकेंगे। ए. एन. सी. ने अपने इतिहास के किसी भी दौर में कभी भी देश की आर्थिक संरचना में क्रांतिकारी बदलाव की वकालत नहीं की है, न ही जहाँ तक मुझे याद है, उसने कभी पूँजीवादी समाज की निंदा की है।

जहाँ तक कम्युनिस्ट पार्टी का सवाल है, और अगर मैं उसकी नीति को सही ढंग से समझता हूँ, तो वह मार्क्सवाद के सिद्धांतों पर आधारित एक राज्य की स्थापना के पक्ष में है। यद्यपि यह श्वेत वर्चस्व द्वारा उत्पन्न समस्याओं के अल्पकालिक समाधान के रूप में स्वतंत्रता चार्टर के अनुसार काम करने के लिए तैयार है, किन्तु यह स्वतंत्रता चार्टर को अपने कार्यक्रम की शुरुआत मानता है, न कि अंत।

कम्युनिस्ट पार्टी के विपरीत, ए. एन. सी. ने केवल अफ्रीकियों को सदस्य के रूप में स्वीकार किया। इसका मुख्य लक्ष्य अफ्रीकी लोगों के लिए एकता और पूर्ण राजनीतिक अधिकार हासिल करना था और है। दूसरी ओर, कम्युनिस्ट पार्टी का मुख्य उद्देश्य पूँजीपतियों को हटाना और उनके स्थान पर श्रमिक वर्ग की सरकार स्थापित करना था। कम्युनिस्ट पार्टी ने वर्ग भेदों पर जोर देने की कोशिश की, जबकि ए. एन. सी. उनमें सामंजस्य बिठाने की कोशिश करती है। यह एक महत्त्वपूर्ण अंतर है।

यह सच है कि ए. एन. सी. और कम्युनिस्ट पार्टी के बीच अक्सर घनिष्ठ सहयोग रहा है। लेकिन इस सहयोग को केवल एक समान लक्ष्य का प्रमाण कह सकते हैं-इस मामले में श्वेत वर्चस्व को हटाना-और यह साझा हितों के सम्पूर्ण समुदाय का प्रमाण नहीं है।

विश्व का इतिहास कई ऐसे ही समान उदाहरणों से भरा पड़ा है। संभवत: सबसे उल्लेखनीय उदाहरण हिटलर के खिलाफ लड़ाई में ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के बीच सहयोग में पाया जा सकता है। हिटलर के अलावा और कोई यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकेगा कि इस तरह के सहयोग ने चर्चिल या रूजवेल्ट को कम्युनिस्ट या कम्युनिस्ट टूल में बदल दिया, या कि ब्रिटेन और अमेरिका एक कम्युनिस्ट दुनिया बनाने के लिए काम कर रहे थे।

इस तरह के सहयोग का एक और उदाहरण उमखोंतो में पाया जाता है। उमखोंतो के गठन के कुछ ही समय बाद, इसके कुछ सदस्यों ने मुझे सूचित किया कि कम्युनिस्ट पार्टी उमखोंतो का समर्थन करेगी, और फिर ऐसा ही हुआ। बाद में खुलकर समर्थन किया गया।

मेरा मानना है कि कम्युनिस्टों ने औपनिवेशिक देशों द्वारा उनकी आजादी की लड़ाई में हमेशा सक्रिय भूमिका निभाई है, क्योंकि साम्यवाद के अल्पकालिक उद्देश्य हमेशा स्वतंत्रता आंदोलनों के दीर्घकालिक उद्देश्यों के अनुरूप होते हैं । इस प्रकार मलाया, अल्जीरिया और इंडोनेशिया जैसे देशों में लड़े गए स्वतंत्रता संग्राम में कम्युनिस्टों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, फिर भी इनमें से कोई भी राज्य आज कम्युनिस्ट देश नहीं है। इसी प्रकार पिछले विश्व युद्ध के दौरान यूरोप में जो भूमिगत प्रतिरोध आन्दोलन उभरे उनमें कम्युनिस्टों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यहाँ तक कि जनरल चियांग काई-शेक, जो आज साम्यवाद के सबसे कट्टर दुश्मनों में से एक हैं, ने कम्युनिस्टों के साथ मिलकर शासक वर्ग के खिलाफ संघर्ष किया, जिसके कारण उन्हें 1930 के दशक में चीन में सत्ता सँभालनी पड़ी।

कम्युनिस्टों और गैर-कम्युनिस्टों के बीच सहयोग का यह पैटर्न दक्षिण अफ्रीका के राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में दोहराया गया है। कम्युनिस्ट पार्टी पर प्रतिबंध लगाने से पहले, कम्युनिस्ट पार्टी और कांग्रेस आंदोलनों से जुड़े संयुक्त अभियानों को स्वीकृत किए जाने का चलन था। अफ्रीकी कम्युनिस्ट ए.एन.सी. के सदस्य बन सकते थे और बने भी, और कुछ ने राष्ट्रीय, प्रांतीय और स्थानीय समितियों में कार्य किया। राष्ट्रीय कार्यकारिणी में सेवा देने वालों में कम्युनिस्ट पार्टी के पूर्व सचिव अल्बर्ट नज़ुला, एक अन्य पूर्व सचिव मूसा कोटाने और केंद्रीय समिति के पूर्व सदस्य जे. बी. मार्क्स शामिल हैं।

मैं 1944 में ए.एन.सी. में शामिल हुआ, और अपने युवा दिनों में मेरा विचार था कि कम्युनिस्टों को ए. एन. सी. में शामिल करने की नीति, और ए. एन. सी. और कम्युनिस्ट पार्टी के बीच विशिष्ट मुद्दों पर समय-समय पर होने वाला घनिष्ठ सहयोग, आगे चलकर अफ्रीकी राष्ट्रवाद की अवधारणा को कमज़ोर करेगा। उस समय मैं अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस यूथ लीग का सदस्य था, और उस समूह में से एक था जो ए. एन. सी. से कम्युनिस्टों के निष्कासन के लिए आंदोलन कर रहा था। यह प्रस्ताव बुरी तरह पराजित हुआ। प्रस्ताव के खिलाफ़ मतदान करने वालों में अफ्रीकी राजनीतिक विचारधारा के कुछ सबसे रूढ़िवादी वर्ग के नेता भी शामिल थे। उन्होंने इस आधार पर नीति का बचाव किया कि अपनी स्थापना के समय से ही ए. एन. सी. का गठन और निर्माण किसी एक राजनीतिक विचारधारा वाले राजनीतिक दल के रूप में नहीं बल्कि अफ्रीकी लोगों की एक संसद के रूप में किया गया था, जिसमें विभिन्न राजनीतिक विश्वासों के लोगों को शामिल किया गया था, जो कि राष्ट्रीय मुक्ति का समान लक्ष्य के प्रति एकजुट थे। अंततः मुझे इस दृष्टिकोण पर राजी कर लिया गया और तब से मैंने इसे कायम रखा है।

साम्यवाद के प्रति अंतर्निहित पूर्वाग्रह वाले श्वेत दक्षिण अफ्रीकी लोगों के लिए शायद यह समझना मुश्किल है कि अनुभवी अफ्रीकी राजनेता कम्युनिस्टों को इतनी आसानी से अपने दोस्तों के रूप में स्वीकार क्यों करते हैं। लेकिन हमारे लिए कारण स्पष्ट है। उत्पीड़न के खिलाफ लड़ने वालों के बीच सैद्धांतिक मतभेद एक ऐसी विलासिता है जिसे हम इस स्तर पर वहन नहीं कर सकते। इससे भी अधिक, कई दशकों तक दक्षिण अफ्रीका में कम्युनिस्ट ही एकमात्र राजनीतिक समूह थे जो अफ्रीकियों के साथ इंसानों और उनके समकक्षों के रूप में व्यवहार करने के लिए तैयार थे; जो हमारे साथ भोजन करने, बात करने, रहने और साथ काम करने को तैयार थे। वे एकमात्र राजनीतिक समूह थे जो राजनीतिक अधिकारों और समाज में हिस्सेदारी की प्राप्ति के लिए अफ्रीकियों के साथ काम करने के लिए तैयार थे। इस वजह से, ऐसे कई अफ्रीकी लोग हैं, जो वर्तमान में आज़ादी को साम्यवाद से जोड़ते हैं। इस विश्वास में उन्हें एक विधायिका द्वारा समर्थन प्राप्त है जो लोकतांत्रिक सरकार और अफ्रीकी स्वतंत्रता के सभी प्रतिपादकों को कम्युनिस्ट के रूप में ब्रांड करती है और साम्यवाद दमन अधिनियम के तहत उनमें से कई (जो कम्युनिस्ट नहीं हैं) पर प्रतिबंध लगाती है। हालाँकि मैं कभी भी कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य नहीं रहा हूँ, लेकिन अवज्ञा अभियान में मेरी भूमिका के कारण मुझे स्वयं उस खतरनाक अधिनियम के तहत नामित किया गया। मुझे भी उस अधिनियम के तहत प्रतिबंधित किया गया और जेल में डाला गया है।

ऐसा केवल आंतरिक राजनीति में ही नहीं है कि हम कम्युनिस्टों को उन लोगों में रखते हैं जो हमारे उद्देश्य का समर्थन करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में साम्यवादी देश सदैव हमारी सहायता के लिए आते रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र और दुनिया की अन्य परिषदों में कम्युनिस्ट गुट ने उपनिवेशवाद के खिलाफ अफ्रीकी-एशियाई संघर्ष का समर्थन किया है और अक्सर कुछ पश्चिमी शक्तियों की तुलना में हमारी दुर्दशा के प्रति अधिक सहानुभूति रखी है। यद्यपि रंगभेद की सर्वव्यापी निंदा होती है, तथापि साम्यवादी गुट श्वेत दुनिया के

अधिकांश लोगों की तुलना में इसके खिलाफ ऊँची आवाज में बोलता है। इन परिस्थितियों में, यह घोषणा करने के लिए कि कम्युनिस्ट हमारे दुश्मन हैं, एक साहसी युवा राजनेता की आवश्यकता पड़ती, जैसे कि मैं 1949 में था।

अब मैं अपनी स्थिति पर आता हूँ। मैंने इस बात से इनकार किया है कि मैं कम्युनिस्ट हूँ, और मुझे लगता है कि इन परिस्थितियों में मुझे यह बता देना होगा कि मेरी राजनीतिक मान्यताएँ क्या हैं।

मैंने सदैव स्वयं को सर्वप्रथम एक अफ्रीकी देशभक्त माना है। आखिरकार, मेरा जन्म छियालीस साल पहले उमटाटा में हुआ था। मेरे अभिभावक मेरे चचेरे भाई थे, जो टेम्बुलैंड के कार्यवाहक सर्वोपरि प्रमुख थे, और मेरा सम्बन्ध टेम्बुलैंड के वर्तमान सर्वोपरि प्रमुख, सबाता डालिंडयेबो और ट्रांसकेई के मुख्यमंत्री कैसर मातनजिमा दोनों से है।

आज मुझे एक वर्गहीन समाज का विचार आकर्षित करता है, एक ऐसा आकर्षण जो कुछ हद तक मार्क्सवाद को पढ़ने से और कुछ हद तक इस देश में प्रारंभिक अफ्रीकी समाजों की संरचना और संगठन के प्रति मेरी पसंद से उत्पन्न होता है। भूमि, जो उस समय उत्पादन का मुख्य साधन थी, जनजाति की थी। वहाँ कोई अमीर या गरीब नहीं था और कोई शोषण नहीं था।

यह सच है, जैसा कि मैंने पहले ही कहा है, कि मैं मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित रहा हूँ। लेकिन यह नए स्वतंत्र राज्यों के कई नेताओं के लिए भी सच है। गाँधी, नेहरू, नक्रूमा और नासिर जैसे व्यापक रूप से भिन्न व्यक्ति इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। हम सभी किसी न किसी रूप में समाजवाद की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं ताकि हमारे लोग इस दुनिया के उन्नत देशों के साथ कदम मिला सकें और अत्यधिक गरीबी की अपनी विरासत से उबर सकें। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि हम मार्क्सवादी हैं।

वास्तव में, अपनी ओर से, मेरा मानना है कि यह इस विषय पर बहस की जा सकती है कि क्या हमारे राजनीतिक संघर्ष के इस विशेष चरण में कम्युनिस्ट पार्टी की कोई विशिष्ट भूमिका है। वर्तमान समय में मूल कार्य नस्लीय भेदभाव को दूर करना और स्वतंत्रता चार्टर के आधार पर लोकतांत्रिक अधिकारों की प्राप्ति है। जहाँ तक वह पार्टी इस कार्य को आगे बढ़ाती है, मैं उसकी सहायता का स्वागत करता हूँ। मुझे एहसास है कि यह एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा सभी जातियों के लोगों को हमारे संघर्ष में शामिल किया जा सकता है।

मार्क्सवादी साहित्य को पढ़ने और मार्क्सवादियों के साथ बातचीत से मुझे यह आभास हुआ है कि कम्युनिस्ट पश्चिम की संसदीय प्रणाली को अलोकतांत्रिक और प्रतिक्रियावादी मानते हैं। लेकिन, इसके विपरीत, मैं ऐसी प्रणाली का प्रशंसक हूँ।

मैग्ना कार्टा, अधिकारों की याचिका और अधिकारों का विधेयक ऐसे दस्तावेज़ हैं जिन्हें दुनिया भर में लोकतंत्रवादियों द्वारा सम्मान दिया जाता है।

ब्रिटिश राजनीतिक संस्थाओं और देश की न्याय प्रणाली के प्रति मेरे मन में बहुत सम्मान है। मैं ब्रिटिश संसद को दुनिया की सबसे लोकतांत्रिक संस्था मानता हूँ और इसकी न्यायपालिका की स्वतंत्रता और निष्पक्षता का मैं सदैव प्रशंसक रहा हूँ।

अमेरिकी कांग्रेस, उस देश की शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत, साथ ही उसकी न्यायपालिका की स्वतंत्रता, मुझमें समान भावनाएँ जगाती हैं।

मैं अपनी सोच में पश्चिम और पूर्व दोनों से प्रभावित हूँ। इस सबने मुझे यह महसूस करने के लिए प्रेरित किया है कि राजनीतिक फॉर्मूले की खोज में मुझे बिल्कुल निष्पक्ष और वस्तुनिष्ठ होना चाहिए। मुझे स्वयं को समाजवाद के अलावा समाज की किसी विशेष व्यवस्था से नहीं बाँधना चाहिए। मुझे पश्चिम और पूर्व से सर्वोत्तम प्रेरणा लेने के लिए स्वयं को स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए।

ऐसे कुछ प्रदर्श हैं जो यह बताते हैं कि हमें विदेशों से वित्तीय सहायता मिली है, और मैं इस प्रश्न के बारे में कुछ बातें स्पष्ट करना चाहता हूँ। हमारे राजनीतिक संघर्ष को हमेशा आंतरिक स्रोतों से वित्त पोषित किया गया है–हमारे अपने लोगों और हमारे अपने समर्थकों द्वारा जुटाए गए धन से। जब भी हमारे पास कोई विशेष अभियान या कोई महत्त्वपूर्ण राजनीतिक मामला होता था –उदाहरण के लिए, राजद्रोह का मुकदमा–हमें पश्चिमी देशों के हमारे प्रति सहानुभूति रखने वाले व्यक्तियों और संगठनों से वित्तीय सहायता प्राप्त होती थी। हमने कभी इन स्रोतों को और बढ़ाना ज़रूरी नहीं समझा।

लेकिन जब 1961 में उमखोंतो का गठन हुआ, और संघर्ष का एक नया चरण शुरू हुआ, तो हमें एहसास हुआ कि इन घटनाओं से हमारे सीमित संसाधनों पर भारी दबाव पड़ेगा, और धन की कमी से हमारी गतिविधियों का दायरा बाधित होगा। जनवरी 1962 में जब मैं विदेश गया तो मुझे एक निर्देश अफ्रीकी राज्यों से धन जुटाना था।

मैं यह भी जोड़ना चाहता हूँ कि, विदेश में रहते हुए, मैंने अफ्रीका में राजनीतिक आंदोलनों के नेताओं के साथ चर्चा की और पाया कि उनमें से लगभग हर एक को, उन्हें जिन क्षेत्रों में अभी भी स्वतंत्रता नहीं मिली थी, उनमें समाजवादी देशों से एवं इसी प्रकार पश्चिम से भी सभी प्रकार की सहायता प्राप्त हुई थी, जिसमें वित्तीय सहायता भी शामिल है। मुझे यह भी पता चला कि कुछ प्रसिद्ध अफ्रीकी

राज्यों, जिनमें सभी गैर-कम्युनिस्ट और यहाँ तक कि कम्युनिस्ट विरोधियों को भी, समान सहायता प्राप्त हुई थी।

देश वापस लौटने पर, मैंने ए. एन. सी. को एक कड़ी सिफारिश की कि हमें खुद को अफ्रीका और पश्चिमी देशों तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए, बल्कि हमें समाजवादी देशों में भी धन जुटाने के लिए एक मिशन भेजना चाहिए, जिसकी हमें तत्काल आवश्यकता है।

मुझे बताया गया है कि मुझे दोषी ठहराए जाने के बाद ऐसा मिशन भेजा गया था, लेकिन मैं उन देशों का नाम बताने के लिए तैयार नहीं हूँ जहाँ यह मिशन गया था, न ही मैं उन संगठनों और देशों के नाम का खुलासा करने के लिए स्वतंत्र हूँ जिन्होंने हमें समर्थन दिया या ऐसा करने का वादा किया था।

जैसा कि मैं राज्य द्वारा दायर मामले को समझ पाया हूँ, और विशेष रूप से 'श्री क' के साक्ष्य को, वह यह सुझाता है कि उमखोंतो कम्युनिस्ट पार्टी की प्रेरणा थी, जिसने काल्पनिक शिकायतों के आधार पर अफ्रीकी लोगों को एक सेना में भर्ती किया, जिसको प्रकट रूप से तो अफ्रीकी स्वतंत्रता के लिए लड़ना था, लेकिन वास्तव में जो एक कम्युनिस्ट राज्य के लिए लड़ रहा था। सच से और दूर कुछ भी नहीं हो सकता। वास्तव में यह सुझाव बेतुका है। उमखोंतो का गठन अफ्रीकियों द्वारा अपनी भूमि में स्वतंत्रता के लिए अपने संघर्ष को आगे बढ़ाने के लिए किया गया था। कम्युनिस्टों और अन्य लोगों ने आंदोलन का समर्थन किया, और हम केवल यह चाहते रहे कि समुदाय के अधिक वर्ग हमारे साथ जुड़ें।

हमारी लड़ाई काल्पनिक नहीं बल्कि वास्तविक कठिनाइयों या राज्य अभियोजक की भाषा में कहें तो 'तथाकथित कठिनाइयों' के खिलाफ है। मूल रूप से, हम दो विशेषताओं के खिलाफ लड़ते हैं जो दक्षिण अफ्रीका में अफ्रीकी जीवन की पहचान हैं और जो कानून द्वारा स्थापित हैं जिन्हें हम निरस्त करना चाहते हैं। ये विशेषताएँ गरीबी और मानवीय गरिमा की कमी हैं, और हमें इन चीजों के बारे में सिखाने के लिए कम्युनिस्टों या तथाकथित 'आंदोलनजीवियों' की आवश्यकता नहीं है।

दक्षिण अफ्रीका अफ्रीका का सबसे अमीर देश है, और यह दुनिया के सबसे अमीर देशों में से एक हो सकता है। लेकिन यह चरम सीमाओं और उल्लेखनीय विरोधाभासों की भूमि है। गोरे दुनिया में उच्चतम जीवन स्तर का आनंद लेते हैं, जबकि अफ्रीकी गरीबी और दुख में रहते हैं। चालीस प्रतिशत अफ्रीकी लोग निराशाजनक रूप से भीड़भाड़ वाले और, कुछ मामलों में, सूखाग्रस्त रिज़र्व में रहते हैं, जहाँ मिट्टी का कटाव और मिट्टी का अत्यधिक उपयोग उनके लिए भूमि से दूर ठीक से रहना असंभव बना देता है। तीस प्रतिशत लोग मजदूर, श्रमिक किरायेदार और सफेद खेतों पर कब्ज़ा करने वाले लोग हैं और मध्य युग के खेतिहर दासों के समान परिस्थितियों में काम करते हैं और रहते हैं। अन्य 30 प्रतिशत शहरों में रहते हैं जहाँ उन्होंने आर्थिक और सामाजिक आदतें विकसित की हैं जो उन्हें कई मामलों में श्वेत मानकों के करीब लाती हैं। फिर भी अधिकांश अफ्रीकी, यहाँ तक कि इस समूह में के अफ्रीकी भी, अपनी कम आय और जीवन यापन की उच्च लागत के कारण, गरीब ही हैं।

शहरी अफ्रीकियों का सबसे अधिक वेतन पाने वाला और सबसे समृद्ध वर्ग जोहान्सबर्ग में है। फिर भी उनकी वास्तविक स्थिति निराशाजनक है। नवीनतम आँकड़े 25 मार्च 1964 को जोहान्सबर्ग गैर-यूरोपीय मामलों के विभाग के प्रबंधक श्री कैर द्वारा दिए गए थे। जोहान्सबर्ग में औसत अफ्रीकी परिवार के लिए गरीबी सीमा रेखा (श्री कैर के विभाग के अनुसार) रु. 42.84/- प्रति माह है, वे दर्शाते हैं कि औसत मासिक वेतन रु. 32.24/- है और जोहान्सबर्ग में सभी अफ्रीकी परिवारों में से 46 प्रतिशत परिवार इतना नहीं कमाते कि उनका गुजारा चल सके।

गरीबी, कुपोषण और बीमारी के हाथ से हाथ मिलाकर चलती है। अफ्रीकियों में कुपोषण और किसी वस्तु की कमी से होने वाले रोग बड़ी तादात में होते हैं। तपेदिक, पेलाग्रा, क्वाशियोरकोर, गैस्ट्रो-एंटेराइटिस और स्कर्वी मृत्यु और स्वास्थ्य का विनाश लाते हैं। यहाँ शिशु मृत्यु दर की संख्या दुनिया में सबसे अधिक है। प्रिटोरिया के स्वास्थ्य चिकित्सा अधिकारी के अनुसार, तपेदिक से प्रतिदिन चालीस लोगों की मौत हो जाती है (लगभग सभी अफ्रीकी), और 1961 में 58,491 नए मामले सामने आए थे। ये रोग न केवल शरीर के महत्त्वपूर्ण अंगों को नष्ट करते हैं, बल्कि इनके परिणामस्वरूप मानसिक मंदता और पहल करने की क्षमता में कमी होती है और एकाग्रता की शक्ति कम हो जाती है। ऐसी स्थितियों के द्वितीयक परिणाम पूरे समुदाय और अफ्रीकी मजदूरों द्वारा किए जाने वाले कार्य के मानक को प्रभावित करते हैं।

हालाँकि, अफ्रीकियों की शिकायत केवल यह नहीं है कि वे गरीब हैं और गोरे अमीर हैं, बल्कि यह भी है कि गोरों द्वारा बनाए गए कानून इस स्थिति को बनाए रखने के लिए बनाए गए हैं। गरीबी से बाहर निकलने के दो तरीके हैं। पहला है औपचारिक शिक्षा, और दूसरा है श्रमिक द्वारा अपने काम में अधिक कौशल प्राप्त करना और इस प्रकार उच्च मजदूरी प्राप्त करना। जहाँ तक अफ्रीकियों का सवाल है, उन्नति के इन दोनों मार्गों को जानबूझकर कानून द्वारा बंद कर दिया गया है।

वर्तमान सरकार ने हमेशा अफ्रीकियों को शिक्षा की इच्छा में बाधा डालने की कोशिश की है। सत्ता में आने के बाद, उनके शुरुआती

कार्यों में से एक, अफ्रीकी स्कूल भोजन के लिए सब्सिडी बंद करना था। स्कूलों में पढ़ने वाले कई अफ़्रीकी बच्चे अपने आहार में इस पूरक पर निर्भर थे। यह एक क्रूर कृत्य था।

सभी श्वेत बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा है, जिसके लिए उनके माता-पिता को कोई कीमत नहीं चुकानी पड़ती, चाहे वे अमीर हों या गरीब। अफ्रीकी बच्चों के लिए समान सुविधाएँ प्रदान नहीं की जाती हैं, हालाँकि कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें ऐसी सहायता प्राप्त होती है। हालाँकि, अफ्रीकी बच्चों को आम तौर पर अपनी स्कूली शिक्षा के लिए गोरों की तुलना में अधिक भुगतान करना पड़ता है। साउथ अफ्रीकन इंस्टीट्यूट ऑफ रेस रिलेशंस द्वारा 1963 के जर्नल में उद्धृत आँकड़ों के अनुसार, सात से चौदह आयु वर्ग के लगभग 40 प्रतिशत अफ्रीकी बच्चे स्कूल नहीं जाते हैं। जो लोग स्कूल जाते हैं, उनके लिए मानक श्वेत बच्चों को दिए जाने वाले मानक से काफी भिन्न हैं। 1960-61 में राज्य सहायता प्राप्त स्कूलों में अफ्रीकी छात्रों पर प्रति व्यक्ति सरकारी खर्च रु. 12.46/- अनुमानित था। उन्हीं वर्षों में, केप प्रांत में श्वेत बच्चों पर प्रति व्यक्ति खर्च (जो मेरे लिए उपलब्ध एकमात्र आंकड़े हैं)रु. 144.57/- था। हालाँकि मेरे पास कोई आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन बिना किसी संदेह के यह कहा जा सकता है कि जिन श्वेत बच्चों पर प्रति व्यक्ति रु.144.57/- खर्च किए जा रहे थे, वे सभी अफ्रीकी बच्चों की तुलना में अमीर घरों से थे, जिन पर प्रति व्यक्ति रु. 12.46/- खर्च किए जा रहे थे।

शिक्षा की गुणवत्ता भी अलग है। बंटू एजुकेशनल जर्नल के अनुसार, 1962 में पूरे दक्षिण अफ्रीका में केवल 5,660 अफ्रीकी बच्चों ने अपना जूनियर सर्टिफिकेट पास किया, और उस वर्ष केवल 362 ने मैट्रिक पास किया। यह संभवत: बंटू शिक्षा की नीति के अनुरूप है जिसके बारे में वर्तमान प्रधान मंत्री ने 1953 में बंटू शिक्षा विधेयक पर बहस के दौरान कहा था-'जब मूलनिवासी शिक्षा पर मेरा नियंत्रण हो जाएगा तो मैं इसमें सुधार करूँगा ताकि मूलनिवासियों को बचपन से ही यह एहसास कराया जाए कि यूरोपीय लोगों के साथ समानता उनके लिए नहीं है। जो लोग समानता में विश्वास करते हैं वे मूलनिवासियों के लिए वांछनीय शिक्षक नहीं हैं। जब मेरा विभाग मूलनिवासियों की शिक्षा को नियंत्रित करता है उसे यह मालूम होगा कि एक मूल निवासी उच्च शिक्षा की किस कक्षा के लिए उपयुक्त है, और क्या उसे जीवन में अपने ज्ञान का उपयोग करने का मौका मिलेगा।'

अफ्रीकियों की आर्थिक उन्नति में दूसरी मुख्य बाधा औद्योगिक रंग-पट्टी है जिसके तहत उद्योग की सभी बेहतर नौकरियाँ केवल गोरों के लिए आरक्षित हैं। इसके अलावा, जो अफ्रीकी अकुशल और अर्ध-कुशल व्यवसायों में रोजगार प्राप्त करते हैं, जो उनके लिए खुले हैं, उन्हें ट्रेड यूनियन बनाने की अनुमति नहीं है, जिन्हें औद्योगिक सुलह अधिनियम के तहत मान्यता प्राप्त है। इसका मतलब यह है कि अफ्रीकी श्रमिकों की हड़तालें अवैध हैं, और उन्हें सामूहिक सौदेबाजी के अधिकार से वंचित कर दिया गया है, जिसकी अनुमति बेहतर वेतन वाले श्वेत श्रमिकों को है। अफ्रीकी श्रमिकों के प्रति लगातार दक्षिण अफ़्रीकी सरकारों की नीति में भेदभाव तथाकथित 'सभ्य श्रम नीति' द्वारा प्रदर्शित होता है जिसके तहत उन श्वेत श्रमिकों के लिए आश्रय, अकुशल सरकारी नौकरियाँ बनाई गयी हैं जो उद्योग में ग्रेड नहीं बना सकते हैं, उनकी मजदूरी उद्योग में औसत अफ्रीकी कर्मचारी की कमाई से कहीं अधिक है।

सरकार अक्सर अपने आलोचकों को यह कहकर जवाब देती है कि दक्षिण अफ़्रीका में अफ्रीकी आर्थिक रूप से अफ्रीका के अन्य देशों के निवासियों की तुलना में बेहतर स्थिति में हैं। मुझे नहीं पता कि यह कथन सत्य है या नहीं और संदेह है कि क्या ऐसे देशों में जीवन-यापन की लागत सूचकांक को ध्यान में रखे बिना कोई तुलना की जा सकती है। लेकिन अगर यह सच भी है, तो जहाँ तक अफ्रीकी लोगों का सवाल है यह अप्रासंगिक है। हमारी शिकायत यह नहीं है कि हम अन्य देशों के लोगों की तुलना में गरीब हैं, बल्कि यह है कि हम अपने ही देश के गोरे लोगों की तुलना में गरीब हैं, और कानून हमें इस असंतुलन को बदलने से रोकता है।

अफ्रीकियों द्वारा अनुभव की गई मानवीय गरिमा की कमी श्वेत वर्चस्व की नीति का प्रत्यक्ष परिणाम है। श्वेत वर्चस्व का तात्पर्य काले हीनता से है। श्वेत वर्चस्व को संरक्षित करने के लिए बनाया गया कानून इस धारणा को मजबूत करता है। दक्षिण अफ्रीका में छोटे-मोटे काम हमेशा अफ्रीकियों द्वारा ही किये जाते हैं। जब कुछ भी ले जाना या साफ करना होता है तो श्वेत व्यक्ति उसके लिए यह काम करने के लिए किसी अफ्रीकी की तलाश करता है, भले ही वह अफ्रीकी उसके यहाँ नियोजित हो या नहीं। इस प्रकार के रवैये के कारण, गोरे अफ्रीकियों को एक अलग नस्ल मानते हैं। वे उन्हें अपने परिवार वाले लोगों के रूप में नहीं देखते हैं; उन्हें एहसास नहीं होता कि उनमें भावनाएँ हैं-कि वे गोरे लोगों की तरह प्यार में पड़ जाते हैं; कि वे अपनी पत्नियों और बच्चों के साथ वैसे ही रहना चाहते हैं जैसे गोरे लोग अपनी पत्नियों और बच्चों के साथ रहना चाहते हैं; वे इतना पैसा कमाना चाहते हैं कि अपने परिवार का ठीक से पालन-पोषण कर सकें, उन्हें खाना खिला सकें, कपड़े पहना सकें और स्कूल भेज सकें। और कौन 'घर का लड़का' या 'बगीचे का लड़का' या मजदूर कभी ऐसा करने की उम्मीद कर सकता है?

पास कानून, जो अफ्रीकियों के लिए दक्षिण अफ्रीका में सबसे अधिक नफरत वाले कानूनों में से एक है, किसी भी अफ्रीकी को किसी भी समय पुलिस निगरानी के लिए उत्तरदायी बनाता है। मुझे

संदेह है कि क्या दक्षिण अफ़्रीका में एक भी अफ़्रीकी पुरुष ऐसा है जिसका किसी स्तर पर अपने पास को लेकर पुलिस से झगड़ा न हुआ हो। पास कानूनों के तहत हर साल सैकड़ों और हजारों अफ़्रीकियों को जेल में डाल दिया जाता है। इससे भी बुरी बात यह है कि पास कानून पति–पत्नी को अलग रखते हैं और पारिवारिक जीवन को टूटने का कारण बनते हैं।

गरीबी और पारिवारिक जीवन के टूटने का द्वितीयक प्रभाव पड़ता है। बच्चे बस्तियों की सड़कों पर भटकते हैं क्योंकि उनके पास जाने के लिए कोई स्कूल नहीं है, या उन्हें स्कूल जाने के लिए पैसे नहीं हैं, या घर पर कोई माता–पिता नहीं हैं जो यह देख सकें कि वे स्कूल जाएँ, क्योंकि माता–पिता दोनों को (यदि दोनो हों) परिवार को जीवित रखने के लिए काम करना पड़ता है। इससे नैतिक मानकों में गिरावट आती है, अवैधता में चिंताजनक वृद्धि होती है, और हिंसा बढ़ती है जो न केवल राजनीतिक रूप से, बल्कि हर जगह भड़क उठती है। टाउनशिप में जीवन खतरनाक है। ऐसा कोई दिन नहीं जाता जब किसी को चाकू न मारा जाता हो या उस पर हमला न किया जाता हो। और हिंसा श्वेत लोगों के रहने वाले इलाकों की बस्तियों द्वारा की जाती है। लोग अँधेरा होने के बाद सड़कों पर अकेले चलने से डरते हैं। घरों में तोड़फोड़ और डकैतियाँ बढ़ रही हैं, इस तथ्य के बावजूद कि अब ऐसे अपराधों के लिए मौत की सजा दी जा सकती है। मृत्युदंड के प्रावधान से किसी का घाव ठीक नहीं हो सकता।

अफ़्रीकी चाहते हैं कि उन्हें जीवनयापन लायक वेतन दिया जाए। अफ़्रीकी लोग वही काम करना चाहते हैं जो वे करने में सक्षम हैं, न कि वह काम करना चाहते हैं जिसके लिए सरकार उन्हें सक्षम घोषित करती है। अफ़्रीकी लोग चाहते हैं कि उन्हें वहीं रहने दिया जाए जहाँ उन्हें काम मिलता है, और उन्हें किसी क्षेत्र से बाहर नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि वे वहाँ पैदा नहीं हुए हैं। अफ़्रीकी चाहते हैं कि उन्हें उन जगहों पर ज़मीन रखने की अनुमति दी जाए जहाँ वे काम करते हैं, और उन्हें किराए के घरों में रहने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए, जिन्हें वे कभी भी अपना नहीं कह सकते। अफ़्रीकी सामान्य आबादी का हिस्सा बनना चाहते हैं, न कि अपनी यहूदी बस्तियों में रहने तक ही सीमित रहना चाहते हैं। अफ़्रीकी पुरुष चाहते हैं कि उनकी पत्नियाँ और बच्चे उनके साथ वहीं रहें जहाँ वे काम करते हैं, और उन्हें पुरुषों के छात्रावासों में अप्राकृतिक जीवन जीने के लिए मजबूर नहीं किया जाना चाहिए। अफ़्रीकी महिलाएँ अपने पुरुषों के साथ रहना चाहती हैं और रिजर्व में उन्हें स्थायी रूप से विधवा नहीं छोड़ा जाना चाहिए। अफ़्रीकी लोग चाहते हैं कि उन्हें रात के ग्यारह बजे के बाद बाहर जाने दिया जाए और उन्हें छोटे बच्चों की तरह अपने कमरों तक ही सीमित न रखा जाए। अफ़्रीकी लोग चाहते हैं कि उन्हें अपने देश में यात्रा करने और जहाँ वे चाहें वहाँ काम ढूँढ़ने की अनुमति दी जाए, न कि वहाँ जहाँ श्रम ब्यूरो उन्हें बताए। अफ़्रीकी लोग पूरे दक्षिण अफ़्रीका में उचित हिस्सा चाहते हैं; वे सुरक्षा और समाज में हिस्सेदारी चाहते हैं।

सबसे बढ़कर, हम समान राजनीतिक अधिकार चाहते हैं, क्योंकि उनके बिना हमारी विकलांगताएँ स्थायी रहेंगी। मैं जानता हूँ कि इस देश में गोरों के लिए यह क्रांतिकारी लगता है, क्योंकि अधिकांश मतदाता अफ़्रीकी होंगे। इससे श्वेत व्यक्ति को लोकतंत्र से डर लगता है।

लेकिन इस डर को उस एकमात्र समाधान के रास्ते में आने की अनुमति नहीं दी जा सकती जो सभी के लिए नस्लीय सद्भाव और स्वतंत्रता की गारंटी देगा। यह सच नहीं है कि सभी को मताधिकार देने से नस्लीय वर्चस्व पैदा होगा। रंग के आधार पर राजनीतिक विभाजन पूरी तरह से कृत्रिम है और, जब यह गायब हो जाता है, तो एक रंग समूह का दूसरे रंग समूह पर प्रभुत्व भी खत्म हो जाएगा। एएनसी ने नस्लवाद के खिलाफ लड़ाई में आधी सदी बिताई है। जब वह जीतेगी तो वह उस नीति को नहीं बदलेगी।

ए. एन. सी. इसी से लड़ रही है। उनका संघर्ष वास्तव में राष्ट्रीय है। यह अफ़्रीकी लोगों का संघर्ष है, जो उनकी अपनी पीड़ा और उनके अपने अनुभव से प्रेरित है। यह जीने के अधिकार के लिए संघर्ष है।

अपने जीवनकाल के दौरान मैंने खुद को अफ़्रीकी लोगों के इस संघर्ष के लिए समर्पित कर दिया है। मैंने श्वेत वर्चस्व के खिलाफ लड़ाई लड़ी है, और मैंने काले वर्चस्व के खिलाफ लड़ाई लड़ी है। मैंने एक लोकतांत्रिक और स्वतंत्र समाज के आदर्श को संजोया है जिसमें सभी व्यक्ति सद्भाव और समान अवसरों के साथ एक साथ रहें। यह एक आदर्श है जिसके लिए मैं जीने और इसे हासिल करने की आशा करता हूँ। लेकिन अगर जरूरत पड़ी तो यह एक आदर्श है जिसके लिए मैं मरने को भी तैयार हूँ।'

(11 जून 1964 को, मुकदमे के समापन पर, मंडेला और सात अन्य–वाल्टर सिसुलु, गोवन मबेकी, रेमंड म्हलाबा, एलियास मोत्सोलेदी, एंड्रयू म्लांगेनी, अहमद कथराडा और डेनिस गोल्डबर्ग–को दोषी ठहराया गया। मंडेला को तोड़फोड़ के चार आरोपों में दोषी पाया गया और अन्य लोगों की तरह उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई।)

एच.आई.जी., 72,
हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, बागमुगलिया,
एक्सटेंशन, भोपाल–462043 (म.प्र.)
मो.– 9425079134

सदी के आखिरी दशक का कथासाहित्य

– राजनारायण बोहरे

जन्म – 20 सितंबर 1959।
जन्मस्थान – अशोकनगर (म.प्र.)
रचनाएँ – बारह पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – साहित्य अकादमी म.प्र. सहित अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

सुप्रसिद्ध आलोचक रामविलास शर्मा जी ने अपने एक व्याख्यान में कहा था–'विश्व का सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद दरअसल टुकड़ों-टुकड़ों में फैले उपाख्यानों और संवादों का संकलन है। 'एक बड़े लेखक के इस कथन के प्रकाश में इस तरह ऋग्वेद को एक बड़ी कथा या उपन्यास कहा जा सकता है, जिसमें संवादों, स्तुतियों के साथ-साथ फ्लैशबैक में घटित घटनाओं का स्मरण के रूप में उल्लेख है। 'कथा सरित्सागर' भी संस्कृत की बहुस्तरीय कहानियों का विशाल संग्रह है, तो 'पंचतंत्रम्' व 'वेताल पंचविंशति' भी संस्कृत की कहानियों के संग्रह हैं। लेकिन आलोचक मानते हैं कि संस्कृत ग्रंथों के इन तमाम प्रसंगों के बाद भी समस्या यह है कि जिस तरह से विश्व साहित्य में उपन्यास या कहानी का फॉर्मेट है, उस तरह के फॉर्मेट में हिन्दी और संस्कृत में स्पष्ट रूप से कथा और उपन्यास की परम्परा दिखाई नहीं देती। कहानी तो ठीक है लेकिन उपन्यास को तो अधिकांश विद्वान पश्चिमी साहित्य की ईजाद और अन्य भाषाओं में आरंभ हुए उपन्यास लेखन को अंग्रेजी की देन मानते हैं। ऐसा मानने वाले लोगों का मानना है कि पश्चिम में ही उपन्यासों का प्रादुर्भाव और विकास हुआ। हिन्दी गद्य के अनेक आलोचक भी इसे सही मानते हैं, उनका कहना है कि 'भारत की श्रुति परम्परा में या गद्य में लिखे गए ऐसे कोई औपन्यासिक कथानक उपलब्ध नहीं हैं', गोकि लोक जगत में सर्दियों में अलाव के आसपास और बरसात में पटेल की पौर में बैठकर सुनाए जाने वाले लम्बे किस्से पश्चिम में प्रचलित रूढ़ अर्थ में उपन्यास तो नहीं कहे जा सकते।

साहित्य के आलोचक अभी तक इस तथ्य पर एकमत नहीं हो सके हैं कि साहित्य में सबसे प्राचीन विधा कौन सी है। नाट्य विधा के विद्वान कहते हैं कि नाटक ही दुनिया की सबसे पुरानी विधा है, जबकि कवि सदा से ही कविता को विश्व की प्रथम विधा मानते रहे, वह यूँ कि विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ 'ऋग्वेद' की पहली ऋचा छन्द विधा में ही लिखी गयी और छन्द यानी कि कविता। कुछ लोगों का मानना है कि सृष्टि के निर्माण के बाद कभी भी जब एक आदमी ने किसी भी विषय में अपना वृत्तान्त दूसरे आदमी को सुनाया या कहा होगा तो वह विश्व की पहली कहानी हुई होगी, इस तरह कहानी विधा ही मनुष्य और साहित्य की पहली विधा है।

हिन्दी की पहली कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' (लेखक माधवराव सप्रे) से आरंभ हुई यात्रा छठवें दशक तक तो भारत की राजनैतिक और सामाजिक चेतना की तरह महत्वाकांक्षाओं की तरह उच्चतर दिशा में उठती रही, लेकिन उसके आगे का समय मोहभंग का समय था। सातवें दशक में देश के राजनैतिक कर्णधारों द्वारा किए गए वायदों के टूटने और योजनाओं के विफल होने के कारण लोगों का जबर्दस्त मोहभंग हुआ, इस कारण इस काल के कथा साहित्य में जहाँ मोहभंग की परछाईं आती थी, वहीं आठवें दशक में नए प्रयोग, पश्चिम के विभिन्न वादों के प्रभाव, इमरजेंसी के बाद का भारत, इन्दिरा जी की हत्या और उस समय का हलचल भरा समय, देश और समाज में नया करने की जुगत, समाज के नए चलन, फिल्मी दुनिया में स्टारडम का प्रवेश, अमिताभ बच्चन की एंग्रीयंगमैन की भूमिका वाली सिलसिलेवार फिल्मों का युग था। इन सब घटनाओं ने साहित्य को भी प्रभावित किया तो कहानी विधा के दिन-दिन बदलते रूप भी सामने आए। ठीक इसी समय लघुपत्रिका आंदोलन भी आरंभ हुआ और अप्रत्याशित रूप से गाँव और कस्बों से छपने वाली लघु पत्रिकाओं की संख्या बड़ी, प्रकाशन के अवसर बड़े, जनवादी विचारधारा का प्रसार हुआ तो देश के छोटे और दूरस्थ स्थानों से नए-नए लेखक उभरने लगे। एक बात उल्लेखनीय है कि आठवें दशक में जितनी तेजी से कहानी के विभिन रूप-स्तर सामने आए व बहुसंख्यक लेखक उभरे, उतनी ही धीमी गति उपन्यास सृजन की होती चली गई। इस युग में कम संख्या में उपन्यास लिखे गए। इसके ठीक बाद का

समय नवें दशक का जमाना था जिसको विरासत में कम उपन्यास सृजन की परम्परा मिली।

नवाँ दशक कथा-साहित्य के लिए एक स्वर्णयुग की तरह सामने आया। राजेन्द्र यादव ने सन् 1986 में अक्षर प्रकाशन के बैनर तले सुविचारित तरीके से प्रेमचंद द्वारा स्थापित पत्रिका 'हंस' का पुनर्प्रकाशन नई दिल्ली से आरंभ किया, तो हिन्दी की यह बड़ी घटना थी, हिन्दी के बहुसंख्यक लेखक, आलोचक और विचारक इस पत्रिका से जुड़ते चले गए। लगभग इसी समय 'पहल, नई कहानी, वर्तमान साहित्य, कथन, वागर्थ, सापेक्ष, इसलिए, नया ज्ञानोदय, कथासमवेत, कथाबिम्ब, कहानियाँ, पुरुष, वसुधा, साक्षात्कार, अब, कल के लिए' जैसी अनेक साहित्यिक पत्रिकाओं के या तो पुनर्प्रकाशन शुरू हुए या उनके श्रेष्ठतम अंक इस अवधि में जारी हुए। अनेक पत्रिकाओं ने खासतौर पर कहानी विशेषांक प्रकाशित किए। कहानी विधा एक बार फिर साहित्य की महत्त्वपूर्ण या केन्द्रीय विधा बनती चली गई।

उल्लेखनीय बात यह थी कि उन्नीस सौ नब्बे के आरंभ में कहानी का कोई वाद प्रचलित नहीं था और कहानी पर मूल रूप से किसी विचारधारा का असर नहीं था, तद्यपि कुछ छुटपुट लेखों में उसे जनवादी, समानांतर कहानी वगैरह जरूर कहा जाता रहा। वामपंथ और प्रगतिशील जनवादी विचारधारा के समर्थक कहानीकारों की संख्या तो ज्यादा थी, लेकिन वे भी इस अवधि में फार्मूला कहानी यानी कि केवल मजदूरों की कहानी बुनना और कहानी के अंत में क्रांति या आंदोलन करा देना, जैसे फार्मूलों पर चलने वाली कहानियाँ बन्द कर चुके थे। लगभग सभी विचारधाराओं के लेखक यहाँ तक कि विचारधारा विहीन लेखक भी इस युग में बेहतर सृजन कर रहे थे। इस युग में लेखकों ने अपनी सम्पूर्ण क्षमता से बहुत उम्दा कहानी और उपन्यास लिखे। 1990 से 2000 तक का समय कथासाहित्य का स्वर्णयुग कहा जा सकता है-कहानी के लिए भी और उपन्यास के लिए भी!

उपन्यास सृजन के प्रति सातवें दशक से खत्म हुई लेखकों की दिलचस्पी 1990 के बाद पुनः आरंभ हुई, अनेक लेखकों ने अपने पहले उपन्यास इसी युग में लिखे, जबकि पूर्व से लिखते आ रहे लेखकों के उपन्यासों में इस युग में गुणात्मक एवं रूपात्मक परिवर्तन आना आरंभ हुआ। श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास 'बिश्रामपुर का सन्त' एक लंबे अन्तराल के बाद इसी अवधि में आने वाला उपन्यास था, तो निरंतर लिखने वाले गोविंद मिश्र के भी अनेक श्रेष्ठ उपन्यास इस दशक में सामने आए।

इस तरह नवें दशक के आरंभ से ही कथा साहित्य की इस यात्रा में हिन्दी कथा के पाठकों को एक तरफ तो बहुत कलात्मक और धारदार कहानियाँ पढ़ने को मिलीं, तो दूसरी तरफ विस्तृत वर्णन वाले दिलचस्प व सार्थक उपन्यास भी। कहानियों और उपन्यासों को समय-समय पर ठीक से रेखांकित करने और अपेक्षाकृत अच्छी रचनाओं को सामने लाने का कार्य तत्कालीन संपादकों ने अच्छे से किया। राजेंद्र यादव, प्रभाकर श्रोत्रिय और रवींद्र कालिया जैसे लोग इस समय महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं के संपादन का काम सँभाल चुके थे। कहा जाता था कि इन सभी की अपनी रुचियाँ थीं, अपने गढ़, मठ और अखाड़े थे, जिनमें खलीफा की तरह इनके द्वारा अपने पहलवान लड़ाए जाते थे और हार-जीत के निर्णय भी इन्हीं के होते थे, जिसमें इन्हीं की मर्जी के पहलवान विजयी घोषित होते थे। कहा जाता है कि राजेंद्र यादव की पसंद के अपने लेखक-लेखिकाएँ थीं, तो रवीन्द्र कालिया के अपने और विभूतिनारायण राय के अपने तथा प्रभाकर श्रोत्रिय के अपने। हंस के बारे में तो यह कहा जाता था कि हंस पर बैठी सरस्वतियों की संख्या ज्यादा थी। हालाँकि कुछ लोग आज भी यह कहते हैं कि ऐसा कुछ नहीं था बल्कि यह सब कहने सुनने की बातें हैं।

संपादकों के अपने लेखक होना केवल कहने-सुनने की बातें हैं, यथार्थ में ऐसा नहीं था, जो लेखक हंस में छपते थे उनकी कोई कहानी छः-आठ महीने के भीतर वर्तमान साहित्य में दिख जाती थी तो कथादेश में भी और कभी वागर्थ में भी। साहित्य की दुनिया में सभी मानते हैं कि कोई संस्था या पत्रिका लेखक बनाने की कोई फैक्ट्री या उत्पादक इकाई नहीं होती है, हाँ यह जरूर स्वीकार करना ही होगा कि संपादक की प्रेरणा और उत्साहवर्द्धन का लेखकों पर गहरा असर होता है। धर्मवीर भारती के 'धर्मयुग' का बहुत सशक्त उदाहरण हमारे सामने है, जिनका असर तत्कालीन हिन्दी लेखकों पर बहुत गहरा हुआ करता था। राजेंद्र यादव हंस में उपन्यास तो नहीं छापते थे, लेकिन उपन्यास अंश, लम्बी कहानी तथा किसी खास उपन्यास पर तीन-तीन समीक्षाएँ छाप कर वे चिह्नित रचनाकार का उत्साहवर्द्धन करते थे। प्रतिष्ठित कहानीकार ज्ञानरंजन के संपादन में नवें दशक में ही 'पहल' के बहुत बेहतरीन अंक सामने आए, 'पहल' कथा प्रधान पत्रिका न होकर विचार विमर्श प्रधान पत्रिका के रूप में ख्यात हुई है और अब उसका प्रकाशन स्थगित है। नवें दशक में पहल और हंस में प्रकाशित होना कथाकार होने का प्रमाणपत्र होता था। ज्ञान रंजन की 'पहल' और कमलाप्रसाद पांडेय की 'वसुधा' यद्यपि अपने तेवर और घोषणापत्र में वामपंथी विचारधारा की पत्रिकाएँ थी तथापि इनका

स्वरूप कहानी के लिए बहुत उत्साह वर्धक था। 'अब' 'कल के लिए' 'निष्कर्ष' व 'कथा समवेत' के संपादक मूलत: कथाकार थे, तो स्वाभाविक रूप से कहानी और कहानीकारों पर उनकी नजर रहती थी। प्रकाशन के प्रचण्ड अवसरों के कारण उच्चतर माँग की वजह से धड़ाधड़ यानी प्रचुर लेखन के बाद भी इस युग में कहानियों का स्तर ऊँचा रहा। अपने शिल्पगत और कलागत रूप में ही नहीं कथ्य के स्तर पर भी इस दशक की कहानियों में बहुलता थी, सूक्ष्म विवेचन था, नए मुद्दे थे, नयी आंचलिकता थी, नयी भाषा थी और निषिद्ध क्षेत्र की कहानियाँ लिखने का रोमांच भी। नवें दशक के लेखकों की जमात एक जाजम पर बैठती-उठती थी और खास बात यह थी कि इस युग के लेखकों पर विभिन्न पत्रिकाओं की संपादकियों, देश के भिण्ड, झाँसी, कानपुर जैसे विभिन्न अंचल में होने वाले (कथाकथन, कथाक्रम व कथासंगमन आदि) तमाम कथा समारोहों, संगोष्ठियों और रचनापाठ समारोह व कथा टिप्पणियों में उठाए गए मुद्दों और विचारविमर्श का गहरा असर तो निश्चित ही पड़ता था।

कहानी की आलोचना पर बातचीत करने वालों का जमावड़ा दिल्ली में हुआ करता था, जिनमें से अधिकांश राजेंद्र यादव की मित्र मण्डली के सदस्य होते थे। इस अवधि में कथा विमर्श में जहाँ नामवर सिंह, कमलेश्वर, रमेश उपाध्याय, सुधीश पचौरी, पंकज बिष्ट, मैनेजर पांडेय, विश्वनाथ त्रिपाठी एक तरफ थे तो दूसरी तरफ विष्णुप्रभाकर, श्याम मनोहर जोशी, अवधनारायण मुद्गल, चित्रा मुद्गल, हिमांशु जोशी, गोविन्द मिश्र, नरेन्द्र कोहली जैसे लोग कथाआन्दोलन को अपने-अपने तरीके से धार प्रदान कर रहे थे। दिल्ली से दूर भी सरगोशियाँ जारी थी जिनमें ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह, गिरराज किशोर, दूधनाथ सिंह, विभूतिनारायण राय, स्वयं प्रकाश, उदय प्रकाश, शिवमूर्ति, संजीव, संजय, महेश कटारे, प्रकाश कांत, गिरीशचंद्र श्रीवास्तव, प्रियंवद, शशांक, शैलेन्द्र सागर, मिथिलेश्वर, विभांशु दिव्याल, सतीश जायसवाल, हृषिकेश सुलभ, पुन्नीसिंह, धीरेन्द्र अस्थाना, हरीश पाठक, अखिलेश, मैत्रेयी पुष्पा, मृणाल पाण्डेय, लवलीन, मधु कांकरिया, कर्मेंदु शिशिर, तेजेंद्र शर्मा, प्रेमकुमार मणि, रघुनंदन, कमर मेवाड़ी, मदन मोहन, अमरीक सिंह दीप, एस. एन. हरनोट, शोभनाथ शुक्ल, माहेश्वर, सत्येनकुमार, सतीश जमाली, देवेन्द्र, राजेंद्र दानी, हरि भटनागर, ए.असफल, राजेंद्र लहरिया, जया जादवानी, लवलीन, शरद सिंह, सुषमा मुनीन्द्र, संतोष वर्मा, कैलाश वनबासी, उर्मिला शिरीष, सुरभि पाण्डेय, राजनारायण बोहरे, प्रमोद भार्गव, रामगोपाल भावुक, पद्मा शर्मा जैसे लोग भी अपने इलाके में रहकर कहानी रच रहे थे, जिनके कथा संसार की अपनी दुनिया थी।

कहानी विधा में किए जा रहे शिल्पगत प्रयोग और उस पर चर्चा के दौर अपनी ऊँचाइयों पर थे। कोई परम्परागत तरीके से कहानी के चौंकानेवाले अन्त को महत्त्वपूर्ण बताता था तो कोई उसके सहज रूप से होने वाले अंत को। दतिया की ही एक शोध संगोष्ठी में अवधनारायण मुद्गल ने कहा था कि कथा का आरंभ रोचक होना अच्छी कहानी की पहली पहचान है। हालाँकि बाद में मैनेजर पांडेय ने उसी मंच पर मुद्गल जी से अपनी असहमति व्यक्त की थी। जैसा कि हमेशा से होता रहा राजेंद्र यादव सबसे अलग चलते थे। दतिया में आयोजित इस कहानी परिसंवाद में डॉ. के. बी. एल. पांडेय के सवाल के जवाब में राजेन्द्र यादव ने कहा कि कहानी का न प्रारंभ महत्त्वपूर्ण है न ही अंत, कहानी की यात्रा महत्त्वपूर्ण होती है यानी कि कहानी का मध्य महत्त्वपूर्ण है। आरंभ और अंत का ध्यान रखना तो कलावाद कहा जाएगा। उनके मतानुसार पाठक जब कहानी से जुड़ जाता है और उसकी संवेदना में डूबने लगता या सहमत होने लगता है, तो कहानी अपनी ऊँचाइयों पर होती है। अच्छी कहानी वह है जिससे पाठक कहीं से भी शुरू करे तो उससे आनंद लेता हुआ गहरे से जुड़ जाए और जब उससे अलग हो तो उसे अलग होना महसूस न हो।

इस दशक के उपन्यासों पर किसी संपादक या समीक्षक का प्रभाव नहीं था, इस कारण इस दशक में सामने आए उपन्यास कुछ अलहदा विषयों पर, अलहदा शिल्प के साथ सामने आए। दरअसल जैनेंद्रकुमार, उपेन्द्रनाथ अश्क और अज्ञेय के उपन्यासों से आरंभ हुआ दार्शनिकता से भरे संवादों का सिलसिला अमूर्तन की हद और मनोविश्लेषण के ऐसे गहरे लोक में जा पहुँचा था कि कलात्मक और साहित्यिकता के स्तर पर तो उपन्यास विधा अपनी ऊँचाई पर थी, लेकिन आम पाठक ऐसे उपन्यासों से दूर भाग निकला था। आम साहित्यिक पाठक इस युग में पॉकेट बुक्स में छपने वाले, गुलशन नंदा, प्रेम बाजपेयी, रानू और ओमप्रकाश शर्मा, सुरेन्द्र मोहन पाठक, कुशवाहा कान्त, वेद प्रकाश काम्बोज, वेद प्रकाश शर्मा के उपन्यास तो सामाजिक उपन्यासों में शिवानी, मालती बसंत के उपन्यास तलाश करता था। साहित्यिकता के नाम पर उदासी व द्वंद्व में घिरे खुद से बतियाते नायकों और दिलचस्प घटनाओं के अभाव ऊब चुके पाठक को जिस तरह के उपन्यासों की दरकार थी, उस तरह के उपन्यास नब्बे के दशक में आना आरंभ हुए। इन उपन्यासों में जहाँ एक ओर हमारे आसपास के समाज की मजेदारियाँ, परंपरागत हीरो की जगह आम आदमी का वृत्तांत, सामान्य व बेमेल प्रेम, दाम्पत्य के विद्रोह, अल्पसंख्यकों के अपने दुखदर्द व संघर्ष, राजनैतिक गुण्डई, विकास के विदेशी मॉडल के दुष्प्रभाव और उसके दुष्परिणाम, कला व हुनरमंद लोगों की दुनिया की कहानियाँ लिखी गईं वहीं दूसरी ओर हाशिए के बाहर के दलित व पिछड़े वर्ग के शोषण, स्त्री और नागरी सभ्यता से दूर बसे आदिवासियों की परम्पराएँ और तकलीफें भी प्रमुखता से आईं

तो मिथकीय व ऐतिहासिक चरित्रों पर पुनर्लेखन भी इस युग में जम कर हुआ। कुल मिला कर उपन्यास का यह नया संसार दिलचस्पी के साथ जानकारी और आनंद के नए द्वार खोल रहा था।

कहानियाँ और उपन्यास भले ही कथा साहित्य के दो पहलू हैं, लेकिन विधागत सीमा और विस्तार इन्हें किंचित अलग भी करता है। एक होते हुए भी दोनों के अपने रूप, प्रस्तुतिकरण, मुद्दे, संवाद और चरित्र तथा विवरण व कथा योजनाएँ होती हैं। भले ही मूल रूप से समूचे समेकित कथा साहित्य में से लगभग एक सी प्रवृत्तियाँ उभर कर आई दिखती हैं फिर भी इसके अलग आयाम हैं जिन्हें अलग तरीके से परखा जाना चाहिए। बेहतर है कि नवें दशक में दोनों विधाओं में आई रचनाओं और प्रवृत्तियों पर पृथक-पृथक अनुशीलन किया जाए।

आखिरी दशक के उपन्यास :- कथा आलोचना के विद्वान दुनिया का सबसे पहला उपन्यास 1007 ई.वी में जापानी भाषा में लिखे गए 'जेन्जी की कहानी' नामक उपन्यास को कहते हैं, जिसे मुरासाकी शिकिबु नामक लेखिका ने लिखा था। इसमें 54 अध्याय और करीब 1000 पृष्ठ हैं। इसमें प्रेम और विवेक की खोज पर निकले एक राजकुमार की कहानी है। यूरोप का प्रथम उपन्यास सेवेन्टिस का लिखा 'डॉन क्विक्सोट' माना जाता है। यह स्पेनी भाषा का उपन्यास है जो कि 1605 में लिखा गया था। संस्कृत ग्रन्थ की प्राचीनता के कारण बाणभट्ट की कादम्बरी को विश्व का प्रथम उपन्यास माना जा सकता है।

हिन्दी उपन्यास का आरंभ श्रीनिवास दास के उपन्यास 'परीक्षा गुरु' (1843 ई.) से माना जाता है। हिन्दी के आरंभिक उपन्यास ऐयारी और तिलिस्मी किस्म के कथाख्यान थे। वैसे सभी आलोचक निर्विवाद रूप से मानते हैं कि हिन्दी में आधुनिक अर्थ में सामाजिक चेतना के वैचारिक उपन्यासों का सूत्रपात तो प्रेमचंद के युग (1880-1936) में हुआ। प्रेमचंद पहले उर्दू में लिखते थे बाद में हिन्दी की तरफ मुड़े। जयशंकर प्रसाद ने भी बाद में उपन्यास की अपनी अलग शैली विकसित की। प्रेमचंद की शैली में विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, प्रताप नारायण श्रीवास्तव, भगवतीप्रसाद बाजपेयी आदि लेखकों ने सामाजिक उपन्यास लिखे। मनोवैज्ञानिक उपन्यास जैनेंद्रकुमार से आरंभ हुए, उनके परख, कल्याणी, सुनीता व त्यागपत्र आदि चर्चित उपन्यास रहे। मनोविश्लेषण शैली में ही सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन अज्ञेय के उपन्यास आते हैं, जिनमें शेखर एक जीवनी, अपने-अपने अजनबी, नदी के द्वीप प्रमुख हैं।

नवें दशक की शुरुआत में सब कुछ बिखरा-बिखरा सा था। इस समय भारत में नए आए विजुअल मीडिया पर विश्व की प्रमुख घटनाओं के रूप में अमेरिका द्वारा तालिबान के खिलाफ की गई हवाई बमबारी और उसके परिणाम स्वरूप मानव बस्तियों में हुए विध्वंस का नजारा बड़ी शान के साथ दिखाया जा रहा था। यूँ तो विश्व इस वक्त तक शीतयुद्ध से लगभग मुक्त हो चुका था, इजरायल से फिलिस्तीनी मुक्ति मोर्चों की गुरिल्ला लड़ाई जारी थी, वहीं भारत में यह राजनैतिक पार्टियों से मोहभंग का युग था। भारत में कोई भी एक पार्टी समूचे देश में बहुमत प्राप्त करने की स्थिति में नहीं थी, इस कारण तमाम क्षेत्रीय दल और बड़े दलों से टूट कर बने नए धड़े सत्ता पर कब्जे के लिए ताल ठोंक रहे थे। इस तरह के गठबंधनों या खिचड़ी मोर्चों के तात्कालिक समझौतों के कारण अनेक मुद्दों पर तो परस्पर विरोधी विचारधारा और नीति दिखाई देती थी, लेकिन केन्द्रीय सत्ता के स्तर पर एक रहने का प्रयास करते यह दल प्रादेशिक स्तर पर एक-दूसरे के विरोधी बने हुए थे। राजनैतिक अस्थिरता की वजह से जन सामान्य में बेचैनी थी। अनेक जन हितैषी योजनाएँ बनतीं और चर्चा में आती फिर किसी के विरोध या बाधक बन जाने से बन्द हो जातीं। पश्चिमी देशों के पर्यटन और खुले द्वार की नीति की वजह से बेरोकटोक आवागमन के कारण पश्चिमी समाज की परम्परा जीवनशैली और अवधारणाओं का गहरा प्रभाव भारतीय समाज पर भी पड़ रहा था। नवें दशक के आंरभ में ही कुछ ऐसे उपन्यास सामने आए जिनमें कथानक, भाषा और शिल्प को लेकर बड़े शानदार प्रयोग किए गए थे।

अगर इन उपन्यासों की कथा वस्तु पर विचार करें तो हम देखते हैं कि सुरेन्द्र वर्मा का 'मुझे चाँद चाहिए' इस दशक का ऐसा पहला उपन्यास माना जा सकता है, जिसके कथानक व कथा रस ने पाठकों को उपन्यास की ओर मोड़ा। कस्बे के एक स्कूल मास्टर की साधारण नाकनक्श की लड़की वर्षा वशिष्ठ स्कूल में नाटक में हिस्सा लेती है और वह अभिनय की दुनिया में उत्तरोत्तर उठते हुए थियेटर की दुनिया में छा जाने वाली अभिनेत्री बन जाती है। गप्प चर्चाओं में एक छोटे कस्बाई वातावरण से निकल कर आई टेलीविजन की एक वास्तविक अभिनेत्री के जीवन पर आधारित कहा जाने वाला और कस्बाई युवती से शहरी नायिका बनी वर्षा वशिष्ठ की कहानी पर आधारित यह उपन्यास पठनीयता और किस्सागोई की अद्‌भुत मिसाल है।

लगभग इसी अवधि में भगवानसिंह का उपन्यास 'अपने-अपने राम' भी बड़ी तैयारी के साथ हिन्दी पाठकों के सामने आया तो उसने हिंदी लेखकों में प्रचलित यह किवदंती याद दिलाई कि

किसी लेखक ने भले ही दर्जनों पुस्तकें लिख डाली हों पर अगर उस लेखक ने किसी भी रूप में राम कथा और कृष्ण कथा (महाभारत) नहीं लिखी उसका उद्धार नहीं होता। आधुनिक विकास के सोपानों में से एक बड़ा सोपान नदियों पर बाँधे गए बड़े-बड़े बाँध कहे जाते हैं, आधुनिक विकास के प्रतीक इस बाँध नामक अधोरचना के निर्माण के पीछे एक बड़ी सामाजिक हलचल, विस्तृत भूभाग की सांस्कृतिक विलुप्ति, पीढ़ियों तक चलती मानवीय त्रासदी छिपी हुई है। महाबाँध या डेम निर्माण की हलचल आरंभ होते ही तालाब के भराव क्षेत्र और कैचमेंट एरिया की भूमि पर पीढ़ियों से बसे वाशिन्दों के अचानक ही अपना घर-आँगन और खेत-जमीन छोड़कर खानाबदोश हो जाने की दु:खद गाथाओं तथा अनगिन प्रसंगों पर किस्सागोई के शिल्प में वीरेन्द्र जैन ने अपने ख्यात उपन्यास 'डूब' और हिन्दी में एक नई परम्परा चालू करते हुए डूब के सिक्वल उपन्यास 'पार' के रूप में बड़े बाँधों और उसके प्रभावों पर विस्तृत आख्यान रचे।

इस अवधि में उभर कर आई लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने 'बेतवा बहती रही' और 'इदन्नमम' उपन्यासों में बुन्देलखण्ड की स्त्रियों का दर्द, उसके संघर्ष तथा बुन्देलखण्ड अंचल के जनजीवन को बहुत सूक्ष्म विवरण के साथ प्रस्तुत किया है। इदन्नमम उपन्यास में मौजूद गाँव के बहाने मैत्रेयी जी देशभर में चलते स्टोन क्रेशर की धूल से सैकड़ों एकड़ खेत बंजर कर देने की दुखद गाथा ही नहीं कहतीं, बल्कि मनुष्य के मन में भर देने वाली नृशंसता का भी विवरण इस उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने किया है। एक ओर बुन्देलखण्ड अंचल के समाज यानी जन सामान्य की स्त्री विरोधी मानसिकता का चित्रण इस उपन्यास में है तो दूसरी ओर हर संघर्ष से निपट लेने में समर्थ स्त्री की रोचक और गंभीर गाथा का वृत्तांत भी समाज के एक विरले ट्रेण्ड के रूप में पहली बार इस उपन्यास में आता है।

सुदूर अंचलों में चलने वाली पत्थर खदानों में कार्यरत मजदूरों और उनके मालिकों के अंतर्संबंध व खदानों की प्रेम, वासना, कलह, शोषण और खुले-छिपे अवैध सम्बंधों की दुनिया का प्रामाणिक विवरण पुन्नीसिंह के उपन्यास 'पाथर घाटी का शोर' में मिलता है। देश के प्राय: हर कोने और अंचल में ऐसी पाथर घाटियाँ मौजूद हैं जो पहली बार हिन्दी पाठक के सामने इस उपन्यास के मार्फत आती हैं। विभूतिनारायण राय ने 'शहर में कर्फ्यू' उपन्यास को निष्पक्ष और निर्मम पत्रकारिता की भाषा तथा प्रामाणिक यथार्थ की छाया में रचा। बलवों और उसके पीछे के निहितार्थ तथा प्रशासनिक हलचल का भीतरी यथार्थ दर्शाती यह कथा एक बहुत प्रामाणिक दस्तावेजी रचना है। इस उपन्यास में इलाहाबाद के एक दंगे के बहाने से राय राहब ने देश के तमाम हिस्सों में होने वाले दंगों-फसादों का रहस्य और यथार्थ जाने-अनजाने रच डाला है। इसके अलावा विभूति जी का 'किस्सा लोकतंत्र' उपन्यास भी भारतीय राजनीति का बदलता चेहरा या राजनीति के अपराधीकरण का खुला दस्तावेज कहा जा सकता है। जिन दिनों यह उपन्यास लिखा गया तब भारतीय समाज और राजनीति में न तो ऐसा परिदृश्य था न ही बहुत साफ कल्पना था कि आने वाले अगले बरसों की राजनीति के जनप्रतिनिधि या यानी सरपंच और पार्षद से लेकर सांसद तक का चुनाव लड़ने के वास्ते कैसे अपराधी और असामाजिक तत्व राजनीति में आ रहे हैं, लेकिन विभूति जी की रचनात्मक प्रज्ञा थी कि उन्होंने ऐसा रच दिया जो बहुत जल्दी भारतीय राजनीति का सर्वव्यापी सत्य बन गया। दलित वर्ग की पीड़ा और अभिव्यक्ति की जो परम्परा मराठी में बरसों पहले आरंभ हुई थी उसकी सुगबुगाहट नवें दशक में हिन्दी में ही आरंभ हुई। मध्यप्रदेश के शिवपुरी जिले के करेरा कस्बे में जून 1994 में पुन्नी सिंह द्वारा आयोजित हिन्दी साहित्य में दलित लेखन की आमदगी दर्ज करने का कार्यक्रम 'दलित कलम' नाम से संपन्न हुआ, जिसमें नामवर सिंह, राजेन्द्र यादव, कमला प्रसाद पाण्डेय सहित देश के अनेक लेखक इकट्ठा हुए थे। दलित वर्ग की पीड़ा को स्वर देता जयनंदन का उपन्यास 'ऐसी नगरिया में केहि विधि रहना' इसी अवधि में आया, जिसकी खूब चर्चा हुई तो पुन्नीसिंह का भी सहरिया जनजाति पर केन्द्रित उपन्यास 'सहराना' इसी अवधि में कई पत्रिकाओं में किश्तों में छपा।

इन्हीं बरसों में ही हिन्दी में अनेक संभावनशील लेखकों की रचनाएँ सामने आईं, जिन्होंने अपना श्रेष्ठतम लेखन उपन्यास के रूप में पाठकों को सौंपा है। ऐसे लेखकों में गिरराज किशोर, गीताश्री, जयनंदन एवं गोविंद मिश्र का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता हैं। उन दिनों छपे उपन्यास मुझे चाँद चाहिए, ढाईघर, पाही घर, डूब, अपने-अपने राम, शहर में कर्फ्यू, इदन्नमम, माई, ऐसी नगरिया में केहि विधि रहना, धूल पौधों पर तथा हमारा शहर उस बरस प्रमुख हैं।

इन उपन्यासों तथा इस अवधि के अनेक उपन्यासों से गुजरने के बाद इन सबमें समेकित रूप से प्रमुख कुछ विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं जो इस प्रकार हैं-समाज के अंतिम वर्ग की व्यथा कथा, अल्प संख्यक वर्ग की अपनी समस्याएँ, कथा का नायकत्व आदमी के पास नहीं बल्कि प्रकृति और समय के पास, विकास के उपाय पर बहस, चर्चा, सवाल, स्त्री की दुर्दशा पर विचार, कस्बों से उठते हुए लोग, प्रेम और इश्क के नए रूप,

क्लासिक कथाओं का पुनर्लेखन, प्रामाणिक आख्यान अथवा प्रस्तुतिकरण की प्रामाणिकता, दिलकश भाषाशैली व किस्सागोई की वापसी, बाजारवाद भूमण्डलीकरण व उत्तर आधुनिकतावाद की दस्तक, राजनैतिक दल, चुनावप्रणाली और भारतीय राजनीति का वास्तविक चेहरा, साम्प्रदायिक एकता को ढहाते समाज की कथा, मनोरंजन या मन बहलाव के उपन्यास आदि-आदि!

सदी के अन्त में कहानी :- नब्बे के दशक की शुरुआत में कहानी फिर से हिन्दी साहित्य के केन्द्र में आई। हंस का पुनर्प्रकाशन श्री राजेन्द्र यादव के सम्पादन में 1986 में आरंभ हुआ और यह हिंदी साहित्य की अद्वितीय घटना थी। इसका असर साहित्य की लगभग हर विधा में पड़ा, कहानी में तो खासतौर पर। हंस के जहाँ कहानी का स्तर बहुत ऊँचा था, वहीं कहानियों के विषय भी प्रचलित परंपरा से हटकर होते थे। राजेन्द्र जी पूरी शिद्दत से हिंदी कथाकारों से बेहद शानदार कहानियाँ व लेख लिखा लेने का यत्न करते थे। अपने पास प्रकाशन हेतु आई कहानी पर लेखकों से फोन पर चर्चा के बहाने कहानीकार की मानसिकता और उसकी विचारधारा को गहरे से प्रभावित करते थे। मराठी साहित्य की तरह हिन्दी में दलित कदम के उदय और आगमन की आहट भाँपने में राजेन्द्र जी अव्वल रहे। वे हंस के विचारशील संपादकीय और समीक्षा लेख भी बहुत सोच-विचार कर प्रकाशित करते थे। उनकी मूल चिंता हाशिए के लोगों को जिसमें कि स्त्रियाँ, जनजाति और बहुत हद तक पिछड़े वर्गों के लिए सोचा था।

इन पिछड़े वर्गों के विषय में ही नहीं, इन पिछड़े वर्ग से आए लेखकों को भी राजेन्द्र जी ने प्रमुखता से छापा है। उन्होंने अपने मित्रों, परिचितों, स्तंभकारों और कथाकारों को प्रेरित किया कि कहानी पर लगातार देश भर में चर्चा और सेमीनार होने चाहिए। न केवल वे खुद ऐसे कार्यक्रमों में दूर-दूर तक जाते थे, बल्कि पंकज बिष्ट, सुधीश पचौरी, मैनेजर पाण्डेय, काशीनाथ सिंह, हरिनारायण, शिवमूर्ति, संजीव, संजय, शैलेंद्र सागर, मैत्रेयी पुष्पा, महेश कटारे, मदन मोहन, देवेन्द्र, अखिलेश, अरुण प्रकाश, सुरभि पाण्डेय, गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव जैसे लेखकों को सम्मिलित करने का पुरजोर प्रयास करते थे।

आठवें दशक से अपना लेखन शुरू करने वाले तमाम लेखक यहाँ तक आते-आते पूर्ण परिपक्व और स्थापित हो चुके थे तो नवें दशक के आरंभ होने के तुरंत पहले लिखना शुरू करने वाले लेखक भी अपने आसपास की कहानियों की तुलना में अच्छे होमवर्क के साथ बहुत अच्छी कहानियाँ समाज को सौंप रहे थे। नवें दशक में सक्रिय लेखकों में स्वयं प्रकाश, उदय प्रकाश, रमेश उपाध्याय, स्वदेश दीपक, राजेंद्र राव, सतीश जायसवाल, प्रभु जोशी, अरुण प्रकाश, शिवमूर्ति, संजीव, संजय, महेश कटारे, रमाकांत श्रीवास्तव, प्रियंवद, हृषिकेश सुलभ, मैत्रेयी पुष्पा, मैनेजर पांडेय, शैलेंद्र सागर, एच आर हरनोट, मदन मोहन, हरि भटनागर, अखिलेश, पुन्नी सिंह, प्रकाश कान्त, मिथिलेश्वर, राजेंद्र दानी, देवेन्द्र, ज्ञान प्रकाश विवेक, ए. असफल, राजेंद्र लहरिया, सुरेश कांटक, गम्भीर सिंह पालनी, भालचंद्र जोशी, अमरीक सिंह दीप, सुरभि पाण्डेय, गीतांजली श्री, मधु कांकरिया लवलीन, वंदना राग, कविता, उर्मिला शिरीष, पुष्पा सक्सेना, गौरी नाथ, राजनारायण बोहरे, कैलाश बनवासी आदि प्रमुख थे।

आठवें दशक के अंतिम वर्षों में कुछ कथा लेखकों ने एकाएक ख्याति प्राप्त की थी। इन लेखकों का अन्दाजे बयां अलग-थलग था। 'हंस' और दीगर पत्रिकाओं में इन कहानीकारों और उनकी कहानियों की जमकर चर्चा हुई। इन लेखकों में उदय प्रकाश, संजीव, शिवमूर्ति और सृंजय प्रमुख थे। धुर गाँव की संस्कृति, चरित्र, मानसिकता और बदमाशियों व अच्छाइयों को सीधे प्रस्तुत करने वाले जबरदस्त कथा शिल्पी शिवमूर्ति की कहानियों में तिरियाचरित्तर ऐसी कहानी थी जो स्त्री शोषण और दलित यातना की मार्मिक और बहुत संवेदशील कहानी के रूप में पाठकों को लम्बे अरसे बाद पढ़ने को मिली। यह कहानी न केवल वैचारिक रूप से समृद्ध थी बल्कि उसका कथानक बहुत दिलचस्प था। उदय प्रकाश हिन्दी में नए कथाप्रयोग और अनछुए क्षेत्र में पहुँचती कहानियों की दुनिया को ले के आए, उनकी हेस्टिंग्स का सांड़, पाल गोमरा का स्कूटर अद्भुत कहानी थी। चंबल वैली के लेखक महेश कटारे अपनी भदावरी भाषा और अनछुए कथानक के आधार पर रचते हुए न केवल दलित और स्त्री को केन्द्र में रखकर कथा रच रहे थे बल्कि राजनीतिक सामंतवाद को भी उन्होंने कथा का विषय बनाया। उनकी मुर्दा स्थगित, बगल में बहता सच जैसी कथाओं में सत्ता व सम्प्रदायों के असर और प्रजातांत्रिक समाज के कथानक की कथाएँ थीं। संजीव की कहानियों में भी कथाओं के प्राचीन रूप से सूत्र और कथा मिलकर रहते थे उनकी कहानी अद्भुत आधार के साथ लिखी जाती थीं। इन सभी में संजय सबसे कम उम्र के कहानीकार हैं, लेकिन विचार और अनुभूति के तौर पर काफी प्रौढ़ और गंभीर भी है। सृंजय सन इकसठ में जन्मे और सन चौरासी में उन्होंने लिखना शुरू किया : समाजवादी, मानवतावादी, आर्यसमाजी तथा वामपंथी संगठनों से जुड़ने के कारण उनकी कहानियों में एक पारदर्शी दृष्टि है, कर्ण प्रिय

लहजा है और उनके पास गहरे तक जुड़ जाने वाले मुद्दे हैं। संजय के पास समाज में प्रचलित किस्सों को नए ढंग से सुनाने का हुनर था। विचार के स्तर पर अहम विचार-विमर्श में वे माहिर रहे। उनकी कहानी अनंग पाल का हाथी, कामरेड का कोट, बैल बधिया के नाम हिंदी कथा साहित्य के मील के पत्थर हैं। कामरेड का कोट में वाम पंथ की कायरता से लेकर वहाँ प्रचलित रूढ़ वामपंथी धाराओं और फारवर्ड वामपंथी धाराओं का बहुत अच्छा विमर्श प्रकट हुआ है। ज्ञान प्रकाश विवेक इस दौर में अपने परिपक्व रूप से उभर के आए हैं। उनकी पिता जी चुप रहते हैं, बेशक, तल्खियाँ, अँधेरे के खिलाफ आदि कहानियाँ हिन्दी भाषा के पुराने कथा संसार में एक प्रवाहवान नदी की तरह हैं। ज्ञान प्रकाश विवेक की भाषा नव्यतम है। कविता सी भाषा और रूपक वे कहानियों में इस्तेमाल करते हैं। विवेक की कहानी पढ़ते समय गद्य पढ़ने का अपना ही आनंद प्राप्त होता है। एच. आर. हरनोट पहाड़ी इलाके में बैठकर लिखने वाले लेखक हैं तो उनके रचे हुए किस्से वास्तविक लगते हैं। दृश्य और नवीनता से पहाड़ी कुमाउँनी जीवन के बिलकुल नए दृश्य रचते हैं, उनकी कहानी बिल्लियाँ बतियाती हैं, बीस फुट के बाबूजी, माफिया लाल होता है, दरख्त, कहानियों में वे नवीन कथ्य, भाषा और पहाड़ी मुहावरों से हिन्दी पाठकों को परिचित कराते हैं। प्रियंवद बहुत अध्ययनशील लेखक हैं जिनके पास किसी कस्बे या महाविद्यालय के बराबर के आकार का पुस्तकालय है। हिन्दी कहानी पलंग, खरगोश, बूढ़े का उत्सव आदि एक नए भारत व भारतीय समाज की कहानियाँ कहती हैं, जिनके अपने मनोवैज्ञानिक आशय और अपने बूझ-अबूझ संसार हैं।

छठे सातवें दशक से लगातार कहानी लेखन में सतीश जायसवाल की अनेक कहानियाँ संकलित रही हैं। वे एक प्रतिबद्ध लेखन और आम आदमी के पैरोकार के रूप में उनके कथा साहित्य में चर्चित हैं। नब्बे के दशक में आई उनकी कहानी राजमार्ग क्रमांक 6, मछलियों की नींद का समय, औरतों की बात, बारिश में साथ घूमती हुए। आवारा लड़की एवं कहाँ से कहाँ खूब चर्चित रही हैं। नई पीढ़ी के कथाकार गौरीनाथ का कहानी लिखने का आरंभ बहुत धीरज के साथ हुआ। लंबे समय के तक वे हंस में सहायक संपादक रहे और इसी बीच उनकी कहानियाँ चर्चित हुईं। निर्बन्ध, सीढ़ी, महागिद्ध, गणित, मानुसगंध और नाच के बाहर जैसी कहानियों के साथ गौरीनाथ ने हिंदी साहित्य को विकसित किया है। इनकी कहानी विचार और कथा दोनों स्तर पर सधी हुई कथा है। कैलाश बनवासी भी इसी अवधि में आए ऐसे कथाकार हैं जो बहुत सोच-समझ कर लेखन करते हैं। उनकी हर कहानी के बड़े निहितार्थ होते हैं। तो समकालीन समाज की झलक भी इन कहानियों में दिखती है। सर्वहारा समाज वर्ग के प्रति कथाकार का समर्थन उनकी कहानी बाजार में रामधन, बारात, प्रतीक्षा, अनायक, प्रक्रिया वगैरह ने लेखक के नजरिए विचार और विवरण व अपनी वृत्तांत सर्जना की क्षमता से पाठकों को प्रभावित किया।

पुष्पा सक्सेना का नाम आंचलिक कथाओं के बीच यूँ तो ज्यादा चर्चित नहीं है, लेकिन उनकी कहानियाँ हिन्दी की उन आंरभिक कहानियों में से हैं, जिन्होंने स्त्री स्वातंत्र्य, एवं विमर्श को सुनिश्चित तरीकों से अपनी कहानी में रखा। उनकी कहानी बलम सुगना, यादों के नाम, शैफाली नहीं गीता हो तुम, तुम्हारे लिए तनुजा से लेखिका ने अपने साहित्य के प्रति पाठक का ध्यान आकर्षित किया है। राजेंद्र राव, अरुण प्रकाश, रमाकांत श्रीवास्तव, प्रियंवद, मैत्रेयी पुष्पा, शैलेंद्र सागर, हरि भटनागर, अखिलेश राजेंद्र दानी, देवेन्द्र, ए. असफल, राजेंद्र लहरिया, भालचंद्र जोशी, सुरभि पाण्डेय, गींताजली श्री, लवलीन, वंदना राग, कविता, उर्मिला शिरीष, राजनारायण बोहरे, प्रमोद भार्गव और पद्मा शर्मा में से कुछ लोगों के इस दशक में ऐसे संग्रह आए जो महत्त्वपूर्ण रहे तो इनमें से अधिकांश की कहानियाँ पत्रिकाओं में छपीं व खूब चर्चित हुईं।

नवें दशक में कहानियाँ पाठकों के समक्ष अलग-अलग लघु पत्रिकाओं और कहानी संग्रहों के माध्यम से पाठकों तक पहुँचीं। इस समय प्रकाशित संग्रहों और पत्रिकाओं में प्रकाशित चर्चित कहानियों से गुजरने के बाद इस काल की प्रमुख कहानियों में से इस युग की प्रवृत्ति इस प्रकार प्रकट होती है-आंचलिक परिवेश की कथाएँ, बड़े मुद्दों पर कस्बों की कथाएँ, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, सांप्रदायिक एकता या सद्भाव, इतिहास की ओर लौटते हुए, प्रतीकों और मुद्दों की कहानियाँ, समाज के आखिरीजन का सशक्त होना, पठनीयता, राजनैतिक महत्व की कथा, विचारधारा, किस्सा गोई व वृत्तांत, भाषा, शिल्प, देह संबंधों की कथाएँ, गाँव की कथा, वैचारिक समृद्धि, लम्बी कहानियाँ, आधुनिकता, मुद्दों की पहचान, जातिवाद, संवेदना, आदर्शवाद, क्लासिक का पुनर्लेखन, यूनियनबाजी पर कहानियाँ, यथार्थवाद, जादुई यथार्थवाद, बाजार-वाद, कहानी कला, धार्मिक पाखण्ड व वर्जित विषय पर लेखन इत्यादि!

89, ओल्ड हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी,
बस स्टेण्ड, दतिया-475661 (म.प्र.)
मो.- 98266-89939

कहानी आंदोलनों से गुजरती हिंदी कहानी

- स्मृति शुक्ल

जन्म – 17 फरवरी 1969।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी।
रचनाएँ – चार पुस्तकें–प्रकाशित।
सम्मान – म.प्र. साहित्य अकादमी के नंददुलारे बाजपेयी सम्मान सहित अनेक सम्मान।

हिन्दी में कहानी का एक विधा के रूप में जन्म आधुनिक काल में हुआ लेकिन कहानी मनुष्य के जन्म के साथ से ही उसके साथ है। प्रारंभ में कहानी मौखिक परंपरा का हिस्सा थी और प्राय: विश्व के प्रत्येक देश में यह मौजूद थी। चीनी दार्शनिक लिन यूनांग का मानना है कि सुंदर कहानी सुनने की प्रवृत्ति मानवता के जैसी पुरातन है। रवीन्द्रनाथ टैगोर मनुष्य के जीवन और जगत को एक कहानी ही मानते हैं। प्रागैतिहासिक काल में जब मनुष्य यायावर था तब अपने जीवन संघर्ष में वह हर पल नए–नए अनुभव प्राप्त करता था और ये अनुभव आपस में बाँटता भी था। यहीं कहीं से कहानी का बीज पड़ा। भारत में कथा का अस्तित्व बहुत प्राचीन समय से है। उपनिषद, बौद्ध और जैन साहित्य, पुराण और संस्कृत के कथा सरित्सागर, वृहत्कथाश्लोक संग्रह, पंचतंत्र, हितोपदेश, शुकसंतति सिंहासनद्वात्रिंशका, कादम्बरी, वासवदत्ता आदि में प्राचीन कथासाहित्य मौजूद हैं। प्राकृत और अपभ्रंश के पद्य साहित्य में छोटी–छोटी कथाएँ मिलती हैं।

भारत की प्राचीन साहित्य परंपरा की विरासत में प्राप्त इन कथाओं का उपयोग हिन्दी के कुछ कहानीकारों ने अपने–अपने ढंग से किया है। सरस्वती के प्रकाशन के पूर्व गदाधर सिंह ने बाणभट्ट द्वारा रचित कादम्बरी को एक बड़ी कहानी के रूप में अनुदित किया था। आधुनिक कहानियों के लिए इन अनुदित कहानियों ने एक वातावरण तैयार किया था। हिन्दी की आधुनिक कहानी पर पाश्चात्य साहित्यकारों का प्रभाव पड़ा था। एडगर एलन पो, कैथराइन मैसफील्ड, नैथेनियल हाथोर्न, वाशिंगटन इरविंग, चार्ल्स किंग्सले, चेखव आदि का प्रभाव हिन्दी की कहानियों पर रहा है।

हिन्दी कहानी किशोरीलाल गोस्वामी, इंशा अल्ला खाँ, बंगमहिला, माधव प्रसाद मिश्र, लाला भगवानदीन, गिरिजादत्त बाजपेयी, माधवराव सप्रे, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, मुंशी प्रेमचंद, सुदर्शन, जयशंकर प्रसाद, जैनेन्द्र और यशपाल आदि कहानीकारों की कलम से समृद्ध होकर विभिन्न कहानी आंदोलनों से गुजरकर अपनी स्वतंत्र राह बनाने में सफल रही है। हिन्दी कहानी में प्रेमचन्द ने जिस आदर्श को अपनी प्रारंभिक कहानियों में स्थापित किया था बाद में उसे छोड़कर वे यथार्थ की कठोर भूमि को अपनी कहानियों का आधार बनाने लगे थे। कफन, सद्गति, पूस की रात, नशा कहानियों को उन्होंने आदर्श के सुनहरे आवरण में प्रस्तुत नहीं किया अपितु यथार्थ के निरावृत रूप में प्रस्तुत किया। हम कह सकते हैं कि स्वयं प्रेमचंद ने अपनी बाद की कहानियों के कथ्य और शिल्प में नए संकेत दिए थे जिनमें हम नई कहानी का उत्स खोज सकते हैं।

प्रेमचंद के बाद जैनेन्द्र ने पात्रों के मनोजगत को अपनी कहानियों का आधार बनाया। उनकी कहानियों में समाज के हर वर्ग के स्त्री–पुरुष के संबंधों का सूक्ष्म विश्लेषण है। कहानियों में कहीं प्रेम है तो कहीं अवसाद कहीं करुणा की स्निग्ध धारा है तो कहीं क्रांति की भावना। नैतिकता की व्याख्या और दार्शनिकता आदि उनकी कुछ कहानियों के मूल में है। यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय उपेन्द्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर, विष्णु प्रभाकर, द्विजेन्द्रनाथ मिश्र, भगवतीचरण वर्मा आदि ने हिन्दी कहानी को अपने–अपने तरह से समृद्ध किया। प्रेमचन्द के बाद की कहानी के विकास में कहानी पत्रिका **(संपा. भैरव प्रसाद गुप्त)** ने कहानियों के विकास में अहम् भूमिका निभाई। यद्यपि 1942 के आंदोलन के समय यह पत्रिका बंद हो गई थी और 1954 में 'कहानी' पत्रिका पुन: प्रकाशित हुई थी। हंस का प्रकाशन 1957 तक होता रहा और इस पत्रिका में अनेक कहानियों का प्रकाशन हुआ। निर्मल वर्मा की 'परिंदे' अक्टू. 1957 के अंतिम अंक में

प्रकाशित हुई है। इस कहानी को नामवर सिंह ने 'नई कहानी' की पहली कृति माना है।

नई कहानी आंदोलन में क्या नया है–स्वतंत्रता के बाद कहानी विभिन्न आंदोलनों से होकर गुजरी सन् 1954 में 'कहानी' पत्रिका का पुनर्प्रकाशन हुआ और वक्तव्य में कहा गया था कि 'आज के हिन्दी भाषी के जीवन की विविधता और समस्याओं की जटिलता के हर पहलू को हिन्दी–कहानी ने अपने में आवेष्टित कर लिया है। शिल्प सौन्दर्य और विषयवस्तु दोनों ही में आज की हिन्दी–कहानी बारह वर्ष पहले की हिन्दी कहानी से कहीं आगे है। कहानीकार भैरव प्रसाद गुप्त ने जनवरी 1960 से 'नई कहानियाँ' पत्रिका संपादन किया। उनकी इस पत्रिका से नई कहानी आंदोलन को गति मिली। उन्होंने नई कहानियों की समीक्षा को भी इस आंदोलन के माध्यम से प्रोत्साहित किया। इसमें कथाकार मार्कण्डेय तथा नामवर सिंह हाशिए पर शीर्षक से स्तम्भ लिखते थे।

मार्कण्डेय ने लिखा है कि प्रेमचंद के बाद से कथा–साहित्य के पूरे विकास के लम्बे दौर में शायद यह पहला अवसर था जब कथा–समीक्षा को एक वैज्ञानिक समीक्षा प्रणाली देने के गंभीर प्रयास हुए। 'प्रतीक' पत्रिका में प्रकाशित शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'दादी माँ' से नई कहानी का आरंभ माना जाता है। नई कहानी आंदोलन में हंसा जाय अकेला, पानफूल, भूदान, महुए का पेड़, माटी आदि कहानियों में ग्रामीण समाज के चित्र खींचने वाले मार्कण्डेय के साथ फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह ने अपनी कहानियों में ग्राम्य जीवन के यथार्थ को चित्रित किया। ग्रामीण समाज में व्याप्त जातीयता, सामंती प्रवृत्तियों तथा धीरे–धीरे इनमें हो रहे परिवर्तनों की सुगबुगाहटों को भी इन कहानीकारों ने दर्ज किया है। नई कहानी आंदोलन के पुरोधा कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव और मोहन राकेश कहे जाते हैं। इन तीनों कहानीकारों ने नई कहानी के स्वरूप को विस्तार से समझाया।

कमलेश्वर ने अपनी आलोचना पुस्तक 'नई कहानी की भूमिका' में नई कहानी में नया क्या है, यह बताते हुए लिखा कि नई कहानी में कथ्य प्रमुख है और कथ्य के कोण से कहानियाँ बदली हैं। नई कहानी ने जड़ता से अपने को मुक्त किया। इस जड़ता से अलग जो कहानियाँ लिखी गईं वे नई कहानी के नाम से अभिहित की गईं। कमलेश्वर नईं कहानी को मूल रूप से जीवनानुभव मानते हैं। इन्ही जीवनानुभवों से कहानी बनती है। नई कहानी ने जीवन की सारी संगति और विसंगतियों, जटिलताओं और दबावों को कहानी की विषयवस्तु बनाया। नई कहानी आंदोलन के अनेक कहानीकार अनुभव की प्रामाणिकता पर बल देते थे। उन्होंने कहा था कि–'नई कहानी आग्रहों की कहानी नहीं है, प्रवृत्तियों की हो सकती है।' वस्तुत: नई कहानी निरंतर नए होने की प्रक्रिया के तहत बुनी गई है। पीढ़ियों के संघर्ष का बोझ लेखक की चेतना पर होता है और यही बोझ कहानीकार को संघर्ष की प्रेरणा देता है। नई कहानी के समर्थ आलोचक देवीशंकर अवस्थी ने 'नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति' में लिखा है कि आधुनिकता या नया एक प्रक्रिया है, जिसकी चेतना ने हमारी समकालीन स्थिति को बदला है। नई कहानी जीवन के यथार्थ को स्वीकारती है। फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'पंचलाइट', कमलेश्वर की 'माँस का दरिया', और 'बयान', मन्नू भंडारी की 'यही सच है' निर्मल वर्मा की 'परिंदे' जैसी कहानियाँ इस बात का प्रमाण हैं।

राजेन्द्र यादव ने अपनी पुस्तक 'एक दुनिया समानान्तर की भूमिका में नई कहानियों के यथार्थबोध का विश्लेशण करते हुए लिखा है–'इसलिए दृशय की इस विकृति से कतराकर वह अब किसी भी महिमामयी बेईमानी का शिकार नहीं होना चाहता। अगर शुभ और महान झूठा है, अगर पारिवारिक नैतिक और सामाजिक संबंध बिखर रहे हैं, अगर व्यक्ति हार और टूट रहा है, अगर आदमी क्षुद्र और ओछा है (इसे बदला हुआ कहना ज्यादा सही समझता है) और अगर साामने कोई रास्ता नहीं है तो वही सही है। उसे वही स्वीकार है। वही उसकी रचनाओं से उभरे हैं, वही उसकी कूची और कलम से आए लेकिन आए बिना किसी लाग लपेट के पूरी निर्ममता और तटस्थता के साथ अब कोई रेशमी पर्दा नहीं, कोई अपराधबोध या पलायन नहीं, कोई खेद और क्षमा नहीं . . . वास्तविकता को पूरी प्रामाणिकता के साथ, पूरी सच्चाई के साथ और अपनी संपूर्ण संश्लिष्टता के साथ उभरने दो.....।' राजेन्द्र यादव के इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि उन्होंने यथार्थ की व्यापक स्वीकृति को नई कहानी की केन्द्रीय वृत्ति माना है।

नई कहानी में भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता को महत्व दिया गया है। इन कहानियों में प्रेम है किन्तु यह प्रेम केवल भावुकता पर आधारित नहीं है बल्कि यह समाज की अन्य समस्याओं से मिलकर एक मिली–जुली अनुभूति बनकर आया

है। कहानी में स्त्री-पुरुष के प्रेम संबंधों के वर्णन, उनके मध्य आकर्षण-विकर्षण आदि का चित्रण निर्मम तटस्थता के साथ कर रहा है। नई कहानी स्त्री और पुरुष के बीच अतिपरिचय और अपरिचय के क्षण को भी महत्व देती है और उसे कहानी का विषय बनाती है। कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', 'टूटती इकाइयाँ', निर्मल वर्मा की 'पिता और प्रेमी जैसी अनेक कहानियाँ इस बात की गवाह हैं।

नई कहानी ने व्यक्ति चेतना को महत्व दिया है। समाज को भी व्यक्ति के संदर्भ में ही देखा है। निर्विवाद रूप से प्रधानता व्यक्ति को ही दी जा गई है। इन कहानियों को पढ़ते हुए पाठक का ध्यान सर्वप्रथम व्यक्ति के टूटेपन उसके खालीपन या अजनबीपन की अनुभूति की ओर जाता है बाद में उन सामाजिक परिस्थितियों की ओर जाता है जिस कारण व्यक्ति इस स्थिति में पहुँचा है। यानी व्यक्ति से समाज तक पहुँचाने का काम नई कहानी करती है।

नई कहानी में मध्यवर्गीय जीवन-चेतना को विशेष अहमियत दी गई है। नई कहानी के 'नएपन' को बोध के धरातल पर आधुनिकता से संपृक्त किया गया। आधुनिकता क्या है इस पर लम्बी-लम्बी बहसें हुईं। नई कहानी के सूत्रधार राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश और कमलेश्वर ने आधुनिकता और आधुनिकता बोध को अपने-अपने ढंग से व्याख्यायित किया। कमलेश्वर ने आधुनिकता के साथ अनिवार्य रूप से विज्ञान को जोड़ा। उन्होंने कहा कि विज्ञान में हमें तथ्य दिये पर वे व्यवहारिक जीवन में जब फलीभूत होते हैं, तो उनका रूप भौतिक हो जाता है। विज्ञान ने हमारे भौतिक आध्यात्मिक सीमांतों को तो विस्तृत किया है, पर व्यावहारिक स्तर पर उनका जो रूप हमें प्रभावित और पुननिर्मित करता है वह टेक्नोलॉजी है। नए कहानीकारों ने अपने आस-पास जो भी पुराना देखा और जब यह महसूस किया कि जीवन और समाज के विभिन्न क्षेत्रों में बहुत कुछ पुराना ऐसा है जो नए के साथ संगति नहीं बैठा पा रहा, नए के साथ नहीं चल पा रहा उसे बदलना चाहिए।

मनुष्य के मन में जो पुराने प्रारूप और आदर्श थे आधुनिक समय में वे उपयोगी नहीं रह गए तो उन्हें बदलना चाहिए। पुराने और नए के जिस संक्रमण काल में कहानी जन्मी उसने अनुभव की प्रामाणिकता पर बल दिया। कमलेश्वर ने कहा कि संक्रांति या संकट बोध के सीमांत पर खड़ा मनुष्य चिंताग्रस्त है। पश्चिम का मनुष्य अपने अस्तित्व के शाश्वत संकट से ग्रस्त है। नई कहानी आंदोलन की प्रमुख कहानियों में मोहन राकेश की मलबे का मालिक, उसकी रोटी, मिस पॉल, राजेन्द्र यादव की अभिमन्यु की आत्महत्या, जहाँ लक्ष्मी कैद है, टूटना, कमलेश्वर की जोखम, साँप, नीली झील, माँस का दरिया, राजा निरबंसिया, निर्मल वर्मा की परिन्दे, लंदन की एक रात, उषा प्रियंवदा की वापिसी, ज्ञानरंजन की फेंस के इधर-उधर, बहिर्गमन, धर्मवीर भारती की बंद गली का आखिरी मकान, कृष्णबलदेव वैद की कहानी, बीच के दरवाजे, कृष्णा सोबती की यारों के यार, रामकुमार की सेलर आदि में नई कहानियों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ समाहित हैं। नई कहानी में सांकेतिकता भी है जो वस्तु और शिल्प दोनों स्तरों पर है। हिन्दी में फ्रॉयड के मनोविज्ञान को आधार बनाकर भी प्रतीक ग्रहण किए गए। कमलेश्वर की साँप और नीली झील, राजेन्द्र यादव की खेल-खिलौने, शिवप्रसाद सिंह की अंधा कूप जैसी कहानियाँ सांकेतिकता है।

नई कहानी का शिल्प भी नया था। कहानियों में आत्मकथा, संस्मरण, डायरी, पत्रडायरी, नोट्स, रेखाचित्र आदि विधाओं की शैलियों का आश्रय लेकर कहानियाँ लिखी जा रही थीं। शिल्प में लोककथाओं की शैली को भी अपनाया गया था। सिंहासन बत्तीसी की तर्ज पर भी कहानियाँ लिखी गईं।

इसमें संदेह नहीं कि 'नई कहानी' आंदोलन से हिंदी कहानी को एक नई दिशा मिली। नई कहानी ने आधुनिक जीवन की बिडम्बनाओं का यथार्थ चित्रण किया। नई कहानी में अतिसाधारण मनुष्यों का चित्रण है। इन कहानियों भिखारियों और विकलांगों को भी अपनी कहानियों का विषय बनाया गया है। अमरकांत की 'जिंदगी और जोक' कहानी इसी प्रकार की कहानी है। नई कहानियों में आंचलिक जीवन की भी अभिव्यक्ति हुई है। शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार', रांगेय राघव की 'गदल', फणीश्वरनाथ रेणु की 'लालपान की बेगम', 'तीसरी कसम' और संवंदिया जैसी कहानियाँ आंचलिकता के रंग में रची-बसी महत्त्वपूर्ण कहानियाँ हैं।

नई कहानी आंदोलन का हिन्दी जगत में जितना स्वागत हुआ उतना विरोध भी हुआ। 1962 के आसपास जो कहानियाँ लिखी गईं पहले तो उन्हें डॉ. गंगाप्रसाद विमल ने 'समकालीन कहानी' कहा किन्तु जल्दी ही उन्होंने समकालीन शब्द छोड़कर 'अ कहानी की व्याख्या प्रारंभ कर दी और इस तरह से एक और

आंदोलन 'अ कहानी' आंदोलन के रूप में खड़ा हुआ जिसके ध्वजावाहक कहानीकारों में डॉ. गंगाप्रसाद विमल, ज्ञानरंजन, जगदीश चतुर्वेदी, रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह आदि थे। अन्य कहानीकारों में प्रयाग शुक्ल, सुधा अरोड़ा, रमेश बक्शी, श्रीकांत वर्मा, विजय मोहन सिंह और विश्वेश्वर जैसे कहानीकार थे। यह भी सच है कि नई कहानी आंदोलन से जुड़े बहुत से कहानीकार अकहानी आंदोलन से जुड़ गए। अकहानी आंदोलन में परंपराओं को नकारा गया है। पुराने मूल्यों को तिरस्कृत किया गया। इन कहानियों के अधिसंख्य नायक आत्मपीड़न, अजनबीपन, अकेलेपन, ऊब और बेचैनी के शिकार हैं। एक तरह से यह फ्रांस के एन्टी स्टोरी मूवमेंट की तर्ज पर प्रारंभ किया आंदोलन है जिसमें जीवन के प्रति अस्वीकार का भाव है। ज्ञानरंजन की संबंध, पिता, रचना प्रक्रिया, गंगा प्रसाद विमल की प्रश्न चिह्न, दूधनाथ सिंह की रीछ, रक्तपात, रवीन्द्र कालिया की एक डरी हुई औरत, नौ साल छोटी पत्नी जैसी कहानियों में अकहानी का इन प्रवृत्तियों को सूक्ष्मता से लक्षित किया जा सकता है। अकहानी की इन मूल स्वर निषेध और परंपरा से विरोध का है। अकविता के बहुत सारे कवि अकहानी आंदोलन की ओर भी आकर्षित हुए। राजकमल चौधरी, जगदीश चतुर्वेदी, विजय मोहन सिंह, श्रीकांत वर्मा आदि की कहानियाँ किसी भी प्रकार के मूल्य स्थापन का विरोध करती हैं।

सचेतन कहानी–'अकहानी' के थोड़े समय के बाद या यूँ कहें कि लगभग साथ–साथ कहानी में एक आंदोलन सचेतन कहानी के रूप में आया। 1964 में आधार पत्रिका के सचेतन कहानी विशेषांक से इसका प्रारंभ माना जाता है। इसके आरंभकर्ता महीप सिंह माने जाते हैं। एक तरह से यह आंदोलन भी नई कहानी के विरोध में ही हुआ था। महीप सिंह ने लिखा था कि 'नई कहानी के अंदर जो अन्तर्विरोध थे, उन्हें स्पष्ट करने के लिए और जीवन के प्रति जो सचेतन दृष्टि हम चाहते थे, जिसमें हम ये अनुभव करते थे कि जीवन को मात्र प्रदत्त वस्तु के स्तर पर नहीं जीना चाहिए बल्कि सक्रियता से भोगना और जीना चाहिए। आज के मनुष्य की जो नियति है, उसे अपनी रचनाओं के माध्यम से हम रेखांकित करना चाहते थे। हमारे इस आग्रह को सचेतन कहानी का आधार माना गया और लोगों ने इसे इसी रूप में अपनाया।' महीप सिंह ने जीवन की सक्रियता की कहानियाँ लिखीं। सचेतन कहानी ने अश्लील कहानियों का विरोध किया। भारतीय परिवेश और आम जीवन के संघर्षों के साथ उन्होंने अपनी कहानियों से यह संदेश दिया कि संघर्ष तो हैं पर इनसे निराश होने, कुंठाग्रस्त होने की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य यदि गतिशील और सक्रिय जीवनशैली अपनाए तो वह अपने जीवन को सार्थकता प्रदान कर सकता है। सचेतन कहानी नकारात्मकता के स्थान पर सकारात्मकता को महत्व देती है। महीप सिंह की 'और भी कुछ' तथा 'कोहरे', सुरेन्द्र अरोड़ा की 'बर्फ', राजकुमार भ्रमर की लौ पर रखी हथेली, मनहर चौहान की बीस सुबहों के बाद' आदि कहानियाँ पाठक को पलायनवादी सोच से दूर करके जागरूक और गतिशील बनाती है। हिन्दी कहानी में सेचतन कहानी ही ऐसी कहानी है जिसने पहली बार रूपवाद, व्यक्तिवाद, मृत्युबोध, कुंठा, अनास्था तथा नियतिवाद का विरोध करते हुए सचेतक की भी भूमिका निभाई। सचेतन कहानी आंदोलन भी लंबे समय तक नहीं चल पाया।

सहज कहानी–1968 में 'नई कहानी' पत्रिका का स्वामित्व अमृत राय के पास आया। उस समय उन्होंने लिखा कि सहज कहानी वह है जिसमें बनावट नहीं है, ओढ़ी हुई पद्धति या (मैनरिज्म) या मुद्राकोश नहीं है। अमृत राय ने सहज कहानी का नारा दिया था। अमृत राय चाहते थे कि कहानी के बने बनाये साँचे में कहानी को ढालने के स्थान पर कहानी के कथ्य पर शिल्प की सहजता को महत्व दिया जाए। परंतु उनके मंडल में जो कहानीकार थे वे सहजता की ओर नहीं बढ़ पाए न ही नए कहानीकार इस दिशा में आगे बढ़े अत: सहज कहानी का नारा नारा ही रह गया, आंदोलन का रूप नहीं ले पाया।

समांतर कहानी आंदोलन–कमलेश्वर नई कहानी की त्रयी के महत्त्वपूर्ण कहानीकार थे उन्होंने नई कहानी को स्थापित करने के लिए नई कहानी की भूमिका शीर्षक से महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक पुस्तक लिखकर नई कहानी के स्वरूप एवं प्रवृत्तियों को स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। कमलेश्वर ने 1972 में सारिका पत्रिका के माध्यम से समांतर कहानी आंदोलन को जन्म दिया। इस आंदोलन का उद्देश्य 'आम आदमी' को प्रतिष्ठित करना था। यह आम आदमी मजदूर, किसान, रेहड़ी लगाने वाला, स्कूल मास्टर, क्लर्क या सिलाई करने वाला या कारीगर कोई भी हो सकता है। आम आदमी का मतलब किसी वर्ग विशेष से नहीं था। वह कहानी में

सभी आम आदमियों का प्रतिनिधित्व करता था। समांतर कहानियों में प्रतिबद्धता से मुक्ति और आम आदमी से जुड़ने का भाव प्रबल था। सारिका पत्रिका के धारावाहिक के रूप में तीन विशेषांक प्रकाशित हुए। भीष्म साहनी, शैलेश मटियानी, राजेन्द्र यादव ने आम आदमी के जीवन की सार्थक अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया। कामतानाथ की 'तीसरी आँख', से. रा. यात्री की गौरव सुभाष पंत की गाय का दूध, सूर्यबाला की निर्वासित, दिनेश पालीवाल की दुश्मन, जितेन्द्र भाटिया की शहादतनामा। इस आंदोलन की वे कहानियाँ हैं जिनमें आम आदमी की सहायता, नैतिक संकट, मूल्यहीनता तथा विघटन को सामाजिक तंत्र के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया गया पर यह आंदोलन भी दीर्घजीवी नहीं हुआ। यह अवश्य है कि इस आंदोलन के प्रवक्ता के रूप में कमलेश्वर ने आम आदमी को अपनी वैचारिक सहानुभूति प्रदान की। उनका कहना है कि 'यातनाओं के जंगल से गुजरते मनुष्य की इस महायात्रा का जो सहयात्री है, वही आज का लेखक है, सह और समांतर जाने वाला सामान्य आदमी के साथ। कमलेश्वर ने सारिका के माध्यम से अनेक नए कहानीकारों की पौध तैयार की जो आगे चलकर चर्चित कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इब्राहिम शरीफ, सुभाष पंत, मेहरुन्निसा परवेज, जितेन्द्र भाटिया, मधुकर सिंह, दामोदर सदन, स्वदेश दीपक, आलमशाह खान, निरुपमा सोबती, सुधा अरोड़ा आदि कहानीकार भी इस आंदोलन से जुड़े थे। समांतर कहानी के प्रवक्ता के रूप में आलोचकों ने एक ओर कमलेश्वर के महत्व को स्वीकार किया वही दूसरी ओर कुछ आलोचकों ने उनकी भूमिका की आलोचना भी की लेकिन उनके रचनाकार रूप को सभी ने स्वीकार किया।

जनवादी कहानी आंदोलन–समांतर कहानी आंदोलन के बाद कहानी रचना के क्षेत्र में जनवादी आंदोलन सक्रिय और गतिशील हुआ। सन 1977 में दिल्ली विश्वविद्यालय में जनवादी विचार मंच की स्थापना हुई। इसी मंच ने 1978 में हिन्दी लेखकों का एक शिविर आयोजित किया, जिसमें पंजाब, बिहार, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल के लगभग 250 लेखकों ने भाग लिया। फरवरी 1982 में जनवादी लेखक संघ का पहला अधिवेशन हुआ। इसमें अवधनारायण सिंह, ऋतुराज, कर्णसिंह चौहान, चंचल चौहान, कुँवरपाल सिंह, बच्चन सिंह, मुकुट बिहारी सरोज, रमेश उपाध्याय, रमेश कुंतल मेघ, विश्म्भरनाथ उपाध्याय, सुधीश पचौरी, हेतु भारतद्वाज सहित अनेक लेखकों ने घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किए। इस घोषणा पत्र में कहा गया कि जनवादी लेखक संघ ऐसे लेखकों का संगठन है जो साम्प्रदायिक संकीर्णता, जातिवाद पुनरुत्थानवाद, विघटनवाद, अन्धराष्ट्रवाद, भाषा और क्षेत्रीयता के नाम पर हमारी जनता तथा राष्ट्र की एकता को तोड़ने वाली शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करते हैं। जनवादी लेखक संघ अंधआधुनिकतावाद के विरुद्ध संघर्ष करना आवश्यक समझता है। इस अधिवेशन के बाद जनवादी पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। जैसे–'कलम' कलकत्ता से, 'कथन' दिल्ली से 'उत्तरगाथा' मथुरा तथा बाद में दिल्ली से प्रकाशित हुई। कथन पत्रिका के संपादक रमेश उपाध्याय ने इस पत्रिका में अनेक जनवादी कहानीकारों को प्रकाशित किया। जनवादी कहानीकारों ने प्रेमचंद की 'कफन' और 'पूस की रात' कहानियों से जनवादी कहानियों का आरंभ माना। इस परंपरा में यशपाल की परदा, भैरव प्रसाद गुप्त की हड़ताल, भीष्म साहनी की चीफ की दावत, अमरकांत की दोपहर का भोजन, शेखर जोशी की बोझ, रांगेय राघव की 'गदल' आदि कहानियों को भी शामिल किया गया । इसके बाद ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह ने अपनी कहानियों के माध्यम से अपना योगदान दिया। रमेश बतरा, रमेश उपाध्याय, हेतु भारतद्वाज, नमिता सिंह, असगर वजाहत, राजेश जोशी, उदय प्रकाश, असद जैदी, धीरेन्द्र अस्थाना आदि कहानीकारों ने अपनी कहानियों से इस आंदोलन को मजबूत किया। वैचारिकता की बात करें तो जनवादी कहानी मार्क्स के विचारों से प्रभावित रही। जनवादी कहानी के केन्द्र में किसान, मजदूर, पीड़ित दलित और असहाय यानी सर्वहारा वर्ग के लोग थे। कुछ कहानीकारों ने विचारधारा को इतना अधिक महत्व दिय कि कहानी का शिल्प पक्ष कमजोर हो गया। लेकिन जब वैचारिक आग्रह से मुक्त होकर दलित, पीड़ित, शोषित और श्रमिक वर्ग के जीवन संघर्ष को कहानियों में अभिव्यक्त किया तो ऐसी कहानियाँ पाठकों और आलोचकों को अपनी ओर आकर्षित करने और अपनी विशिष्ट पहचान बनाने में सफल रही है।

सक्रिय कहानी आंदोलन –जनवादी विचार मंच की स्थापना के दो वर्ष के भीतर ही राकेश वत्स ने सन् 1979 में मंच पत्रिका के माध्यम से सक्रिय कहानी आंदोलन का सूत्रपात किया। इस आंदोलन के विषय में उन्होंने कहा कि सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है कि यह चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी है। उस समझ और अहसास की कहानी है जो आदमी को बेबसी, निहत्थेपन और नपुंसकता से निजात

दिलाकर स्वयं अपने अंदर की कमजोरियों के खिलाफ खड़ा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सिर लेती है। चित्रा मुद्गल, रमेश बतरा, सच्चिदानंद धूमकेतु, सुरेन्द्र कुमार, धीरेन्द्र अस्थाना आदि लेखक इस आंदोलन की आकर्षित हुए और इसे समर्थन दिया। वस्तुत: इस आंदोलन में नया कुछ नहीं था। सक्रिय कहानी की अवधारणा में समांतर कहानी और जनवादी कहानी की प्रवृत्तियों का मेल था कहानीकार भी वही थे। समय का भी अंतराल नहीं था। राकेश वत्स की अतिरिक्त अंमिम प्रजापति, अभियुक्त, शुरुआत एक बुद्ध और आदि संग्रहों की कहानियों का अवलोकन करने पर हम कह सकते हैं कि राकेश वत्स चाहते थे कि स्वतंत्रता के बाद आमजन की स्थिति सुधरे लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इसलिये वे उत्पीड़न और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष की चेतना को जाग्रत करना चाहते थे। यद्यपि यह आंदोलन बहुत प्रभाव नही छोड़ पाया था।

निष्कर्षत: यदि हम 1950 के बाद की कहानी के तीन दशकों की रचनाधर्मिता का सूक्ष्म अवलोकन करें तो 1950 से 1980 तक हिन्दी कहानी नई कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, सहज कहानी, समांतर कहानी, जनवादी कहानी और सक्रिय कहानी आंदोलनों से गुजरकर समृद्ध हुई है। इन सभी आंदोलनों की अपनी-अपनी उपलब्धियाँ और सीमाएँ हैं। उपलब्धियों में यह कह सकते हैं कि कहानी विधा खूब फली-फूली और जीवंत होकर फार्मूलाबद्ध होने से बच गई। इसके कथ्य और शिल्प में परिवर्तन और प्रयोग हुए अनेक सशक्त और कुछ कालजयी कहानियाँ भी हिन्दी कहानी साहित्य को मिलीं। इन आंदोलनों की सीमा यही थी कि प्राय: सभी आंदोलनों के उन्नायक अत्यंत महत्वाकांक्षी थे जिसके कारण ये आंदोलन दीर्घजीवी नहीं हो पाए बल्कि महत्वकांक्षाओ के ऊँचे पहाड़ों से टकरा कर छिन्न-भिन्न से हो गए। कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, अमरकांत, शेखर जोशी, रांगेय राघव, फणीश्वरनाथ रेणु, उपेन्द्रनाथ अश्क, भैरव प्रसाद गुप्त, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, मार्कण्डेय, कृष्ण बलदेव, वैद, गंगा प्रसाद विमल, ज्ञानरंजन, रमेश वक्शी, शैलेश मटियानी, रामदरश मिश्र, काशीनाथ सिंह, हिमांशु जोशी, महीप सिंह, माहेश्वर, हृदयेश, कामतानाथ, मिथिलेश्वर, शानी, विजयमोहन सिंह, मधुकर सिंह सहित अनेक कहानीकारों के साथ ममता कालिया, उषा प्रियंवदा, सुधा अरोड़ा, शशिप्रभा शास्त्री, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, मृदुला शर्मा, मृणाल पांडेय, चित्रा मुद्गल, राजी सेठ, सूर्यबाला, मणिका मोहिनी, मेहरुन्निसा परवेज, इन्दु बाली आदि महिला कथाकरों ने व्यापक सामाजिक परिवेश को अपनी कहानियों का विषय बनाया। अर्थाभाव से ग्रसित लोगों, बेमेल विवाह की त्रासद स्थितियों, झुग्गी झोपड़ी में रहने वाले लोगों, महानगरीय जीवन के तनावों, तलाकशुदा या परित्यक्ता स्त्रियों की पीड़ा और तनाव को इन लेखिकाओं ने विशुद्ध मानवीय धरातल पर चित्रित किया। नारी की स्वतंत्रता के साथ स्वच्छंद स्त्री के जीवन के तनावों और सामाजिक चुनौतियों को भी यथार्थ के धरातल पर चित्रित कर इन कथा लेखिकाओं ने रचनात्मक उत्कर्ष वाली कहानियाँ लिखीं। लगभग तीस वर्षों की अवधि में चले विभिन्न कहानी आंदोलनों ने अनेक कहानीकारों को मंच प्रदान किया उन्हें प्रोत्साहित किया जिससे आगे चलकर वे अपनी पहचान सुनिश्चित करने में सफल रहे। 1955 से 1965 तक की कहानी का समग्र रूप से मूल्यांकन करें तो इस अवधि में रचनाकारों ने जीवन की समस्याओं को सूक्ष्म दृष्टि से देखकर अनुभव की प्रामाणिकता और भोगे हुए यथार्थ को महत्व दिया गया। 1965 से 1980 तक जो आंदोलन थे वे अलग-अलग नाम होते हुए भी कहीं न कहीं एक-दूसरे से संबद्ध भी थे। इस युग में मूल्यों को व्यापक जीवन स्थितियों से जोड़ने का प्रयत्न किया गया, कहानी में आयातित मूल्यों या तत्वों को महत्व न देकर जमीनी हकीकत बयान कर कहानी को विश्वसनीय बनाने का प्रयास किया गया। मैं अंत में अक्षरा के संपादक मंडल के प्रति कृतज्ञ हूँ कि कहानी आंदोलन पर लेख लिखने के उनके आग्रह पर मैंने पुन: नामवर सिंह की कहानी, नई कहानी, देवीशंकर अवस्थी की नई कहानी- संदर्भ और प्रकृति, आधुनिकता के संदर्भ में हिन्दी कहानी, राजेन्द्र यादव की एक दुनिया समानान्तर तथा कहानी स्वरूप और संवेदना, रजनीश कुमार की हिन्दी कहानी आंदोलन- उपलब्धि और सीमाएँ, कमलेश्वर की नई कहानी की भूमिका जैसी आलोचना पुस्तकों का पुनर्पाठ किया तथा इन पुस्तकों के आधार पर स्वतंत्रता के बाद की हिन्दी कहानी और उसके विविध आंदोलनों पर कुछ लिख पाई और पढ़े हुए को पुन: जी पाई।

ए-16, पंचशील नगर,
नर्मदा रोड, जबलपुर-482001 (म.प्र.)
मो.-9993416937

स्वामी विवेकानंद : गौरव के प्रतीक

– प्रकाश मनु

जन्म – 12 मई 1950।
शिक्षा – एम.एस.सी., एम.ए.।
रचनाएँ – नब्बे पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – हिंदी अकादमी के साहित्यकार सम्मान सहित अनेक सम्मानों से अलंकृत।

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के संधि-काल में भारत के जिन तेजस्वी व्यक्तित्वों ने देश के गौरव को कीर्ति-शिखरों तक पहुँचाया और भारतीय जनता की सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्राण-पण से प्रयत्न किया, उनमें वीर संन्यासी विवेकानंद **(जन्म 12 जनवरी, 1863-प्रयाण 4 जुलाई, 1902)** सबसे अलग और विलक्षण हैं। ऐसा ओज, ऐसी भव्यता और धज कि उनके निकट जाने पर वे पहली बार में ही मोह लेते हैं।

आप विवेकानंद को पढ़ते हैं और विवेकानंद आपके भीतर उतरने लगते हैं, आपको अंशत: विवेकानंद बनाते हुए। लगता है, भारत को ऐसा ही सतेज व्यक्तित्व और ऐसी ही ओजस्वी वाणी चाहिए, पिछली भूलों और नैराश्यपूर्ण इतिहास की लंबी नींद से जगाने के लिए। सच तो यह है कि पिछले हजार वर्षों में भारत में ऐसा तेजस्वी चिंतक कोई और नहीं हुआ। उनका व्यक्तित्व ऐसा था, जैसे विवेकानंद कोई व्यक्ति न हों, बल्कि ऐसा एक राष्ट्र-प्रतीक, सैकड़ों धधकती बिजलियाँ जिनमें समा गई हों। और इसीलिए उनके शब्द भीतर से हमें जगाते और कई बार नींद से झिंझोड़ते हुए-से लगते हैं। विवेकानंद का मतलब ही है, जागृति। उनके हर शब्द से मानो एक ही गूँज उठती है—'उत्तिष्ठित जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत'। और इसीलिए निराशा और गुलामी के अँधेरे में सोए देश को जगाने में जितना काम अकेले विवेकानंद ने किया, उतना सैकड़ों लोग मिलकर भी नहीं कर सके। पूरी बीसवीं शताब्दी में उन जैसा सतेज कोई दूसरा व्यक्ति नहीं दिखाई देता, जिसका भारतीय जन-मानस पर इतना गहरा और व्यापक असर पड़ा हो।

यह कम आश्चर्य की बात नहीं कि विवेकानंद संन्यासी होते हुए भी किसी वीर योद्धा की तरह भारत को पतन और निराशा के गर्त से बचाने के लिए रात-दिन संघर्ष कर रहे थे। उनकी तुलना किसी संन्यासी से नहीं, घोर तिमिर की बेड़ियों को काटने के लिए शर-संधान करते धनुर्धर अर्जुन से की जानी चाहिए। उन्होंने पराधीन जनता के सामने एक ऐसा आदर्श रखा कि पूरे भारत में जागृति और स्वाभिमान की एक नई लहर दिखाई पड़ने लगी। धर्म और अध्यात्म को उन्होंने निष्क्रिय साधना की अंत:गुहाओं से निकालकर मानव-सेवा के आदर्श में बदला और देखते ही देखते विवेकानंद जातीय पुनर्जागरण के अग्रदूत बन गए। उनका नाम लेते ही जैसे छाती चौड़ी होती है और हम अपने पूर्णत्व का अहसास करने लगते हैं।

विवेकानंद, यानी नरेंद्रनाथ दत्त। शिकागो जाने के लिए वे जहाज पर बैठे, उससे कुछ समय पहले ही वे विवेकानंद हुए थे और फिर देखते ही देखते विवेकानंद ऐसा नाम हो गया जो घंट-नाद की तरह सारी दुनिया में बजने लगा। धर्म का चिंतन-मनन और प्रवचन करने वाले हैरान थे। उनके देखते ही देखते रंगमंच पर एक ऐसे जादुई व्यक्ति का प्रादुर्भाव हुआ जिसने पढ़े-लिखे समाज के साथ ही साधारण से साधारण लोगों पर भी अपना असर डाला और दुनिया उसके पीछे चलती हुई नजर आने लगी।

12 जनवरी, 1863 को कोलकाता (उस समय कलकत्ता) के एक संपन्न परिवार में जन्मा ऐसा यह हठीला नरेंद्र बचपन में भी कम चंचल न था। बल्कि कहा जाए कुछ-कुछ उद्दंड भी, जिससे माँ कभी-कभी झुँझला भी पड़तीं, 'मैंने शिव से बालक माँगा था, पर उन्होंने भेज दिया यह उत्पाती!' लेकिन बच्चा बहुत प्रतिभाशाली था। पढ़ने-लिखने में उसकी गहरी रुचि थी और जो कुछ एक बार पढ़ता, उसे झट याद हो जाता था। पिता कलकत्ता के प्रसिद्ध वकील थे और माँ भी अत्यंत बुद्धिमती थीं, जो नरेंद्र से बेहद प्रेम करतीं थीं। माँ-बाप दोनों चाहते थे कि नरेंद्र पढ़-लिखकर कोई ऊँची सरकारी नौकरी करे, पर नरेंद्र का लक्ष्य तो कुछ और ही था। उसके भीतर जीवन को लेकर बड़े सवाल उठ रहे थे और गहरा अंतर्मंथन शुरू हो गया था। बार-बार यह सवाल उसके भीतर चक्कर काटता—'मैं कौन हूँ, मैं क्यों आया हूँ, मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है?'

पिता की आकस्मिक मृत्यु नरेंद्र के जीवन में एक वज्रपात की तरह थी, जिसके बाद घर का सारा भार उनके कंधों पर आ गया और वे एक मर्मांतक द्वंद्व में फँसे नजर आते हैं। फिर भी दुनियादारी से ज्यादा उनका ध्यान समूचे भारत और भारतीय जनता के पुनरुत्थान पर था और वे लगातार इस पर चिंतन-मनन करते थे। भारतीय

जनता की मौजूदा हालत देखकर उनका हृदय रो पड़ता था। पर उन्हें कोई सही राह नहीं मिल पा रही थी। उनके भीतर रह-रहकर उठने वाले प्रश्न अनुत्तरित थे और उन्हें लगातार बेचैन करते थे। वे मधुर स्वर में भक्तिगीत गाते तो अनहद नाद में एकदम डूब जाते और सुनने वालों को भी विभोर कर देते। पर उनके भीतर एक बुद्धिवादी चिंतक भी था, जो अपने हर सवाल का तर्कपूर्ण जवाब पाना चाहता था। और यहाँ वह प्रखर सत्यान्वेषी और बहुत हठीला था।

उन्हीं दिनों विवेकानंद रामकृष्ण परमहंस के प्रभाव में आए। रामकृष्ण परमहंस बड़े विलक्षण संन्यासी थे, जो बस अपने आप और अपनी साधना में ही खोए रहते थे। इसलिए कुछ लोग तो उन्हें अधपागल भी कहते। पर रामकृष्ण ऐसे अद्भुत संन्यासी थे, जिनके लिए इस तरह के मतामत कोई मानी नहीं रखते थे। वे अपने जीवन में सारे मोह और बंधनों से ऊपर उठकर, जीवनमुक्त हो गए थे। सब कुछ त्यागकर वे साधना के उच्चतम सोपानों पर पहुँचे थे, इसीलिए परमहंस कहलाए। यहाँ तक कि धार्मिक कर्मकांड भी उनके लिए फिजूल थे। चारों तरफ तेजी से उनका प्रभाव फैलता जा रहा था। विद्रोही विवेकानंद रामकृष्ण परमहंस के निकट आए, तो लगा एक चुंबकीय आकर्षण से वे इस अध्यात्मपुरुष की ओर खिंचते जा रहे हैं। वे चाहकर भी खुद को रोक नहीं पा रहे।

पर विवेकानंद इतनी जल्दी प्रभावित होने वाले न थे। उनके मन में ईश्वर और संसार के स्वरूप को लेकर तरह-तरह के प्रश्न और शंकाएँ थीं। ईश्वर है भी या नहीं और अगर है तो क्या सचमुच उसके दर्शन किए जा सकते हैं? वे बार-बार विकल होकर सोचा करते थे। और कई बार तो उन्हें अपने सवालों के जवाब न मिलते, तो वे ईश्वर के अस्तित्व पर ही शंका करने लगते थे और धर्म की बहुत-सी आस्थाओं और धामिक प्रतीकों की खिल्ली उड़ाया करते थे। कई बार तो रामकृष्ण परमहंस के सामने ही ऐसी बातें कहते। रामकृष्ण यह देखते, तो हँसकर रह जाते थे। या कभी-कभी कहा करते थे—'अभी समय नहीं आया। समय आएगा, तो तुम इन सबको मानोगे और यह भी जान जाओगे कि तुम कौन हो और किस काम के लिए इस जगत में आए हो? पर यह जान जाने के बाद तुम्हारे पास अधिक समय नहीं बचेगा और तुम उसी दिव्य शक्ति में मिल जाओगे, जिसका तुम अंश हो।'

विवेकानंद को रामकृष्ण परमहंस की बातें बहुत बहकी-बहकी लगतीं। तो भी उनके प्रभाव से वे चाहकर भी मुक्त नहीं हो पाते थे। अब वे रात-दिन यही सोचा करते कि अगर ईश्वर है तो क्या मैं उसके दर्शन कर सकता हूँ? क्या कोई है जो मुझे ईश्वर के दर्शन करा सकता हो? उन्होंने रामकृष्ण परमहंस से यह प्रश्न किया, तो उन्होंने हँसते हुए कहा, 'मैं तुम्हें ईश्वर से मिलवा सकता हूँ। तुम उसी प्रकार ईश्वर को देखोगे, जैसे मैं तुम्हें और तुम मुझे देख रहे हो।'

कहते-कहते परमहंस ने विवेकानंद को छू दिया। देखते ही देखते एक अलौकिक आनंद की लहर विवेकानंद के सारे शरीर में दौड़ गई और वे रोमांचित हो उठे। उस क्षण उन्हें लगा, मानो सामने खड़े ईश्वर का साक्षात् कर रहे हैं। इसके बाद ऐसे कई अवसर आए जब विवेकानंद ने रामकृष्ण परमहंस की दिव्यता और आध्यात्मिक सिद्धि का अनुभव किया। वे रामकृष्ण परमहंस के शिष्य हो गए।

रामकृष्ण परमहंस अपने शिष्यों में विवेकानंद से सबसे अधिक प्रेम करते थे। कहा करते थे कि इसमें दिव्य तेज है और आगे चलकर यह संसार में बहुत बड़ा काम करेगा।

युवावस्था में विवेकानंद कैसे थे, इस बारे में उनके गुरुभाई स्वामी सारदानंद ने बहुत अचरज भरी बातें लिखी हैं। रामकृष्ण परमहंस से नरेंद्र की बहुत प्रशंसा सुनी तो उन्होंने सोचा, जाकर देखना चाहिए कि आखिर वह नरेंद्र है कैसा? ढूँढ़ने पर उसका पता तो चल गया, पर उसके बारे में ऐसी बातें सुनने को मिलीं कि उनका माथा चकरा गया। उन्होंने जिस-जिस से भी पूछा, उसी ने कंधे उचकाते हुए जवाब दिया, 'अरे, वह घमंडी और उद्दंड युवक? उसके बारे में तो कोई बात न की जाए यही अच्छा है।'

स्वामी सारदानंद को बड़ा आश्चर्य हुआ कि जिस युवक के बारे में गुरुदेव इतनी प्रशंसा भरी बातें कहते हैं, उसके बारे में तो लोग ऐसी उलटी-सीधी बातें कहते हैं। कहीं गुरुदेव को भ्रांति तो नहीं हो गई? उन्होंने जाकर रामकृष्ण परमहंस से जाकर कहा तो वे बोले कि लोग उसे नहीं जानते, इसलिए ऐसी बातें कहते हैं। फिर नरेंद्र की प्रशंसा करते हुए कहा—'वह पढ़ाई-लिखाई में, बातचीत में और धर्म-विषय में—सभी बातों में एक समान होशियार है। ध्यान करने बैठता है, तो रात बीत जाती है और सवेरा हो जाता है, फिर भी उसे सुध नहीं आती और उसका ध्यान समाप्त नहीं होता। हमारा नरेंद्र तो खरा सिक्का है, बजाकर देखो, कैसा खन-खन बोलता है।' **(श्री नरहर रामचंद्र परांजपे, श्रीरामकृष्ण लीलामृत, पृ. 415)**

नरेंद्र के भीतर जो असीम शक्ति और दिव्यत्व था, उसे मानो वे अपनी आँखों से साफ-साफ देख रहे थे। इसीलिए नरेंद से मिलने के लिए वे इतने विकल रहा करते थे कि बहुत दिनों तक दिखाई न पड़े, तो वे खुद उसे ढूँढ़ने निकल पड़ते थे। एक बार तो जब नरेंद्र बहुत दिनों तक नहीं आया, तो वे ब्रह्मसमाज की बैठक में जा पहुँचे जहाँ नरेंद्र कोई भक्तिगीत गा रहे थे। भजन सुनकर रामकृष्ण परमहंस इस कदर आविष्ट हुए कि वे धीरे-धीरे उसी ओर बढ़ने लगे, जहाँ नरेंद्र भजनमंडली के बीच बैठकर गा रहा था। और फिर हालत यह हुई कि खड़े-खड़े ही परमहंस जी की समाधि लग गई। ब्रह्मसमाज की उस सभा में आए सभी लोग उत्सुक होकर उनके आसपास इकट्ठे हो गए और अचरज से उन्हें देख रहे थे। और फिर जैसा होना ही था, उस दिन की ब्रह्मसमाज की बैठक स्थगित कर दी

गई। बाद में नरेंद्र गुरु के निकट पहुँचा तो स्वयं को अपराध-बोध से ग्रस्त पा रहा था। उसके मन में इस बात के लिए तीव्र ग्लानि थी कि उसके कारण रामकृष्ण परमहंस को उसे ढूँढ़ने के लिए यहाँ आना पड़ा!

पर रामकृष्ण परमहंस को भला इस सबकी क्या परवाह? वे तो नरेंद्र से मिलकर मगन थे। नरेंद्र में छिपे हुए तेजपुंज को उन्होंने पहचान लिया था। हालाँकि नरेन्द्र अभी तक नहीं समझ पाता था। उसे हैरानी होती। कई बार लगता, मेरे प्रति अतिरिक्त मोह के कारण ही गुरु जी ऐसा कह रहे हैं। एक बार की बात, ब्रह्म समाज के केशवचंद्र सेन, विजयकृष्ण गोस्वामी आदि प्रमुख लोग रामकृष्ण परमहंस से मिलने आए। वे रामकृष्ण का उपदेश सुन रहे थे। सामने ही नरेंद्र भी बैठा था। अचानक परमहंस का ध्यान नरेन्द्र की ओर चला गया और वे मुग्ध होकर उसे देखते रहे। बाद में भावपूर्ण स्वर में बोले—'देखा कि जिस एक शक्ति के उत्कर्ष के कारण केशव जगद्विख्यात हुआ है, वैसी अठारह शक्तियों का नरेंद्र में पूर्ण उत्कर्ष हुआ है। और यह भी दिखा कि विजय और केशव के हृदय में दीपक की ज्योति के समान ज्ञान है, परंतु नरेंद्र के हृदय में प्रत्यक्ष ज्ञानसूर्य ही उदित हो गया है।'

नरेन्द्र को सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने अविश्वास से कहा, 'महाराज यह क्या कह रहे हैं? ये इतने ख्यात लोग हैं, मैं भला इनके सामने क्या हूँ!'

सुनकर हँसने लगे। बोले, 'मैं स्वयं थोड़े ही कहता हूँ। माँ जगदंबा मुझे जैसा दिखाती हैं, वैसा बोलता हूँ।' **(वही, पृ. 417)**

शुरू में विवेकानंद रामकृष्ण के सामने उनके विश्वासों की खिल्ली उड़ाते, तो भी वे कुछ कहते नहीं थे हँसकर टाल जाते थे। और कहते थे, 'समय आएगा, जब तू स्वयं कहेगा और मानेगा भी।'

और वह समय आया, जब वे अपने जीवन के सबसे दुखद मोड़ पर थे। पिता के निधन पर अचानक जिम्मेदारियों का बड़ा बोझ उनके कंधों पर आ गया, पर मन उनका दूसरी ओर दौड़ रहा था। तो भला वे क्या करें? उनके जीवन की धारा तो जैसे दूसरी ओर मुड़ गई थी, पर घर की जिम्मेदारियों का क्या करें? माँ और छोटे भाई-बहन सब उन पर अवलंबित थे।

इस दारुण दुख की घड़ी में अचानक एक दिन उन्हें जगदंबा का ध्यान आया। सब ओर से ठोकरें खाया मन उन्हें मानो जगदंबा के दरबार में खींचकर ले जा रहा था, पर अभी हिचक बाकी थी। पता नहीं जगदंबा उनकी बात सुनें या न सुनें, पर परमहंस की बात तो वे जरूर मानेंगी। उसी समय उनके मन में आया कि अगर परमहंस जी कहें तो माँ जगदंबा जरूर कुछ सहायता करेंगी। उन्होंने जाकर रामकृष्ण परमहंस से यह कहा। सुनकर वे बोले, 'मैं कहूँगा, पर ऐसी बातें मुझसे कही नहीं जातीं। तू खुद क्यों नहीं कहता?'

उन्होंने नरेंद्र को जगदंबा के दरबार में भेजा। पर माँ के मंदिर में जाते ही वे इस कदर ध्यानमग्न हो गए कि उन्हें कुछ कहना याद ही नहीं रहा। रामकृष्ण परमहंस ने दोबारा भेजा, तब भी नरेंद्र की यही हालत हुई। यहाँ तक कि तीसरी बार गए, तब भी वे माँ जगदंबा से कुछ माँग नहीं पाए।

लौटकर नरेंद्र ने गुरु से कहा कि उन्हें तो परिवार के लिए कुछ माँगने की बात याद ही नहीं रही। इस पर परमहंस हँसकर बोले, 'देख ले, इतने बड़े दरबार में इतनी छोटी बात क्या कही जा सकती है?' फिर विवेकानंद को व्यग्र देखकर उन्होंने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा, 'ठीक है, आज से तेरे घर मोटे अनाज और वस्त्र की कमी न रहेगी।'

और सचमुच हुआ भी यही। नरेंद्र को नौकरी मिली और फिर घर की हालत भी धीरे-धीरे सुधरने लगी।

पर विवेकानंद इसके लिए तो बने नहीं थे। उनका मन तो तेजी से अध्यात्म की ओर खिंच रहा था। उन्होंने जिस तीव्र चुंबकीय शक्ति की अनुभूति कर ली थी, उसके घेरे से निकल पाना क्या आसान था। लग रहा था, जिन सवालों के जवाब वे खोज रहे थे, वे अब मिल रहे थे। उनका इस जीवन में आने का प्रयोजन क्या है, कुछ-कुछ वे समझने लगे थे। बहुत मुश्किल से उनके विद्रोही मन ने जगदंबा को माना था। पर जब माना तो कुछ और उनके ध्यान में टिकता ही न था। रामकृष्ण परमहंस इस बात से इतने अधिक आनंदित थे कि जो भी उनसे मिलने जाते, उससे बस एक ही बात कहते, 'नरेंद्र ने जगदंबा को मान लिया!' मानो अब उन्हें वह सब बिलकुल साफ नजर आने लगा था, जिसको पहले उन्होंने ध्यान में देखा था।

विवेकानंद अपने गुरुभाइयों के साथ ध्यान में बैठते थे। एक दिन उन्होंने परमहंस जी से कहा, 'महाराज, मुझे निर्विकल्प समाधि का सुख अभी तक नहीं मिला।'

इस पर रामकृष्ण बोले, 'मैं क्या कर सकता हूँ? माँ की जैसी इच्छा होगी, वैसा होगा।'

और फिर एक दिन नरेंद्र जब अपने गुरुभाइयों के साथ ध्यान करने बैठा, तो उसकी ऐसी गहन समाधि लग गई कि देह का कोई बोध ही नहीं रहा। उसके गुरुभाई अचरज से यह देख रहे थे। उन्होंने जाकर परमहंस से कहा। वे बोले, 'ठीक है, वह बहुत समय से मुझे तंग कर रहा था।'

बहुत देर बाद जब विवेकानंद को देहभान हुआ, तो उनकी आँखों से अश्रु बह रहे थे। तन-मन आनंदविभोर था। वे दौड़े-दौड़े रामकृष्ण के पास पहुँचे। रामकृष्ण परमहंस उनकी अवस्था देखकर ही सब

जान गए। बोले, 'अब माँ ने तुझे सब कुछ दिखा दिया है और तेरे दरवाजे की चाबी मुझे दे दी है!'

सन् 1886 में रामकृष्ण परमहंस की अनंत समाधि के बाद विवेकानंद ने अपने गुरुभाइयों के साथ मिलकर उनके अधूरे कामों को पूरा करने और उनके उपदेशों को दूर-दूर तक फैलाने का जिम्मा सँभाला। उन्होंने सारे भारत में भ्रमण किया। उससे घोर गरीबी में भी गहरी ईश्वरीय आस्था के साथ जीने वाली भारत की सीधी-सादी जनता को उन्हें निकट से देखने और समझने का अवसर मिला। देश के असंख्य लोगों के दुख, गरीबी और उत्पीड़न को निकट से महसूस करके वे विचलित हो उठे। वे सोचते थे कि सच्चा अध्यात्म तो यह है कि कोटि-कोटि जनता के दुखों को दूर किया जाए।

सन् 1893 में शिकागो में आयोजित सर्वधर्म महासभा मानो ऐसा रंगमंच था, जिसमें विवेकानंद को अपनी संपूर्ण कलाओं और भास्वर तेजस्विता के साथ पूरी दुनिया के आगे आना था। इस विश्व धर्म महासभा का पता चला, तो विवेकानंद उसमें भाग लेने पहुँचे। खेतड़ी के महाराजा ने उन्हें जहाज का टिकट खरीदकर दिया। साथ ही विवेकानंद की अनिच्छा के बावजूद उन्होंने एक रेशमी गैरिक चोगा भी सिलवाकर दिया, जो शिकागो में सभी के आकर्षण का केंद्र बना। हालाँकि विवेकानंद शिकागो पहुँचे, तो हड्डियों तक को कँपकँपाने वाली जिस सर्दी से उनका सामना हुआ, उसका उन्हें कतई अंदाजा नहीं था और न उससे बचने का कोई साधन उनके पास था। बड़ी मुश्किल से सड़क के किनारे पड़े एक बड़े से पाइप में छिपकर उन्होंने जान बचाई।

इस अनिश्चय की अवस्था में विवेकानंद बोस्टन घूमने चले गए। रेलगाड़ी में मिली एक भली महिला से उनका परिचय हुआ, जिनके पति जे. एच. राइट हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर थे। उन्होंने विवेकानंद को अपने घर आमंत्रित किया। प्रोफेसर राइट विवेकानंद के विचारों से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने सर्व धर्म सम्मेलन की समिति को पत्र लिखा कि उनकी इच्छा है कि भारत से आया यह तेजस्वी संन्यासी इस सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व करे। साथ ही उन्होंने शिकागो के लिए टिकट भी कटा दिया।

पर विवेकानंद शिकागो पहुँचे, तो पता चला कि समिति का पता कहीं खो गया है। गाड़ी भी कुछ देर से पहुँची थी। अब भला वे क्या करें? कोई उन्हें सही-सही राह बताने वाला कोई नहीं था। पूछने पर जगह-जगह अपमानजनक स्थितियाँ झेलनी पड़ीं। बुरी तरह थककर और परेशान होकर वे एक छोटी-सी गली में बैठ गए और सोच रहे थे कि अब क्या करें? पास ही एक दयालु परिवार रहता था। उन लोगों ने विवेकानंद की वेशभूषा देखकर कुछ अनुमान लगाया और पूछा कि कहीं वे विश्व धर्म महासभा में भाग लेने तो नहीं आए? सारी बात पता चलने पर उन्होंने मदद की और स्वामी जी सम्मेलन में पहुँचे।

पर इस तरह की हताश कर देने वाली घटनाओं के बावजूद विवेकानंद निराश नहीं हुए। आखिर वे भारत जैसे महान और गौरवशाली परंपराओं वाले देश के प्रतिनिधि थे और यह गौरव ऐसा था जिसके आगे बाकी सारी उलझनें और मुश्किलें छोटी थीं।

विश्व धर्म महासभा में पहले ही दिन अपने स्वागत का उत्तर देते हुए उन्होंने जो शब्द कहे, अब वे एक ऐतिहासिक दस्तावेज बन गए हैं। सभी प्रतिनिधि जहाँ औपचारिक संबोधन से बात शुरू कर रहे थे, वहाँ स्वामी विवेकानंद की वाणी में छिपी ममता और स्नेह ने पल में सभी को अपना बना लिया। देर तक लोग खड़े होकर तालियाँ बजाते रहे। उस दिन स्वामी विवेकानंद को अपने स्वागत के जवाब में धन्यवाद देना था, और उनके शब्द ऐसे थे, जो वहाँ उपस्थित हर व्यक्ति के दिल में उतर गए। चंद शब्दों में ही उन्होंने भारत की उस महान परंपरा से सबको परिचय दिया, जिसके प्रतिनिधि के रूप में वे वहाँ उपस्थित थे। उस दिन विवेकानंद के वक्तव्य के आरंभिक शब्द थे—'अमेरिकावासी बहनो और भाइयो, आपने जिस सौहार्द और स्नेह के साथ हम लोगों का स्वागत किया है, उसके प्रति आभार प्रकट करने के निमित्त खड़े होते हुए मेरा हृदय अवर्णनीय हर्ष से पूरित हो रहा है। संसार में संन्यासियों की सबसे प्राचीन परंपरा की ओर से मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, धर्मों की माता की ओर से धन्यवाद देता हूँ, और सभी संप्रदायों एवं मतों के कोटि-कोटि हिंदुओं की ओर से धन्यवाद देता हूँ।'

फिर उन्होंने 'शिवमहिम्न : स्तोत्रम्' के साथ-साथ गीता का भी एक श्लोक पढ़ा, जिसका भावार्थ है, 'जो कोई मेरी ओर आता है—चाहे किसी प्रकार से हो—मैं उसको प्राप्त होता हूँ। लोग जो भिन्न-भिन्न मार्ग द्वारा प्रयत्न करते हैं, अंत में मेरी ओर आते हैं।'

जाहिर है, ये ही वे शब्द थे, जिन्होंने विश्व धर्म महासभा की दशा-दिशा तय कर दी थी। उन्होंने वक्ताओं को विचार और चिंतन की एक ऐसी समन्वयात्मक राह दे दी थी, जिसमें धार्मिक मतभेद और दीवारों को अंततः ढहना ही था, ताकि इस विश्व महासभा से विश्व कल्याण की राह निकले। छूँछे शब्दों का कर्मकांड नहीं। विवेकानंद की वाणी में ऐसा तेज था कि उनके शब्द, जो बहुत ही निर्मल मन और सच्चाई से कहे गए थे, लोगों के दिलों में उतरते चले गए। चारों तरफ उनका प्रभाव छा गया। सुनने वाले मंत्रमुग्ध हो उठे।

फिर उन्होंने हिंदू धर्म के विचारों को लेकर जो गंभीर और गवेषणापूर्ण लेख पढ़ा, उसमें हिंदू धर्म की सभी बुनियादी बातें इतने साफ और प्रभावी रूप में सामने आईं कि यह लेख आज भी 'हिंदू धर्म की एक संपूर्ण व्याख्या' सरीखा लगता है। शायद ही हिंदू धर्म से जुड़ा विचार और चिंतन का कोई महत्त्वपूर्ण पक्ष उनसे छूटा हो।

इस लेख में विवेकानंद जहाँ हिंदू धर्म की उदारता और विश्व दृष्टि की चर्चा करते हैं, वहाँ वे उन पक्षों का भी मजबूती से जवाब देते हैं, जिन्हें लेकर मिशनरी और दूसरे लोग लगातार हमले कर रहे थे और बुरी तरह खिल्ली उड़ाते थे। विवेकानंद ने हिंदू धर्म की उस आश्चर्यजनक ग्रहणशीलता और समन्वयात्मक दृष्टि की बहुत सुंदर ढंग से चर्चा की, जिसके कारण हजारों वर्षों से असंख्य चुनौतियों का सामना करने के बावजूद वह चुका नहीं, बल्कि हर बार पहले से बहुत अधिक प्रबल और सतेज होकर सामने आया। यहाँ तक कि जो आक्रांता बनकर आए, वे भी आगे चलकर इसी में समा गए और हिंदू धर्म ने सभी की अच्छी बातों को उदारता से ग्रहण किया।

इसी तरह वेदों के अनादि होने की बात को उन्होंने बहुत अच्छे ढंग से समझाया। मूर्तिपूजा को लेकर पादरी हिंदू धर्म का बहुत मखौल उड़ाते थे। इस बात की चर्चा करते हुए विवेकानंद भारत के सीधे-सादे लोगों की आस्था के साथ खड़े हो जाते हैं। वे कहते हैं—'बचपन की एक बात मुझे याद आती है। एक ईसाई पादरी कुछ मनुष्यों की भीड़ जमा करके धर्मोपदेश कर रहा था। बहुतेरी मजेदार बातों के साथ वह पादरी यह भी कह गया—अगर मैं तुम्हारी देवमूर्ति को डंडा लगाऊँ तो यह मेरा क्या कर सकती है? एक श्रोता ने झट चुभता-सा जवाब दे डाला—अगर मैं तुम्हारे ईश्वर को गाली दूँ तो वह मेरा क्या कर सकता है? पादरी बोला—मरने के बाद वह तुम्हें सजा देगा। हिंदू भी तनकर बोल उठा—तुम मरोगे तो उसी तरह देवमूर्ति भी तुम्हें दंड देगी!'

आगे वे कहते हैं, 'जब मूर्तिपूजक कहे जाने वाले लोगों में मैं ऐसे मनुष्यों को पाता हूँ जिनकी नैतिकता, आध्यात्मिकता और प्रेम अपना सानी नहीं रखते, तब मैं रुक जाता हूँ और अपने से यही पूछता हूँ—क्या पाप से भी पवित्रता की सृष्टि हो सकती है?' **(विवेकानंद साहित्य संचयन, पृ.10)**

इसी व्याख्यान में आगे मूर्तिपूजा को लेकर मिशनरियों के दुष्प्रचार पर वे कुछ आक्रामक लहजे में कहते हैं—'एक बात आपको अवश्य बतला दूँ। भारतवर्ष में मूर्तिपूजा कोई जघन्य बात नहीं है। न वह व्यभिचार की जननी है। वरन वह अविकसित मन के लिए उच्च आध्यात्मिक भाव को ग्रहण करने का उपाय है। अवश्य हिंदुओं के बहुतेरे दोष हैं, उसके कुछ अपवाद हैं, पर यह ध्यान रखना रखिए कि उसके वे दोष अपने शरीर को ही उत्पीड़ित करने तक सीमित हैं। वे कभी अपने पड़ोसियों का गला नहीं काटने जाते। एक हिंदू धर्मांध भले ही चिता पर अपने को जला डाले, पर वह विधर्मियों को जलाने के लिए 'इक्विजिशन' की अग्नि कभी प्रज्ज्वलित नहीं करेगा। और इस बात के लिए उसके धर्म को उससे अधिक दोषी नहीं ठहराया जा सकता, जितना डाइनों को जलाने का दोष ईसाई धर्म पर मढ़ा जा सकता है।' **(वही, पृ. 12)**

इसी व्याख्यान में विवेकानंद बौद्ध और जैन धर्मों की भी चर्चा करते हैं, जो इसी देश में जनमे और थोड़े मतांतर के बावजूद मूलत: हिंदू धर्म की ही आस्था और विश्वासों को आगे बढ़ाते हैं। विवेकानंद कहते हैं—'यद्यपि बौद्ध तथा जैन ईश्वर पर निभर नहीं करते, तथापि उनके धर्म की पूरी शक्ति प्रत्येक धर्म के महान केंद्रीय सत्य—मनुष्य में ईश्वरत्व के विकास की ओर उन्मुख है। उन्होंने पिता को भले न देखा हो, पर पुत्र को अवश्य देखा है। और जिसने पुत्र को देख लिया, उसने पिता को भी देख लिया।' **(वही, पृ. 13)**

अपने व्याख्यान के अंत में वे अमेरिका और अमेरिकावासियों को संबोधित करते हुए बड़े विश्वासपूर्ण शब्दों में कहते हैं—'आप ऐसा ही धर्म सामने रखिए और सारे राष्ट्र आपके अनुयायी हो जाएँगे। अशोक की परिषद बौद्ध परिषद थी। अकबर की परिषद अधिक उपयुक्त होती हुई भी केवल बैठक की ही गोष्ठी थी। किंतु पृथ्वी के कोने-कोने में यह घोषणा करने का गौरव अमेरिका के लिए ही सुरक्षित था कि प्रत्येक धर्म में ईश्वर है।' **(वही, पृ. 13)**

और इस विश्व धर्म महासभा के समापन के समय विवेकानंद ने जो शब्द कहे, वे भी मानो घंटा-नाद की तरह लंबे समय तक दुनिया भर के धर्म चिंतकों को मथते रहे। उन्होंने बड़े ही ओजस्वी शब्दों में कहा—'इस धर्म महासभा ने जगत के समक्ष यदि कुछ प्रदर्शित किया है तो वह यह है, उसने यह सिद्ध कर दिया है कि कि शुद्धता, पवित्रता और दयाशीलता किसी संप्रदाय विशेष की एकांतिक संपत्ति नहीं है एवं प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठ एवं अतिशय उन्नत चरित्र स्त्री-पुरुषों को जन्म दिया है। अब इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के बाद भी यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्यान्य सारे धर्म नष्ट हो जाएँगे और केवल उसका धर्म ही जीवित रहेगा, तो उस पर मैं अपने हृदय के अंतस्तल से दया करता हूँ और उसे स्पष्ट बतलाए देता हूँ कि शीघ्र ही सारे प्रतिरोधों के बावजूद, प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा रहेगा—सहायता करो, लड़ो मत, परभाव-ग्रहण न कि परभाव-विनाश, समन्वय और शांति, न कि मतभेद और कलह!' **(वही, पृ.17)**

स्वामी जी अध्यात्म और ऐहिक जीवन के बीच वैसी चौड़ी खाई स्वीकार न करते थे, जैसी रूढ़ि बन चुकी थी। उनके भीतर का क्रांतिकारी युग-चिंतक एक नया ही सपना देख रहा था। अपने एक पत्र में स्वामी जी ने रामकृष्ण मिशन से जुड़े बड़े अद्भुत सपने को इन शब्दों में प्रकट किया है—'हमारे देश में हजारों एकनिष्ठ और त्यागी साधु हैं, जो गाँव-गाँव धर्म की शिक्षा देते फिरते हैं। यदि उनमें से कुछ लोगों को ऐहिक विषयों में भी प्रशिक्षित किया जाए, तो गाँव-गाँव, दरवाजे-दरवाजे जाकर वे केवल धर्म शिक्षा ही नहीं देंगे, बल्कि ऐहिक शिक्षा भी दिया करेंगे। कल्पना कीजिए

कि इनमें से एक-दो शाम को साथ में एक मैजिक लैंटर्न, एक ग्लोब और कुछ नक्शे आदि लेकर किसी गाँव में गए। इसकी सहायता से वे अनपढ़ लोगों को बहुत कुछ गणित, ज्योतिष और भूगोल सिखा सकते हैं। जितनी जानकारी वे गरीब जीवन भर पुस्तकें पढ़ने से न पा सकेंगे, उससे कहीं सौगुनी अधिक वे इस तरह बातचीत द्वारा पा जाएँगे।'

विवेकानंद ने रामकृष्ण मिशन के साथ सेवा का जो आदर्श जोड़ा था, उसकी परीक्षा का समय भी जल्दी ही सामने आ गया। बंगाल में भीषण अकाल पड़ा तो आम जनता के दुख और कराहों ने विवेकानंद को व्यथित किया। उन्होंने रामकृष्ण मिशन को पूरी तरह दीन-दुखियों और पीड़ित लोगों की सेवा में लगाया और स्वयं भी हर तरह से लोगों की सहायता में जुट गए। मंदिर के बाहर रहकर वे सब कार्यों की निगरानी कर रहे थे। भूख से मरते लोगों की तकलीफें इतनी दारुण थीं कि विवेकानंद ने अपने शिष्यों और गुरुभाइयों से यहाँ तक कहा कि अगर जरूरत पड़ी तो इस मंदिर को भी बेच दिया जाए। उससे जो धन मिले उससे अकालग्रस्त लोगों और दीन-दुखियों की मदद की जानी चाहिए, क्योंकि जीवित मनुष्य से बढ़कर ईश्वर का कोई और मंदिर नहीं हो सकता।

जल्दी ही भारत में ही नहीं, विदेशों में भी रामकृष्ण मिशन की शाखाएँ खुलीं और अनेक विचारवान लोग बहुत उत्साह से इसमें शामिल हुए। इंग्लैंड की मिस मार्गेट नोबेल विवेकानंद के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर संन्यासिनी बन गईं। संन्यासिनी होने के बाद विवेकानंद ने उनका नाम निवेदिता रखा। निवेदिता भारत आकर जीवन भर विवेकानंद के विचारों के प्रचार में लगी रहीं। वे अखबारों और पत्रिकाओं में जो लेख लिखती थीं, उनसे पूरे भारत में एक नई हिलोर पैदा होती थी। उन्होंने सच में रामकृष्ण मिशन में सक्रिय होकर स्वामी विवेकानंद के काम को आगे बढ़ाया।

अपनी अनवरत यात्राओं और अहर्निश तप से स्वामी जी का शरीर जर्जर हो चुका था। उन्हें यह आभास हो गया कि अब उनके पास अधिक समय नहीं है। शरीर क्लांत और शिथिल हो चुका था। कहाँ तो वर्षों पूर्व अमरनाथ की यात्रा के समय वे दुर्गम पहाड़ियों पर चढ़कर गए थे और कहाँ अब हालत यह थी कि अपने जीवन के सांध्यकाल में वे यात्रा पर गए तो उन्हें सहारा देकर ले जाना पड़ा। शरीर दुर्बल था और मन मुक्त। वे बहुत जल्दी भावावेश और समाधि की अवस्था में पहुँच जाते थे और शरीर की सुध-बुध एकदम खो बैठते। मानो वे जान गए थे कि इस संसार में उनका काम पूरा हो चुका है और अब वे प्रस्थान के लिए तैयार थे। बहुत पहले अपनी एक कविता में उन्होंने यही भावाकुलता प्रकट की थी—

माँ, मुझे उस तट तक पहुँचाओ...
इन पीड़ाओं, इन आँसुओं और भौतिक सुखों से परे,
जिस तट की महिमा को
ये रवि, शशि, उडुगण और विद्युत भी अभिव्यक्ति न देते,
महज उसके प्रतिबिंब का प्रकाश लिए फिरते हैं।
ओ माँ, ये मृगपिपास भरे स्वप्नों के आवरण
तुम्हें देखने से मुझे न रोक सकें,
मेरा खेल खत्म हो रहा है माँ!
ये शृंखला की कड़ियाँ तोड़ो
मुक्त करो मुझे! (वही, पृ. 347)

सात बरस पहले न्यूयार्क में लिखी गई इस कविता में जो भाव था, वही अब रोम-रोम से प्रकट होकर उनकी चेतना को झकझोर रहा था। आखिर 4 जुलाई, 1902 को केवल 39 वर्ष की अवस्था में भारत के इस महान योद्धा संन्यासी ने अपना चोला छोड़ दिया। लेकिन आने वाली सदियाँ बड़ी कृतज्ञता के साथ उन्हें एक ऐसे वीर संन्यासी के रूप में याद करेंगी, जिसने अध्यात्म का एक नया और युगांतकारी भाष्य करके उसे जन-जन की पीड़ा से जोड़ दिया और कहा कि 'यह इतना बड़ा आदर्श है, जिसके आगे मुझे अपनी मुक्ति भी छोटी लगती है।'

विवेकानंद सचमुच क्रांतिकारी विचारक थे। यही कारण है कि उनके विचारों को पढ़ते हुए आज भी हमारे भीतर बिजलियाँ-सी दौड़ जाती हैं। स्वामी विवेकानंद को बहुत छोटी उम्र मिली। शायद इसीलिए उन्हें ऐसा उद्दाम आवेग भी मिला, जो सामने उपस्थित बड़े से बड़े जन-समुदाय को किसी प्रचंड वेगवती नदी के तीव्र प्रवाह की तरह बहाए लिए जाता था। लोग उनकी बात सुनकर अपने आप से कहते, 'हाँ, यह ठीक है—यही ठीक है।...इसमें कोई संदेह नहीं!' और फिर न जाने कब वे स्वयं को उनके पीछे-पीछे चलते महसूस करते। हजारों लोगों के भीतर उन्होंने ऐसा जादुई व्यक्तित्वांतर पैदा कर दिया कि उन्हें लगने लगगा विवेकानंद से मिलने से पहले वे कुछ और थे और उनसे मिलने के बाद कुछ और हो गए हैं। यह जादू पूरी दुनिया ने देखा, जिसके गवाह हर जगह मौजूद थे।

शायद इसी का यह परिणाम था कि अकेले स्वामी विवेकानंद ने जितना भारत को प्रभावित किया, उतना सैकड़ों समाज-सुधारकों ने भी नहीं। भारत की हजारों वर्ष पुरानी परंपरा उनमें मूर्तिमान लगती थी और वे बोलते थे तो उनके शब्द सीधे दिल से संवाद करते थे, और सुनने वालों का थोड़ी देर के लिए जैसे अपने आप से नियंत्रण समाप्त हो जाता था। वे सुनते थे और अपने आपको उनके साथ बहता महसूस करते थे। सच तो यह है कि विवेकानंद जैसी प्रखर प्रतिभा सदियों में कभी-कभी जन्म लेती है। वे मानो पराधीन भारत के निराशा के बंध काटकर उसमें प्रचंड आत्मविश्वास का लावा भरने के लिए ही जनमे थे।

545, सेक्टर-29,
फरीदाबाद-121008 (हरियाणा)
मो. 09810602327

श्रीकृष्ण सरल जीवित शहीद थे

– गिरीश पंकज

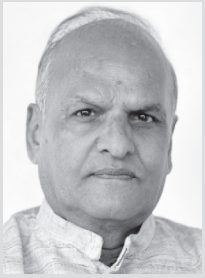

जन्म – 1 नवंबर 1957।
शिक्षा – एम.ए.।
रचनाएँ – विभिन्न विधाओं में सौ से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – उ.प्र. हिंदी संस्थान के साहित्यभूषण सम्मान सहित अनेक सम्मानों से विभूषित।

श्रीकृष्ण सरल महान क्रांतिकारी कवि थे। उनका समूचा जीवन क्रांतिकारियों की यशगाथा के गायन में निकल गया। महान क्रांतिकारियों पर उन्होंने जितना विपुल लेखन किया, उतना किसी भी भारतीय लेखक ने नहीं किया। वे खुद को अमर शहीदों का चारण कहते थे। क्रांतिकारी परमानंद उन्हें 'जीवित शहीद' कहा करते थे। 1 जनवरी 1919 को वे अशोक नगर (गुना) में जन्मे। 2 सितम्बर 2000 को उनका महाप्रयाण हुआ। उनकी रचनाओं में देश प्रेम झलकता था। ऐसा लगता है कि उनका समूचा जीवन महान क्रांतिकारियों के जीवन को लोक व्यापी करने के लिए हुआ था। वह जीवन के अंतिम समय तक इसी कार्य में लगे रहे। उनका एक मशहूर गीत है –

मैं अमर शहीदों का चारण, उनके गुण गाया करता हूँ
जो कर्ज राष्ट्र ने खाया है, मैं उसे चुकाया करता हूँ।
यह सच है याद शहीदों की, हम लोगों ने दफनाई है।
यह सच है उनकी लाशों पर चलकर आज़ादी आई है।
यह सच है हिन्दुस्तान आज जिन्दा उनकी कुर्बानी से
यह सच अपना मस्तक ऊँचा उनकी बलिदान कहानी से।

ऐसी अनेक रचनाओं के लेखक श्रीकृष्ण सरल को याद करना साहित्य की उस महान परंपरा को याद करना है, जिसने कलम के महत्व को दर्शाने की कोशिश की। कलम जो किसी राजसत्ता की चारण भाट नहीं बन सकती। अगर वह चारण बनेगी तो क्रांतिकारियों की बनेगी, देशभक्तों की बनेगी। इसीलिए श्रीकृष्ण सरल गर्व के साथ अपने आप को शहीदों का चारण कहते थे। आज हमारे साहित्य में कितने ऐसे चारण हैं जो शहीदों के गुण गाते हैं? हमारा दुर्भाग्य तो यह है कि शहीदों की बात करना, देश की बात करना, भारत माता की बात करना, आउट ऑफ डेट होता जा रहा है। समकालीन लेखन में देश प्रेम गायब है। मातृभूमि की वंदना निकृष्ट कर्म समझने लगे हैं। पिछड़ापन। ऐसे संक्रमण के दौर में श्रीकृष्ण सरल के प्रदेय को याद करके नई पीढ़ी को यह बताना जरूरी है कि साहित्य का उद्देश्य क्या होता है। क्या वह खा-पीकर अघाए लोगों का शगल है या फिर सृजन से संस्कार लेकर जीवन को नवाचारी बनाना उसका लक्ष्य है।

उनके समग्र लेखन को देख कर आश्चर्य होता है कि उन्होंने इतना व्यापक लेखन कैसे किया। उन्होंने पंद्रह महाकाव्य भी लिखे। आज के दौर में महाकाव्य लिखना सामान्य बात नहीं है। महाकाव्य के अलावा उन्होंने क्रांतिकारी कोश तैयार किया, जो पाँच खंडों का है। उसमें चर्चित और भूले बिसरे अनेक क्रांतिकारियों का जीवन परिचय पढ़ने को मिलता है। उन्होंने क्रांतिकारियों पर केंद्रित उपन्यास भी लिखे। चंद्रशेखर आजाद, राजगुरु, जतिंद्रनाथ, बाघाजतिन, रामप्रसाद बिस्मिल जैसे क्रांतिकारियों पर उनके उपन्यास रोंगटे खड़े कर देते हैं। चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह, सुभाष चंद्र बोस, अशफाकउल्ला खान, तिलक, बागी करतार पर केंद्रित उनके महाकाव्य बार-बार पढ़े जाने चाहिए। इसके अलावा उन्होंने निबंध भी लिखे, जो दिशा बोधक है। जिसमें उनके अपने 'अनमोल वचन' हैं। वे निबंधों में 'युवकों से दो-दो बातें' करते हैं और बताते हैं कि 'जियो तो ऐसे जियो'। वे 'जीवन के रहस्य' को भी बताते हैं। और इस तरह 'विचार और विचारक' के रूप में अपनी अमूल्य धरोहर छोड़ कर चले जाते हैं। उनके जितने भी काव्य संग्रह हैं, ज्यादातर शहीदों की याद में समर्पित हैं, या भारत माँ की वंदना करने वाले हैं। अगर क्रांतिकारी पंडित परमानंद ने उन्हें 'जीवित शहीद' कहा, तो महान साहित्यकार बनारसीदास चतुर्वेदी ने यह कहकर उन्हें गौरवान्वित किया कि-' श्रीकृष्ण सरल ने शहीदों का श्राद्ध

किया'। ऐसा नहीं है कि सरल जिन्होंने सिर्फ क्रांतिकारियों की ही गाथा कही, उन्होंने तुलसी मानस, सीतायन और सरल रामायण नामक तीन महाकाव्य भी लिखे। उनके बारे में यह कहा जाता है कि उन्होंने अपनी किताबें स्वयं प्रकाशित कीं और उसकी हजारों प्रतियाँ खुद बेचीं। उन्होंने कभी बहुत सही बात कही थी कि–'प्रकाशक लोग तो किताबे बेचकर अपनी जायदाद बनाते हैं, मगर मैंने अपनी जायदाद बेचकर किताबें बनाईं।'

पेशे से प्राध्यापक रहे सरल जी ने क्रांतिकारियों पर लेखन कार्य करने के सिलसिले में रंगून, चीन, हांगकांग आदि देशों की यात्राएँ भी की। ऐसा करते हुए वे आर्थिक संकटों से भी जूझते रहे, लेकिन वे प्रामाणिक लेखन करना चाहते थे। उन्होंने ऐसे–ऐसे क्रांतिकारियों के बारे में हमें जानकारी दी, जिनका नाम हम लोगों ने कभी सुना ही नहीं था। वासुदेव बलवंत फड़के, बाबा पृथ्वी सिंह आजाद, करतार सिंह सराभा, दुर्गा भाभी, रासबिहारी बोस जैसे कुछ महान प्रणम्य नामों के बारे में तो हम लोग कुछ–न–कुछ जानते ही हैं। सरल जी ने इन सब के बारे में भी लिखा है लेकिन लेकिन रगुंदकर, अल्लूरी सीताराम राजू, डॉ. चंपकरमन पिल्लई, चिदम्बरम पिल्ले, वांची अय्यर आदि के बारे में लिख कर भी उन्होंने हमें बताया कि देश के कोने–कोने में क्रांतिकारी भारत माता को आजाद कराने के लिए किस तरह प्राणपण से जुटे हुए थे। यह ज्यादा उल्लेखनीय बात है।

श्री कृष्ण सरल का उपनाम भले ही सरल था, और वे जीवन में भी सरल थे, लेकिन अपनी रचनाओं में वे दहकते हुए अंगारे से कम नहीं थे। उनका एक गीत देखें –

अपने गीतों से गंध बिखेरूँ मैं कैसे
मैं फूल नहीं काँटे अनियारे लिखता हूँ।
मैं लिखता हूँ मँझधार, भँवर, तूफान प्रबल
मैं नहीं कभी निश्श्रेष्ट किनारे लिखता हूँ।
मैं लिखता उनकी बात, रहे जो औघड़ ही
जो जीवन–पथ पर लीक छोड़कर चले सदा,
जो हाथ जोड़कर, झुककर डरकर नहीं चले
जो चले, शत्रु के दाँत तोड़कर चले सदा।
मैं गायक हूँ उन गर्म लहू वालों का ही
जो भड़क उठें, ऐसे अंगारे लिखता हूँ।

सरल जी की जन्म शताब्दी (2019) आई और चली गई। कुछेक जगह तो उनकी स्मृति में आयोजन हुए लेकिन जिस तरह पूरे देश में हलचल मचनी चाहिए थी, वैसा कुछ नहीं हुआ। हम उम्मीद करते हैं कि हमारी सरकारें उनके साहित्य को पाठ्यक्रमों का हिस्सा बनाएँगी, ताकि बच्चे उनके साहित्य को पढ़कर अपने भीतर देशभक्ति के संस्कार विकसित कर सकें, जिसकी आज बहुत कमी दिखती है और यह कमी हम सबको बहुत खलती भी है।

श्रीकृष्ण सरल ने अपना पूरा जीवन देश की भावी पीढ़ी को राष्ट्रभक्ति के संस्कार देने में लगा दिया। नई पीढ़ी को भगत सिंह के बारे में जानकारी देने के लिए उन्होंने एक महाकाव्य लिखा। इसे लिखने के लिए पहले उन्होंने भगत सिंह की माता विद्यावती जी से मिलने 1962 को पंजाब की यात्रा भी की। उनका आशीर्वाद पाने के बाद उन्होंने दिन रात एक करके महाकाव्य तैयार कर लिया। लेकिन उसे प्रकाशित करने वाला कोई प्रकाशक तैयार नहीं हुआ। अपनी इस पीड़ा को उन्होंने इस तरह लिपिबद्ध किया है। 'मैं अपना काम समाप्त कर चुका था। प्रकाशकों का काम शेष था। मुझे आशा थी कि शहीदेआजम भगतसिंह पर लिखा गया महाकाव्य प्रकाशित कराने में कोई कठिनाई नहीं होगी। मैं तो यहाँ तक आशान्वित था कि उसे प्रकाशित करने के लिए प्रकाशकों में होड़ लग जाएगी। महाकाव्य की पाण्डुलिपि लेकर दिल्ली पहुँचा। प्रकाशकों से मिला। कोई कहता, 'हिन्दी की कविता तो बिकती ही नहीं है। इतना बड़ा महाकाव्य छापकर हम व्यर्थ अपना पैसा नहीं फँसाएँगे।' दूसरा कहता, 'हमारी तिजोरी में कई पाण्डुलिपियाँ रखी हुई हैं। आप भी छोड़ जाइए। उन सब के छपने के पश्चात् ही आपकी कृति का क्रम आ सकेगा। दो–चार साल तो आपको प्रतीक्षा करनी ही चाहिए।'

सरल जी बताते हैं कि मैं पाण्डुलिपि लेकर किसी अन्य प्रकाशक के पास जा पहुँचता। वह कहता, 'अगर आप इसे छपवाना ही चाहते हैं तो इसकी छपाई का पूरा पैसा हमें पेशगी दे दीजिए। हम अपने प्रकाशन का नाम डाल देंगे। हमारे प्रकाशन के नाम से आपकी पुस्तक चमक जाएगी। पुस्तक बिकने पर हम आपका पैसा आपको लौटा देंगे।' यह सुनकर सरल जी वहाँ से चल देते। जहाँ भी जाते, इसी तरह के उत्तर मिलते। वे लिखते हैं, 'कई शहरों में घूमा। ऐसा लगा जैसे भारतवर्ष के सभी प्रकाशक एक–दूसरे के भाई–बन्द हैं। मुँह लटकाए हुए मैं उज्जैन लौट

आया। सोचता था जिस देश में शहीदों की यह कद्र है, उस देश का क्या होगा? शहीद की माता को दिया हुआ वचन प्रतिपल चिन्तित किए रहता था। एक दिन परिवार के सदस्यों को अपने सामने बिठाया और अपनी समस्या उनके सामने रख दी। परिवार में दो छोटे बच्चे भी थे, जिनमें से एक प्राथमिक विद्यालय में और दूसरा माध्यमिक विद्यालय में पढ़ता था। उन लोगों ने आश्वासन दिया कि हम लोग अपनी आवश्यकताओं को कम से कम कर देंगे और कोई ऐसी वस्तु नहीं माँगेंगे, जिसमें आपको पैसा खर्च करना पड़े। बच्चों की ओर से यह आश्वासन बहुत बड़ा आश्वासन था। पत्नी ने कहा, 'मेरे पास सोने-चाँदी के जितने आभूषण हैं, उन्हें आप बेच दीजिए और शहीद भगतसिंह पर लिखी हुई किताब छपवा लीजिए।' आखिर मैंने पत्नी को यह त्रास दे ही दिया। उनके सारे आभूषण बेच दिए गए। पुस्तक तो परीक्षा लेने पर तुली हुई थी। घर का अन्य सामान भी बेचना पड़ा। दस रुपया सैकड़ा प्रतिमास ब्याज-दर से एक साहूकार से कर्ज भी लिया। एक दिन कॉलेज से जब घर लौटा तो दोनों बच्चों ने मेरे हाथ में कुछ रुपये रख दिए। मैंने पूछा-'ये कहाँ से आए?' उन्होंने कहा-आपकी पुस्तक की छपाई में यह हमारा योगदान है। पत्नी ने स्थिति स्पष्ट की, 'कबाड़े का सामान खरीदने वाला इधर से निकला था। इन लोगों ने अपने सारे कपड़े बेच दिए। गर्म कपड़े भी नहीं बचाए। जो कपड़े पहने हैं, वे ही कपड़े रह गए हैं।' बच्चों का यह त्याग और योगदान देखकर मन प्रफुल्ल हो गया।'

इस तरह सरल जी ने अपने खर्चे से ही महाकाव्य का प्रकाशन किया और भगत सिंह की माता जी को पत्र लिखकर विमोचन हेतु उज्जैन आने का आग्रह किया। विमोचन की तारीख भी तय हो गई लेकिन सरल जी ने सोचा भगत सिंह की माता विद्यावती जी शायद ही आ पाएँ क्योंकि वे शारीरिक दृष्टि से कुछ कमजोर भी हो गई थीं। लेकिन सरल जी यह देख कर आश्चर्यचकित हो गए, जब माता जी उज्जैन पधारीं। उनके उज्जैन आने की खबर उज्जैन और आसपास के लोगों को जब मिली तो वे सब माता जी के दर्शन करने उज्जैन पहुँच गए। माता जी की भव्य शोभायात्रा निकली और हजारों लोग भगत सिंह की महान माँ के चरण छूने के लिए बेताब हो गए। हर कोई उन्हें प्रणाम करना चाहता था। शाम तक हालत यह हो गई कि माता जी के हाथ-पैर में सूजन आ गई। विमोचन कार्यक्रम हुआ। लेकिन विमोचन करने के पहले भगत सिंह की माँ ने फीता काटने से मना कर दिया। सरल जी ने पूछा ऐसा क्यों कर रही हैं, तो माता जी ने कहा कि- 'पहले वचन दो कि तुम चंद्रशेखर आजाद पर भी महाकाव्य लिखोगे। आजाद ने भगत सिंह के पहले बलिदान किया था। दोनों बहुत अच्छे मित्र थे। आजाद पर महाकाव्य लिखने का वचन दो। 'सरल जी धर्म संकट में पड़ गए। सोचते रहे फिर उन्होंने कहा,' आपका आदेश शिरोधार्य है। उसके बाद ही माता जी ने महाकाव्य का विमोचन किया। फिर उन्होंने जो भावपूर्ण भाषण दिया उससे लोगों की आँखें नम हो गईं। उन्होंने कहा, 'आज ऐसा लग रहा है कि मेरा लाल मेरी गोदी में बैठा हुआ है।' माता जी ने एक महत्त्वपूर्ण घटना का जिक्र किया कि जब भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी की घोषणा हो गई तो मैं सुखदेव और राजगुरु की माताओं के साथ जेल पहुँची, लेकिन भगत सिंह ने मिलने से इनकार कर दिया। उसने कहा कि-'मैं अगर आप से मिलूँगा तो देश की जनता क्या सोचेगी। हम तो इस भारत माता के पुत्र हैं। हमारी सैकड़ों माताएँ हैं। उन को छोड़ कर के हम अपनी माताओं से मिले तो यह अन्याय होगा।' यह भगत सिंह की व्यापक सोच थी।

श्रीकृष्ण सरल जी के विशद रचना कर्म को हम देखते हैं तो हमें बड़ी प्रेरणा मिलती है। आज के दौर में भी कोई ऐसा लेखक हुआ, जो सत्ता का नहीं, शहीदों का चारण बना। जीवन भर शहीदों के ही गुण गाता रहा। सरल जी की ही इन पंक्तियों के साथ मैं अपनी बात खत्म करता हूँ कि -

छोड़ो लीक पुरानी छोड़ो,
युग को नई दिशा में मोड़ो
छोड़ो लीक पुरानी छोड़ो।
प्रेरक बने अतीत तुम्हारा,
नए क्षितिज की ओर चरण हो।
नए लक्ष्य की ओर तुम्हारे उन्मुख जीवन और मरण हों।
रखे बाँध कर जो जीवन को ऐसे हर बंधन को तोड़ो
छोड़ो लीक पुरानी छोड़ो।

'कृष्ण कुटीर', सेक्टर- 3, एचआईजी-2/2,
दीनदयाल उपाध्याय नगर,
रायपुर-492010 (छ.ग.)
मो.- 8770969574

कच्ची भूमि का पैदल यात्री

– गंगा प्रसाद बरसैंया

जन्म – 6 फरवरी 1937।
जन्म स्थान – भौंरी, चित्रकूट (उ.प्र.)।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी।
रचनाएँ – सैंतीस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – हिंदी प्रचारणी सभा उ.प्र. के 'साहित्य भारती' सम्मान सहित अनेक सम्मानों से अलंकृत।

जीवन के संबंध में बौद्धिक समाज में अनेक प्रकार की धारणाएँ और विश्वास प्रचलित हैं। कुछ लोगों का मानना है कि भाग्य प्रमुख है और सब गौण है–'भाग्य फलति सर्वत्र न च विद्या न च पौरुषम।' जबकि दूसरा वर्ग कर्म को प्रधान मानता है–'कर्म प्रधान विश्व रचिराखा। ओ जस करइ सो तस फल चाखा।' 'कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।' एक तीसरा वर्ग भी है जो भाग्य और कर्म को न मानकर ईश्वरीय विधान को सर्वोपरि मानता है। और कहता है कि मनुष्य के हाथ में कुछ नहीं है। करने वाला ईश्वर है। वह जो चाहता है वही होता है– 'राम कीन्ह चाहें सोइ होई।' 'होइहै सोइ जो राम रचि राखा।' हर व्यक्ति अपने जीवनानुभवों से निष्कर्ष निकालता है। मैं अपने जीवन पर दृष्टि डालता हूँ तो पाता हूँ कि सब कुछ ईश्वरीय कृपा पर निर्भर है। भाग्य का निर्माता वही परमेश्वर है। उसी की कृपा से व्यक्ति प्रेरित और कर्मोन्मुख होता है।

उ.प्र. के बाँदा जिला (अब करवी–चित्रकूट) के एक छोटे से गाँव भौंरी में मैं एक साधारण परिवार में पैदा हुआ, जहाँ ऐसी कोई पृष्ठ भूमि नहीं थी जो प्रेरणा या दिशा निर्देश दे सके। उच्चशिक्षा की कोई परम्परा नहीं थी। गाँव में प्राइमरी स्कूल था। अत: अधिकतम चौथी कक्षा तक की व्यवस्था थी। मेरे परिवार में इससे अधिक पढ़ा–लिखा कोई व्यक्ति नहीं था। हमारा अच्छा खाता–पीता परिवार था। दादा जी सम्पन्न थे किंतु पिता जी हम पाँच भाई–बहनों को छोड़कर चले गए। घर में सबसे सयानी माँ थीं। भाइयों में सबसे बड़े भाई की उम्र लगभग बारह–तेरह साल थी। माँ के सामने घना अंधकार। न राह बताने वाला कोई, न सहायता करने वाला। पिता जी ने सारा कारोबार समेट दिया था। जो महिला कभी घर से बाहर नहीं निकली थी, उसी माँ ने छोटी–मोटी दुकानदारी करके पाँच बच्चों के पालने की अकल्पित जिम्मेदारी निभाई। समस्या अति गंभीर थी। बड़े भाई को मजदूरी तक करनी पड़ी। मैं क्रम में तीसरा बेटा था। दो भाई बड़े। एक बहन और भाई छोटे थे। उन दिनों अभाव और गरीबी के सभी रूप देखने को मिले। मेरे दोनों बड़े भाई प्राइमरी शिक्षा भी पूरी नहीं कर पाए, किंतु तमाम मुश्किलों के बीच मेरी पढ़ाई जारी रही। चौथी कक्षा की बोर्ड परीक्षा गाँव से दस मील दूर रैपुरा केन्द्र में हुई। मैं अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हो गया। उसके बाद आगे का रास्ता बंद क्योंकि गाँव में पढ़ने की व्यवस्था नहीं थी। लगभग दो वर्ष खेलने–कूदने अथवा माँ के साथ दुकानदारी में हाथ बँटाने में बीता। उन दिनों की स्थिति 'बिनहिं कहे भल दीनदयाला।' तब लोगों में आत्मीयता, ईमानदारी और उदारता थी।

सन् 1948–49 में गाँव के कुछ प्रमुख लोगों ने मिलकर प्राइवेट मिडिल स्कूल की शुरुआत उसी प्राइमरी स्कूल में की। गाँव के प्रतिष्ठित वरिष्ठ नागरिक पंडित महादेव प्रसाद जी ने मुझे बुलवाया। पूछा तुम तो चौथी पास हो न? मैंने 'हाँ' कहकर सिर हिला दिया। वे बोले–'कल से स्कूल आना। कक्षा छठवीं शुरू हो गई है।' इसे संयोग या ईश्वरकृपा ही कहें कि दूसरे दिन मैं अपनी माँ को बताकर एक कापी, कलम, दवात लेकर स्कूल पहुँच गया। गाँव के ही छ:–सात लड़के थे। सेवानिवृत्त मुंशी देव मुनि शिक्षक नियुक्त हुए। स्कूल लगभग भिक्षाटन पर चल रहा था। तब हमें उसके संचालन–व्यवस्था की कोई जानकारी नहीं थी। भौंरी का यह मिडिल स्कूल उस क्षेत्र में पहला था। अत: आसपास के गाँवों के विद्यार्थी आने लगे। एक कमरे में हास्टल की भी व्यवस्था की गई। दो साल बाद स्कूल सरकारी हो गया। और आठवीं तक स्कूल में तीन शिक्षक हो गए। तब शिक्षक रात में भी स्कूल में पढ़ाते थे। शिक्षक बहुत परिश्रम करते और कराते थे।

ईश्वरीय कृपा से चमत्कार हुआ। आठवीं मिडिल परीक्षा मैं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ। जिले में मेरिट में मेरा स्थान था। इसकी चर्चा स्कूल और गाँव में हुई। शिक्षकों और शुभचिंतक

ग्रामीणों ने माँ से कहा–लड़का होशियार है। पढ़ाई बंद मत करना। आगे पढ़ाना। माँ बेचारी क्या करती। असहाय थी। शिक्षा की महत्ता से अपरिचित, साधन–विहीन थी। गाँव के ही ब्राह्मण परिवार के दो–तीन लड़कों ने गाँव से 13 कि.मी. दूर करवी जाकर पढ़ने की योजना बनाई। मुझसे भी सम्पर्क किया। मैंने कहा साधनों के अभाव में मेरे लिए बाहर जाकर पढ़ना संभव नहीं है। उनमें से एक लड़का शंकरलाल गौतम था। करवी में उसके मामा का घर खाली पड़ा था। उसने कहा–हमारे साथ उसी घर में रहना। खाने–पीने का सामान घर से ले चलना। खाना सब साथ में मिलकर बनाएँगे। ईश्वरीय प्रेरणा से मैं भी करवी पहुँच गया और चित्रकूट इंटर कॉलेज करवी में प्रवेश ले लिया। सन् 1952 में जुलाई में तब भौंरी से करवी का रास्ता कच्चा था। आने–जाने का कोई साधन नहीं। पैदल या बैलगाड़ी। सड़क नहीं थी। गाँव से करवी पैदल आना–जाना। थैलों में सामान भरकर टाँगकर पैदल जाना–आना। आथ से खाना बनाना, बर्तन माँजना–धोना, पानी भरना, साफ–सफाई करना। रोज प्रात: मंदाकिनी में स्नान करना। करवी में चार वर्ष रहना हुआ। नौंवीं परीक्षा में कक्षा में प्रथम आने पर प्राचार्य के हाथों रामचरित मानस की प्रति सहित पुरस्कृत हुआ। इस उपलब्धि से मेरे दूरस्थ रहने वाले चाचा अत्यधिक प्रभावित हुए और आगे पढ़ाने का वायदा किया। हाई स्कूल और इंटर की परीक्षा में उच्च अंकों के साथ द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ। वर्ष 1956 में तब तक करवी में बिजली नहीं थी। अब आगे की पढ़ाई का फिर संकट। तब तक जबलपुर में मेरे बड़े भाई एक व्यापारी के यहाँ नौकरी करते हुए रहने लगे थे। वहीं दूरस्थ चाचा महादेव जी ने मुझे जबलपुर पहुँचाकर कॉलेज में एडमीशन करवाकर अपना वायदा पूरा किया। भाई ने कहा–मैं अपने पास रखकर खाने–पीने की व्यवस्था करूँगा। पढ़ाई का खर्च कैसे चलेगा। एडमीशन की फीस चाचा जी ने दी थी। जुलाई 1956 में।

जबलपुर पहुँचकर कुछ ज्ञान और सम्पर्क बढ़ा। चिंता भविष्य की सवार रहती थी। लोगों के परामर्श से रोजगार कार्यालय में नाम लिखाया और टाइपिंग सीखना शुरू किया। अचानक जनवरी 57 में रोजगार कार्यालय से पत्र मिला। उसके अनुसार केन्द्रीय पुस्तकालय में नौकरी का साक्षात्कार था। साक्षात्कार में कुल तीन प्रत्याशी थे। तीनों के टेस्ट हुए। पहले लिखित फिर टाइपिंग, फिर मौखिक। लेखन और टाइपिंग में मैं श्रेष्ठ रहा। मौखिक भी संतोष जनक था। नवंबर 1956 में राज्य पुनर्गठन के फलस्वरूप नया मध्यप्रदेश बना था। यह केन्द्रीय पुस्तकालय भी उसी समय नागपुर से स्थानांतरित होकर जबलपुर के शहीद स्मारक में स्थापित किया गया था। पुस्तकालय प्रमुख ने मुझे दूसरे दिन 10 बजे आने का निर्देश दिया। मैं समय पर पहुँचा। मुझे काम करने का कहा गया किंतु नियुक्ति पत्र नहीं मिला। उस समय केन्द्रीय पुस्तकालय बड़ी योजना थी। पूरे म.प्र. के जिलों में जिला पुस्तकालय थे। वहाँ पुस्तकें पहुँचाना–वापस बुलाना केन्द्रीय पुस्तकालय का काम था। सैकड़ों केन्द्र थे। हर जिले के कई उपकेन्द्र मुझे पुस्तकालय का काम देखने का कह गया।

तीसरे दिन नियुक्ति–पत्र मिला लिपिक पद का वेतन 62 रु. 50 पैसे मासिक। वार्षिक बढ़ोत्तरी 2.50 पैसे। नियुक्ति पत्र पाकर मैं गद्‌गद था। हर्षोल्लास की कोई सीमा नहीं। लगा जीवन का मार्ग प्रशस्त हो गया। शाम को घर आकर भैया–मम्मी के चरण छुए। हनुमान जी को प्रसाद चढ़ाया। घर में दीवाली मनी।

सुबह 6:30 बजे घर से निकलकर डी.एन. जैन कॉलेज की कक्षा में पहुँचता। 7 बजे से कक्षाए शुरू होतीं। 9:00 बजे के बाद तक चलतीं। मैं 10 बजे घर पहुँचता और ठीक 10:30 बजे पुस्तकालय में। पुस्तकालय से 5 बजे छूटे तो सीधे टाइपिंग क्लास। फिर घर के काम। इतनी व्यस्तता के बावजूद कोई थकान नहीं। गाड़ी चलने लगी थी। सन् 1958 में बी.ए. द्वितीय श्रेणी में उत्तीण हुआ। और जुलाई 1959 को हितकारिणी महाविद्यालय जबलपुर में एम.ए. हिंदी में एडमीशन लिया। वहाँ भी प्रात: कालीन कक्षाएँ थीं। इससे पढ़ाई और नौकरी साथ–साथ चलती रही। पुस्तकालय के कारण अपेक्षित पुस्तकों की सुविधा थी। तब तक मेरे मकान मालिक ने बिजली कनेक्शन न दिया। लालटेन में पढ़ाई हुई।

जून 1960 में एम.ए. उत्तरार्ध परीक्षा का परिणाम आया। मैं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण। प्रावीण्य सूची में स्थान प्रसन्नता और प्रशंसाओं की बरसात। मन बाँसों उछल रहा था। बढ़े हुए मन के कारण शोध करने का संकल्प लिया और पीएच.डी. के लिए पंजीयन कराया। पंजीयन भी हो गया। विषय एकदम नवीन 'हिंदी के आत्मपरक निबंध और निबंधकार।' रु.125/– मासिक स्कॉलर शिप भी स्वीकृत हो गई। फलस्वरूप पुस्तकालय की नौकरी से तो त्यागपत्र दिया ही म.प्र. शासन से इंटर कॉलेज ग्वालियर का नियुक्ति पत्र मिला लेकिन ज्वाइन नहीं किया। पीएच.डी का भूत सवार था। यद्यपि अंचल जी जैसे विद्वान ने कहा भी कि तुम बड़ी गलती कर रहे हो। इसका अनुभव चार साल बाद हुआ। क्योंकि नौकरी के लिए भटकता रहा। 1962 में थीसिस जमाकर दी। स्कॉरशिप बंद। कुछ दिन नवीन दुनिया

अखबार में नौकरी की। रात दो बजे घर लौट पाता था।

इसी बीच 1961 में शादी हो गई और सन् 1962 में एक बेटी का पिता बन गया। जुलाई 1963 में के. एन. जैन कला वाणिज्य महाविद्यालय बागबहरा (जिला रायपुर) छ.ग. के प्राइवेट कॉलेज में हिंदी का व्याख्याता नियुक्त हुआ। कॉलेज उसी वर्ष नया-नया खुला था। पाँच व्याख्याताओं का चयन हुआ। दुर्गा कॉलेज, रायपुर के प्राचार्य चयनकर्ता समिति के प्रमुख थे। हायर सेकेंडरी के प्राचार्य अभी देख-रेख करते थे। कॉलेज की प्रबंधक समिति ने मुझे प्रभारी प्राचार्य बना दिया। कॉलेज की विशेषता यह थी कि वेतन रु. 275/- पूरा शासकीय दर पर। और बाहरी कोई दखलंदाजी नहीं। साल भर पढ़ाई के बाद वार्षिक परीक्षा भी सकुशल संपन्न हुई। सेठ जी प्रसन्न। यद्यपि रिजल्ट 25प्रतिशत रहा।

इसी बीच मेरा चयन लोकसेवा आयोग म. प्र. से हो जाने से मेरा पदांकन विज्ञान महाविद्यालय के हिंदी विभाग में व्याख्याता पद पर हुआ। मैंने 9.11.1964 से साइंस कॉलेज रायपुर में उपस्थिति थी। प्राचार्य थे डॉ. रविप्रकाश जी और विभागाध्यक्ष डॉ. श्याम सुंदर लाल दीक्षित। कॉलेज में कलासंकाय में चार विषय थे- हिंदी, अंग्रेजी, इतिहास और अर्थशास्त्र। इसी बीच जबलपुर वि.वि. ने मुझे पीएच.डी शोध उपाधि स्वीकृत की किंतु मैं दीक्षांत समारोह में शामिल न हो सका।

रायपुर में सबसे उल्लेखनीय घटना थी विवेकानंद आश्रम में आयोजित रामचरित मानस के पात्रों पर आयोजित परिसंवाद। छ.ग. का सबसे प्रतिष्ठित आध्यात्मिक बौद्धिक केन्द्र। स्वामी आत्मानंद आश्रम के सर्वेसर्वा। परिसंवाद में शिक्षा जगत के जाने-माने दिग्गज थे। मैं नया-नया आया था। नवंबर-1964 में आया और जनवरी 1965 में परिसंवाद। सब पात्र बुक हो चुके थे। मैं बालि पर बोला। मेरा वक्तव्य सर्वोपरि होने से तालियों की गड़गड़ाहट और दूसरे दिन प्रात: अखबारों में चर्चा। फलत: मेरी गणना अच्छे वक्ता के रूप में होने लगी। वहीं मेरी तीन पुस्तकें प्रकाशित हुईं और बख्शी जी, मुकुटधर पांडेय, डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र, प्यारेलाल गुप्त जैसे वरिष्ठ विद्वानों से संपर्क हुआ। अंचल जी और डॉक्टर राजेश्वर गुरु मेरे प्राचार्य रहे। कॉलेज पत्रिका के सम्पादन का दायित्व मुझ पर रहा। गाँधी शताब्दी का आयोजन ऐतिहासिक रहा। अखबारों में लेखों का नियमित प्रकाशन होने लगा। 'छत्तीसगढ़ का साहित्य और उसके साहित्यकार' आधुनिक काव्य : संदर्भ और प्रकृति तथा 'हिंदी साहित्य में व्यक्तिवादी निबंध और निबंधकार' पुस्तकें वहीं प्रकाशित हुईं। सन् 1971 में। रचना प्रकाशन इलाहाबाद से। भूमिका लिखी बख्शी जी, अंचल जी और प्रमोद वर्मा ने।

फरवरी 1971 को सहायक प्राध्यापक के रूप में मेरा पदांकन राजगढ़ कॉलेज के हिंदी विभाग में हुआ। राजगढ़ स्टेट थी किंतु कस्बे से भी बदतर। न होटल, न धर्मशाला। पाँच-छ: हजार की बस्ती। दो मोहल्ला-किलर और पुरा। हिंदी में स्नातकोत्तर कक्षाएँ थीं। बाजार की हालत यह कि बच्चों की पुस्तकें, जूता और ड्रेस आदि उज्जैन या भोपाल से मँगाना पड़ता था। हफ्ते में एक दिन बाजार लगता था। कॉलेज में छात्र-छात्राओं की संख्या पर्याप्त थी। कला-वाणिज्य, विज्ञान के संकाय थे। सवारी के नाम पर न रिक्शा, न ताँगा। सामान-बोरियों में इधर-उधर ले जाना पड़ता था। लॉ की परीक्षा में नकल खुलेआम थी। कई उद्दंड परीक्षार्थी थे। लॉ का परीक्षा केन्द्र था। राजगढ़ मुझे दो बार जाना पड़ा। पहले सहायक प्राध्यापक के रूप में फिर प्राध्यापक के रूप में पदोन्नत होकर। इस दृष्टि से राजगढ़ मेरे लिए सुखद रहा। वहीं सन् 1971 में पुत्र प्राप्ति हुई थी। प्राध्यापक पद पर पदांकन सन् 1978 में हुआ था। नकल-विरोध के कारण छात्रों का कोपभाजन बनना पड़ा। राजगढ़ अधिक दिन रहना नहीं हुआ। पहली बार सन् 1971 फरवरी में गया और अगस्त 1972 में स्थानान्तरित होकर टीकमगढ़ महाविद्यालय पहुँच गया। तब ट्रक में सामान और बच्चों सहित यात्रा करता था। पहली बार तो भर बरसात में राससेन के पास नाला में एक ट्रक फँसा होने से एक दिन और दो रात रास्तें में रुकना पड़ा। उस सुनसान अँधेरी स्थिति की कल्पना ही की जा सकती है। साथ में तीन छोटी-छोटी बच्चियाँ और सात महीने का बच्चा। ड्राइवर ने रहने-खाने की व्यवस्था की।

टीकमगढ़ भी दो बार रहना पड़ा। पहली बार सन् 1972 से सन् 1978 तक। और दुबारा सन् 1996 में प्राचार्य के पद पर। सन् 1978 से 1978 तक छ: वर्ष का समय मेरे लिए साहित्यिक शैक्षणिक और सामाजिक तथा शोध की दृष्टि उपलब्धिपूर्ण थे। बहुत कम समय में साहित्यकारों से संपर्क हुआ। मकान मालिक पी. एन. खरे लोकप्रिय, सामाजिक और सुपरिचि शिक्षक थे। उनके कारण बी. टी. आई. सहित अन्य विद्यालयों के शिक्षक मित्र बने। अनेक साहित्यिक कार्यक्रम आयोजित किए। 'ओरछा टाइम्स' के संपादक हरगोविंद त्रिपाठी के कार्यालय में शाम को प्राय: रोज बैठक होती थी। वह शिक्षकों, साहित्यकारों, बुद्धि जीवियों का केन्द्र था। हरगोविंद त्रिपाठी 'पुष्प' पहिले शिक्षक

थे। और 'पुष्प' नाम से जाने जाते थे। कई बार वहीं योजनाएँ बनती थीं। कॉलेज बड़ा था। भवन भी भव्य और तालाब के निकट अत्यंत मनोरम था। तालाब कमल पुष्पों और नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव से शोभित था। कॉलेज के दो भवन थे। विज्ञान भवन और कला भवन। कॉलेज में प्राय: अनेक गतिविधियाँ होती रहती थीं। संजोजक मुझे ही बनाया जाता था। मेरी लोकप्रियता शीर्ष पर थी।

टीकमगढ़ रहकर पाँच शोधार्थियों को पी.एच.डी की उपाधि दिलाई। इसके पूर्व वहाँ कोई पी. एच. डी. नहीं था। वर्षों तक ओरछा में केशव-जयंती समारोह का आयोजन, संयोजन-संचालन किया। देश के दूर-दूर के विद्वानों को आमंत्रित कर आयोजन को अखिल भारतीय बनाया। पहिले वह टीकमगढ़ तक सीमित था। ओरछा में केशव शोध संस्थान की स्थापना की पहल मैंने की। फलत: तत्कालीन मुख्यमंत्री जी ने आयोजन में संस्थान-स्थापना की स्वीकृति की घोषणा की। टीकमगढ़ में कला परिषद की स्थापना कर कई कार्यक्रम आयोजित किए। 'बुन्देली : एक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन' और मानस-मनीषा का प्रकाशन कराया। पं. कृष्ण किशोर द्विवेदी की पृष्ठिपूर्ति पर अभिनंदन ग्रंथ समर्पित कराया।

टीकमगढ़ में ही मेरी सर्वाधिक चर्चित और महत्त्वपूर्ण कृति 'बुन्देलखंड के अज्ञात रचनाकार' की बुनियाद पड़ी। हुआ यह कि कॉलेज के एक ढेर में हस्तलिखित पुस्तक देखने को मिली। घर लाकर धीरे-धीरे पढ़ा। बाइंड कराया पता चला कि जिला पुस्तकालय में भी कबाड़ी को बेचने के लिए तमाम पुराने कागजात पड़े हैं। मैंने पुस्तकालयाध्यक्ष से संपर्क कर पुराने कागजात खँगालना शुरू किया। उस कचरे से मैंने 150 हस्तलिखित ग्रंथ और पुरानी पत्रिकाएँ छाँटकर रजिस्टर तैयार कराया। पढ़ने पर लगा कि इसमें तो मूल्यवान सामग्री है। पुष्प जी से चर्चा कर कई लेख लिखे। पुष्प जी ने 'ओरछा टाइम्स' में छापा, जिनकी चर्चा दूर-दूर तक विद्वानों में हुई। ओरछा के केशव जयंती कार्यक्रम की भी चर्चा की गई। फिर तो मैं पांडुलिपियों की खोज अध्ययन में जुट गया। इस खोज में लगभग बीस-पच्चीस वर्ष लग गए लेकिन मूल्यवान ग्रंथ तैयार हो गया।

दुर्भाग्य यह कि तमाम पत्राचार अनुनय-विनय के बाद कोई संस्थान या प्रकाशन छापने को तैयार न हुआ। सुख के सिंहासन पर विराजे नामी-गिरामी विद्वानों ने भी उपेक्षा की। आखिर अपना पैसा लगाकर जब ग्रंथ छपवाकर वितरित किया। पाठक मंच पर भी पहुँचा। तब वाहवाही का पहाड़ लग गया। विद्वानों ने माना कि यह साहित्येतिहास लेखन की नई सामग्री है।

सन् 1978 जून में प्राध्यापक के रूप में पदोन्नत होकर मैं टीकमगढ़ से राजगढ़ दुबारा पहुँचा था। किंतु बहुत थोड़े दिनों बाद अगस्त सन् 1980 में महाराज कॉलेज छतरपुर में प्राध्यापक पद पर पदस्थ किया गया। छतरपुर का पदांकन मेरे जीवन का सर्वोत्तम अवसर था।

महाराज कॉलेज इस क्षेत्र का प्राचीनतम और बड़ा महाविद्यालय है। अब तो वह विश्वविद्यालय बन चुका है। यहाँ साहित्यिक, सामाजिक गतिविधियाँ संचालित करने, सहभागिता करने का पर्याप्त अवसर मिला। यह बुन्देलखंड का केन्द्र स्थल है और मेरी जन्मभूमि के निकट है। भाषा-बोली-संस्कृति लगभग एक जैसी है। छतरपुर में जो मुख्य साहित्यिक कार्य मेरे माध्यम से हुए वे इस प्रकार हैं -

■ सर्वप्रथम बुन्देलखंड कला-साहित्य संस्कृति परिषद का गठन किया और उसके माध्यम से दो बुन्देली समारोह बृहतस्तर पर आयोजित हुए। प्रथम बुन्देली समारोह सन् 1981 में हुआ जिसमें बुन्देलखंड तथा बाहर के सैकड़ों विद्वानों ने भागीदारी की। इतना बड़ा साहित्यिक आयोजन पहले वहाँ कभी नहीं हुआ था। मुख्य अतिथि थे म. प्र. के खाद्य मंत्री और प्रख्यात कवि बालकवि बैरागी। दूसरा बुन्देली समारोह सन् 1982 में हुआ जो गतवर्ष से भी बड़ा था। मुख्य अतिथि थे मुख्य मंत्री माननीय अर्जुन सिंह जी, जो सपत्नीक पधारे थे। दो दिवसीय इस आयोजन में 'विन्ध्यालोक' का प्रकाशन हुआ। और गोष्ठियों के साथ कला प्रदर्शनियाँ एवं काव्य-पाठ आयोजित हुए। साहित्यकारों, कलाकरों की बड़ी संख्या चमत्कृत करने वाली थी। उस समय मुख्यमंत्री के समक्ष तीन माँगें रखी गईं।

1. छतरपुर में छत्रसाल शोध संस्थान की स्थापना हो। 2. छत्रसाल की प्रतिमा लगाई जाए, 3. छत्रसाल पर डाक टिकिट जारी हो। समय के साथ छत्रसाल स्मारक भवन बना और मुख्य चौराहे पर छत्रसाल की विशाल घोड़े पर सवार प्रतिमा स्थापित हुई।

■ छतरपुर निवासकाल की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना महामहिम राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह का महाराजा महाविद्यालय के शताब्दी कार्यक्रम में पधारना है। मैं और मेरे सहयोगी डॉ. राधावल्लभ शर्मा पुराने ग्रंथ और पत्रिकाएँ देख रहे थे। तभी पता चला कि इस कॉलेज की शुरुआत सन् 1886 में महाराज विद्यालय के रूप में हुई थी जो सन् 1986 में अपना स्थापना के

सौ वर्ष पूरे करेगा। यह जानकारी तत्कालीन प्राचार्य को दी। उन्होंने रुचि लेकर योजना का आकार दिया। नागरिक समिति गठित हुई। जिसकी अध्यक्षता तत्कालीन सांसद विद्यावती चतुर्वेदी बनीं। सचिव प्राचार्य जी और संजोजक मुझे बनाया गया। विद्यावती जी के प्रयास से राष्ट्रपति जी पधारे। वह अभूतपूर्व ऐतिहासिक कार्यक्रम था जिसका संयोजन और संचालन का सौभाग्य मुझे मिला। महाविद्यालय के पुस्तकालय भवन का उद्घाटन और शताब्दी हाल का निर्माण उसी की देन हैं। इस अवसर पर शताब्दी स्मारिका का सम्पादन-प्रकाशन भी हुआ।

■ छत्रसाल स्मारक ट्रस्ट की ओर से 'राष्ट्र गौरव' पत्रिका का वार्षिक प्रकाशन शुरू हुआ। मैं भी ट्रस्ट का सदस्य तथा सचिव बनाया गया। पत्रिका के 'छतरपुर विशेषांक' छत्रसाल विशेषांक 'स्वतंत्रता-संग्राम विशेषांक' और 'बुन्देली बाँकुरे' शीर्षक से चार विशेषांक प्रकाशित किए गए जो शोध सामग्री की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व के हैं।

■ सन् 1986 में ही मैथिलीशरण गुप्त विद्यालय में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की प्रतिमा स्थापित की गई। यह उनकी देश में लगने वाली प्रथम प्रतिमा थी। यह गुप्त जी का शताब्दी वर्ष था। आयोजन में तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री मोतीलाल वोरा ने प्रतिमा का अनावरण किया। इस आयोजन में भी मेरी प्रारंभ से ही प्रमुख भूमिका थी।

■ महाराजा कॉलेज में रहते हुए मुझे केशव अनुसंधान केन्द्र ओरछा का प्रभारी बनाया गया। छतरपुर में ही मैंने कई वर्ष म. प्र. साहित्य अमादमी द्वारा संचालित पाठकमंच का दायित्व निभाया।

■ सन् 1991 में डिग्री कॉलेज महाराजपुर में प्राचार्य पद पर पदांकित हुआ, और लगातार पाँच वर्ष पदस्थ रहा। वहीं से मुझे स्नातकोत्तर प्राचार्य बनाकर स्नातकोत्तर महाविद्यालय टीकमगढ़ में पदस्थ किया गया। अप्रैल 1996 को मैंने कार्यभार ग्रहण किया। तब स्वास्थ्य खराब चल रहा था। टीकमगढ़ में मेरा यह दुबारा पदांकन था। अंततः 31 दिसंबर 1996 को मैं यहीं से सेवानिवृत्त होकर छतरपुर नगर का स्थायी निवासी बना।

■ सन् 1982 में ही मैंने हाउसिंग बोर्ड का एक मकान सरकारी ऋण लेकर क्रय कर लिया था। जिसकी किस्त अनेक वर्षों तक चुकाई। छतरपुर में ही मेरी तीनों बेटियों और एक बेटे का विवाह सानंद सम्पन्न हुए। इसी अवधि में लगातार 6 वर्षों तक दैनिक भास्कर के छतरपुर अंक में प्रतिदिन खरी-खोटी शीर्षक से छः पंक्तियों की कुंडलियाँ छपती रहीं। उन्हें बड़ी लोकप्रियता मिली।

■ यहीं रहकर मेरी कई पुस्तकें प्रकाशित हुईं जिनकी सूची संलग्न है। छतरपुर में सपरिवार ससम्मान सक्रिय निवास कर अस्वस्थता और वृद्धावस्था के कारण 80 वर्ष की आयु में घर द्वार बेच कर बेटे के पास भोपाल जाना पड़ा। सोचा था शेष जीवन स्थायीरूप से वहीं रहेंगे किंतु लड़के की नौकरी ट्रांसफर वाली है। हर तीन वर्ष में स्थान बदलने की यातना सहनी पड़ती है। सब कुछ बदल जाता है।

ईश्वर की कृपा से अभी लिखना-पढ़ना-छपना चल रहा है-

सबहिं नचावत राम गोसाईं।

भोपल में एक बड़े भव्य कार्यक्रम में हिंदी भवन के अभिनंदन ग्रंथ सौंपकर अभिनंदित किया गया। आयोजन की सारी व्यवस्था आदरणीय कैलाशचंद्र पंत जी की थी। उस समय की साहित्य साधकों की उपस्थिति जीवन की अविस्मरणीय घटना है। फिलहाल सतना में दिन बीत रहे हैं।

एच. आई. जी.-124, भरहुत नगर,
सतना-485001 (म.प्र.)
मो.-9425376413

सूचना

अक्षरा के सम्माननीय पाठकों, सदस्यों से विनम्र आग्रह है कि पते के साथ अपना मोबाइल नंबर भी अवश्य भेजें। ताकि पत्रिका आपको पहुँचने में विलंब न हो।

पुण्या

– शकुन्तला कालरा

जन्म – 11 सितंबर 1946।
जन्म स्थान – बक्खर (पाकिस्तान)।
रचनाएँ – चउअन पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – हिंदी अकादमी सम्मान सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

मैं अस्पताल से सीधा घर आया। माँ बेताबी से मेरा इंतजार कर रही थीं। स्वस्थ हृष्ट-पुष्ट पोते की सुखद कल्पना में डूबी माँ को कन्या के जन्म की खबर ने स्तब्ध कर दिया। वे तो मानो ऊपर के झूले से गिरी हों अथवा किसी ने उन्हें दु:खद दुर्घटना का अप्रिय समाचार दे दिया हो। पोते की जगह पोती को देखने वह अस्पताल नहीं गईं।

उस दिन माँ की आँखों में आँसू थे। कुल के वंशधर के लिए कराए गए उसके सारे पूजा-पाठ निरर्थक हो गए थे। यज्ञ और हवन निष्फल। प्रसव से पूर्व ही माँ ने गाँव से शुद्ध गाय का घी मँगा कर आटा, सूजी और गोंद मँगाकर, मेवे और खोए के लड्डू बाँधकर कनस्तर तैयार कर दिया था। सुदर गोल-मटोल गोरे-चिट्टे पोते की तीव्र लालसा लिए वह बहू को पलंग से नीचे पाँव न रखने देती। अशक्त हाथों में एक अजीब-सी शक्ति आ गई थी। बड़ी स्फूर्ति से घर के सारे काम स्वयं ही कर लेती।

नियत समय पर उनकी इच्छा के विपरीत लक्ष्मी रूपा पुण्या का जन्म मेरी बेटी के रूप में हुआ। अपनी प्रतिछवि को पुत्र रूप में न पाकर मैं भी उदास हो गया। शशि बहुत कमजोर और थकी लग रही थी प्रसूति के दर्दभार से और कुछ माँ जी के डर से, जिन्हें वह पोता न दे पाने का स्वयं को कसूरवान मान रही थी। मेरी उदासी को वह भाँप न ले, इसलिए बिना कुछ बोले ही घर चला आया। मुझे उदास देखकर उसकी रोती आँखों भी अजब-सी उदासी उभर आई थी।

मैं अपने कमरे में आकर बिस्तर पर लेट गया। सारी रात की थकावट के बाद भी मुझे नींद नहीं आई। मेरी नींद उड़ गई थी। मैं भी करवटें बदलता रहा।

लेटे-लेटे मेरी निगाह अचानक दीवार पर टँगे चित्र पर गई। सरस्वती, लक्ष्मी और वैष्णवी का संयुक्त चित्र था। मुझे लगा यही शक्ति तो मेरे यहाँ साकार रूप में आई है। मैं उठा और नहा-धोकर दोपहर का खाना लेकर अस्पताल की ओर चल पड़ा।

शशि की बगल में संगमरमर की तराशी सुकोमल मूर्ति को देखकर मैं अभिभूत हो उठा। माँ, बेटी दोनों की मासूमियत देखकर मेरा हृदय प्यार से भर उठा। मैंने बेटी का मस्तक चूम लिया। दुग्ध-फेन की तरह गोरी-गोरी सुंदर-सुकुमार बेटी के रूप में मेरा स्वर्ग धरती पर उतर आया था। उसे मैंने अपनी बाँहों में भर लिया और एक बार फिर जी भर कर चूम लिया। शशि मुस्कुरा दी, उसने मेरी ओर देखा और पूछा, 'किस पर है?'

'हू-ब-हू तुम्हारी तरह, वही रंग, वही रूप, वही नक्श।'

'और तेवर? वह तो तुम्हारे हैं न?' कहती-कहती शशि शरारत से हँस पड़ी। वही निर्मल निश्छल हँसी, पर बहुत थकी और कमजोर-सी।

मेरे अन्तस का वात्सल्य आँखों से बहकर नन्हें कपोल भिगोने लगा। मुझे लगा मेरे कई जन्मों का संचित पुण्य मुझे बेटी के रूप में मिला है। मैंने वहीं उसका नाम 'पुण्या' रख दिया और उसे शशि की बगल में लिटा दिया।

माँ बहुत दिन भगवान् से रूठी रही। वह बहुत दिन तक पूजा-घर में नहीं गई। तुलसी को जल नहीं चढ़ाया न दिया जलाया और न सूरज देव को अर्घ्य दिया। उनकी झोली में पोते की जगह पोती को डाल कर भगवान अब पूजनीय नहीं रहे थे। वह अक्सर बड़बड़ाती रहती और हम दोनों कनखियों से एक-दूसरे की ओर देखकर मुस्कुरा देते। धीरे-धीरे मैं जान बूझकर पुण्या को माँ की गोद में डाल देता। वह अपनी बाल-सुलभ किलकारियों से दादी माँ के स्नेह को भी पा गई।

पुण्या बड़ी होने लगी। अपने नाम के अनुरूप ही वह हम सबके पुण्यों का साकार रूप थी। बचपन से ही शांत और संतुष्ट पुण्या माँ और दादी के आसपास ही मँडराती रहती। और बच्चों की

तरह उसे घर से बाहर खेलना कभी अच्छा नहीं लगता। और बच्चों की तरह वह भूख-प्यास में भी रोती-चिल्लाती नहीं थी। बच्चों जैसी जिद या नखरे उसके स्वभाव में ही नहीं थे। किसी रंग की कोई भी पोशाक उसे पहना दो। चप्पल, जूता, सैंडिल, बूट जो चाहे सुविधा से पहना देते, उसने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

वह सदा अपने चचेरे भाई नील के साथ घर में ही खेलती। नील जब भी बाहर जाता, वह घर पर ही रहती। नील की आस-पड़ोस से शिकायत आती। वह अक्सर बच्चों की पिटाई कर देता। घर-बाहर सभी उसकी शरारतों से दु:खी थे।

नील पुण्या से दो महीने बड़ा था। दोनों अब दो वर्ष के थे। हम जब भी कभी लॉन में बैठते, नील और पुण्या भी हमारे पास ही खेलते रहते। मैं दोनों के स्वभाव को ऑब्जर्व करता। जहाँ नील का मनोरंजन टी.वी. वीडियो गेम तथा बैटरी के महँगे-महँगे कम्प्यूटर इंडस्ट्री द्वारा विकसित खिलौनों ने किया, वहीं पुण्या ने दादी से कहानियाँ सुनकर उन्हीं के साथ बाहर फुलवारी में तितलियों के पीछे भागते-भागते बिताया।

नील अक्सर उससे झगड़ा करता। जब वह बहुत तंग करता तो वह माँ के गले मे बाँहे डालकर झूलने लगती और कहती-'देखो न मम्मी। नीलू भैया ने फिर हमाली खिलौनों की टोकली उलट दी है।' वह उन्हें समेट कर फिर टोकरी में रख देती। नील फिर आता और चुपके से उसकी टोकरी फिर पलट कर उसे खूब चिढ़ाता और ताली पीटता हुआ भाग खड़ा होता। वह मेरी गोद से उतर कर फिर अपने खिलौने समेटने लगती, पर परेशान न होती। उसकी सहनशीलता हमें चौंका देती। शशि जब आलू-प्याज की टोकरियाँ लेकर बाहर सब्जी आदि काटने बैठती तो नील अपने स्वभाव के मुताबिक टोकरियाँ उलट कर सब्जियाँ बिखेर देता। बगीचे के फूल टहनियों सहित तोड़कर मसल डालता। पुण्या उन पंखुड़ियों को उठाकर अपनी झोली में डाल लेती। इसी तरह बिखरे आलू-प्याज भी उठाकर अलग-अलग टोकरियों में करीने से भर देती। शायद यही इसका खेल होता। मैं उसे उठाकर चूम लेता। नील अपनी छोटी ट्राइसाइकिल पर बाहर निकल जाता और वह वहीं मेरी टाँगों पर झूलकर पता नहीं क्या खजाना पा जाती। मैं अक्सर बाहर कुर्सी पर बैठा उसे अपनी टाँगों में झुलाता।

जो दहेज के रूप में आपने दिव्य और मुझे पाँच लाख का चैक दिया है, उसे हमने आपके अकाउंट में जमा करवा दिया है। पत्र के साथ ही रसीद भी रखी है। मेरी नौकरी के पैसे को आपने बेटी का धन क्यों कहा? क्या मैं आपका बेटा नहीं बन पाई? आपसे दूर जाना मेरी विवशता है। दिव्य के भविष्य को देखते हुए मुझे यह फैसला लेना पड़ा। एक वर्ष की तो बात है। हम शीघ्र ही मिलेंगे। . . .

समय का रथ आगे बढ़ता गया। स्कूल की पढ़ाई पूरी करते ही नील और पुण्या की दिशाएँ अब अलग-अलग हो गईं। पिछली हर परीक्षा की तरह इस बार बोर्ड की परीक्षा में भी पुण्या नील से बहुत आगे थी। उसे आई.आई.टी. दिल्ली में सीट मिल गई और ढेर सी केपीटेशन फीस देकर नील को भी बेंगलौर पढ़ने के लिए भेज दिया गया। चार साल की डिग्री लेने में उसने छ: साल लगा दिए और ढेर-सा पैसा भी, कुछ पढ़ाई पर और बाकी मौज मस्ती में। भाई-साहब नील की हरकतों से भीतर ही भीतर बहुत दु:खी रहते। कभी-कभी उनकी धुँधली-बुझी आँखों में मैं झाँकता तो वहाँ विवशता के सिवा कुछ भी न पाता। अकेले बैठकर वे कभी रो देते, जिसे कोई देख न पाए। नील में जिम्मेदारी का अहसास बिल्कुल भी नहीं था। भाई-साहब की छूट या उनकी अवशता ने उसे उच्छृंखल बना दिया था।

पुण्या अब आई. आई.एम. अहमदाबाद से एम. बी. ए. करके आ गई थी। उसकी प्लेसमेंट यहीं दिल्ली में ही हो गई थी। उम्र के साथ-साथ उसमें शालीनता और मधुरिमा और भी बढ़ गई थी। पुण्या जैसा मर्यादा-भाव-नील में कहीं भी नहीं था। नई-नई ड्रेस में नील पानी की तरह पैसा बहाता। भाई-साहब मूक और लाचार बने निर्विकार भाव से सब देखते और सहते। इसके सिवा चारा भी क्या था? भाभी भी अपने बुढ़ापे के दुर्दिनों को अपनी तीसरी आँख से स्पष्ट देख रही थीं। अक्सर उनकी आँखों में मजबूरी के आँसू होते। उसके जन्म के समय ही वे बहुत खुश हुए थे शायद।

पुण्या नई ड्रेस पर फिजूल खर्ची करने के पक्ष में कभी नहीं रहती। नौकरी के बाद भी वह कपड़े पर पैसा कम ही खर्च करती। वह अक्सर साड़ी ही पहनती। साड़ी में असली सौम्यता और भी द्विगुणित हो उठती। साड़ी उसका प्रिय पहनावा था या उसकी समझदारी? शायद दोनों ही। माँ जब भी उसे दो-चार अच्छे सूट सिलवाने के लिए कहती तो वह हमेशा तर्क देती, 'माँ, बाद में ये सूट कौन पहनेगा? रोज तो फैशन बदलते रहते हैं। कभी लम्बे तो कभी ऊँचे। कभी ढीले तो कभी चुस्त। फिजूल में इतनी सिलाई। साड़ी तो एवरग्रीन है माँ। हमारा भारतीय पहनावा। कोई भी साड़ी पहनो, ब्लाऊज अपनी फिटिंग का होना चाहिए बस।' नई साड़ी भी वह कम ही खरीदती। वह

अक्सर माँ की साड़ी के साथ का मैचिंग ब्लाऊज बनवाती और बस उसे पहनकर उसकी शालीनता और भी निखर-निखर आती।

पुण्या मेरे पुण्यों की तरह ही बढ़ रही थी। उसकी शादी का ख्याल अब स्वाभाविक था। उसके विछोह की कल्पना मात्र से हृदय में एक हूक सी उठती। कितना कठिन होता है अपने हृदय के टुकड़े को दूसरे को सौंपना? बेटी की करुण विदाई की कल्पना मात्र से मैं भीतर ही भीतर काँप जाता। पर एक दिन मौका पाकर हमने पुण्या से इस विषय पर बात की तो वह भी हमारी ही तरह उदास हो गई। उसने जो तर्क दिया, वह उस जैसी बेटी ही दे सकती है। पुण्या ने कहा, 'आपने मेरी पढ़ाई पर सारा पैसा खर्च कर दिया है। आपका बुढ़ापा किसके सहारे सुरक्षित छोड़ा जा सकता है? आपको सँभालने वाला कौन होगा? बेटा या पैसा? आपके पास तो दोनों चीज़ें नहीं हैं। कौन आपका ख्याल रखेगा? पैसा होगा तो घर में बाकी लोग आपका ख्याल भी कर लेंगे। मैंने तय किया है, कि अभी दो साल मैं शादी नहीं करूँगी, शादी करूँगी भी तो अत्यंत सादगी से। कोई फिजूलखर्ची नहीं।'

पुण्या की शादी मैं धूमधाम से करना चाहता था। इतना पैसा मैंने संभाल कर रख छोड़ा था। बुढ़ाने के लिए प्रोविडैंट फंड का सहारा काफी था। पुण्या ही मेरी बेटी और वही मेरा बेटा भी था। मैं अपने सारे शौक उसी से पूरे करना चाहता था। रंग-बिरंगी रोशनी से पूरा घर जगमगाना चाहता था। चारों ओर रोशनी की गंगा में नहाती कीमती लाल सुनहरी साड़ी में आभूषणों से सजी गुड़िया के रूप में पुण्या को देखना चाहता था। शशि का भी यही सपना था। पर पुण्या की जिद के आगे हमें झुकना पड़ा।

पूरे दो वर्ष बाद सादे समारोह में अत्यंत आत्मीयों की उपस्थिति में पुण्या का विवाह सम्पन्न हो गया। उस दिन फिर रोया। पहली बार मैं तब रोया था जब पुत्र की तीव्र लालसा लिए पुण्या मेरे यहाँ बेटी के रूप में आई थी। उसके जन्म के समय ही डॉक्टर ने मुझे अलग बुलाकर बता दिया था कि शशि अब पुन: माँ नहीं बन सकेगी। उसकी डिलीवरी बड़ी जटिल रूप ले गई थी। और आज मैं फिर रोया था, जब वह मेरे घर से जा रही थी। उसकी विदाई में कौन नहीं रोया था? पुण्या के बिना घर के अस्तित्व की कल्पना ही बेइमानी लग रही थी। वह हमारे नेत्रों का जल और हृदय की धड़कन थी। हम सब उसे एयरपोर्ट छोड़ने गए। वह अपनी पसंद के साथी दिव्य के साथ अमरीका जा रही थी। उसने चलते-चलते कहा था, 'आप लोग रोना नहीं और न ही उदास होना। मैं रोज आपको फोन करूँगी अपना ख्याल रखना। और पापा ससुराल जाती बेटी की एक इच्छा जरूर रख लेना। मेरी फोटो के पीछे एक लिफाफा पड़ा है, उसे देख लेना। दूर तक हाथ हिलाते-हिलाते वह विदा हो गई।

पूरे रास्ते हम सोचते आए, क्या होगा उस लिफाफे में? पत्र? पर ऐसा क्या लिखा होगा उस पत्र में, जो वह हमें कह नहीं सकती थी। तरह-तरह की आशंकाओं से घिरे हम घर आए। टेबल पर पुण्या की फोटो पड़ी थी। सजीव मुस्कुराती पुण्या जैसे स्वयं हमसे बात कर रही थी। मैंने लिफाफा उठाया और पत्र जल्दी से पढ़ना शुरू किया-

प्यारे मम्मी-पापा,

काश मैं बेटा होती और तब आप मुझे यूँ विदा न करते। मुझे आपकी बहुत याद आएगी, पर मैं आपकी पुण्या हूँ और पुण्य सदा साथ रहते हैं। मैं सदा आपके साथ हूँ। दादी माँ कहती हैं पुण्य दिखाई नहीं देते पर समय पर प्रकट होते हैं। आप मुझे भी सदा अपने पास पाओगे। मैं आपको रोज फोन करूँगी। आप उदास न होना। मेरी चिंता न करना। आपने मुझे पढ़ा-लिखा कर आत्म-निर्भर बना दिया है।

और हाँ! जो दहेज के रूप में आपने दिव्य और मुझे पाँच लाख का चैक दिया है, उसे हमने आपके अकाउंट में जमा करवा दिया है। पत्र के साथ ही रसीद भी रखी है। मेरी नौकरी के पैसे को आपने बेटी का धन क्यों कहा? क्या मैं आपका बेटा नहीं बन पाई? आपसे दूर जाना मेरी विवशता है। दिव्य के भविष्य को देखते हुए मुझे यह फैसला लेना पड़ा। एक वर्ष की तो बात है। हम शीघ्र ही मिलेंगे।

और पापा! दिव्य बहुत ही अच्छे हैं। यह फैसला मेरा ही नहीं दिव्य का भी है। उसने चैक लेने से साफ इंकार कर दिया था। उसका कहना है, कि बुढ़ापे में बेटे की कमी के साथ पैसे की कमी बड़ी कष्ट कर होती है। अत: आप मन पर कोई बोझ न रखें। नील भैया का ख्याल रखना।

आपकी पुण्या

मैं अभिभूत-सा कभी पत्र, कभी पुण्या की तस्वीर की ओर देखता और भगवान से यही कहा, 'पुण्या जैसी बेटी मुझे हर जन्म में देना।'

एन.डी.-57, पीतमपुरा,
दिल्ली-110034
फो. 27314566

अपनी ही कैद में

– संतोष श्रीवास्तव

जन्म – 23 नवंबर।
जन्म स्थान – मँडला (म. प्र.)।
शिक्षा – एम.ए., बी.एड।
रचनाएँ – विभिन्न विधाओं में बाइस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – महाराष्ट्र साहित्य अकादमी पुरस्कार सहित अनेक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सम्मानों से अलंकृत।

फोन पर जन्मदिन की बधाई देते हुए पूजा ने कहा 'एक बात कहूँ रेशमा, तुम तो लेखिका हो। क्या तुम पापा के संघर्ष भरे जीवन का दस्तावेज तैयार करोगी?'

'मुझे क्यों इंकार होगा पूजा, लेकिन उसके लिए तुम्हारे पास 8, 10 दिन रहना पड़ेगा।'

'यह बात तो मैं कहने ही वाली थी। रानीखेत के देवदार और बलूत के पेड़, बर्फीली चोटियाँ, हरे भरे गोल्फ के मैदान। अच्छा लगेगा तुम्हें यहाँ।'

'करती हूँ प्लान, शीघ्र ही बताऊँगी तुम्हें।'

'जल्दी आ जाओ रेशमा, मुझसे पापा की पीड़ा, अवसाद देखा नहीं जा रहा है। वे तुम्हें बताएँगे तो उनका दिल हल्का होगा।'

फोन रखते हुए पूजा की आवाज थरथरा उठी। नहीं आज कोई भी नकारात्मक, दुखी करने वाली बात नहीं सोचूँगी। आज मेरा जन्मदिन है। इतने सारे मैसेज, फेसबुक पर बधाइयाँ, फोन जैसे आज मैं सेलिब्रिटी हो गई।

फिर भी पूजा की थरथराती आवाज को भुला पाना मेरे लिए कठिन था। मैं याद करने लगी पूजा की सुंदर शक्ल, उतनी ही सुंदर उसकी छोटी बहन आरती। पूजा से मेरी पहचान कॉलेज के दिनों में हुई थी। हम दोनों ने एक साथ कॉलेज में प्रवेश लिया था। पूजा कुशाग्र, चंचल। मैं कल्पनाशील, गंभीर। फिर भी दोस्ती हो गई। अपने फ्री पीरियड्स में हम लोग कॉलेज के पिछवाड़े लॉन पर बैठकर भविष्य सँजोते। पूजा की इच्छा वैज्ञानिक बनने की थी और मेरी लेखिका। मेरे कंधे से झूलते शांतिनिकेतनी बैग में कोर्स की किताबों के अतिरिक्त अज्ञेय, प्रेमचंद, दिनकर की किताबें होतीं।

'रेशमा मैं अमेरिका जाऊँगी और वैज्ञानिक बनूँगी, मैं उन चीजों पर शोध करना चाहती हूँ जो आज तक रहस्य बने हुए हैं।'

'तुम जिन रहस्यमयी चीजों पर शोध करोगी उनकी मैं कहानियाँ लिखूँगी।'

हम दोनों खिलखिला पड़ते। हमारी इस खिलखिलाहट से गूँज उठती दिशाएँ और गूँज उठती नरम हरी डंडियों वाली झाड़ी। पूरी झाड़ी ही डंडियों का उलझाव थी। एक बार इन झाड़ियों में उलझे मेरे दुपट्टे को निकालती पूजा से एक डंडी टूट गई थी। डंडी के सिरे पर दूध छलक आया था।

'यह दूध खाँसी की अचूक दवा है।'

'अच्छा पूजा, तुम वैज्ञानिक बनोगी या डॉक्टर?'

'रेशमा जी, सुप्रसिद्ध लेखिका साहिबा, वैज्ञानिकों के शोध से ही दवाइयों का जन्म होता है। डॉक्टर खुद दवाई नहीं बनाता है। हम दवाइयाँ ईजाद करेंगे, आरती दीदी प्रिसक्राइब करेंगी।'

'कॉम्बिनेशन बढ़िया रहेगा दोनों बहनों का। एक वैज्ञानिक दूसरी डॉक्टर।'

समय बहता रहा। आरती दीदी एमबीबीएस की पढ़ाई करती रहीं। पूजा दो साल बाद ही पढ़ाई के लिए अमेरिका चली गई। मैंने हिंदी में एम. ए. किया और अपने ही कॉलेज में लेक्चरर हो गई। पूजा के साथ पत्र व्यवहार चलता रहा बदस्तूर। बीच में अंतराल हुआ। मेरी पहली कहानी जब छपी तब पूजा दीपावली मनाने शहर आई थी। हम कुछ घंटों के लिए मिले भी। बताया आरती दीदी अब डॉक्टर हो गई हैं।

अमेरिका लौटने पर पुनः पत्रों का सिलसिला चल पड़ा। पता चला आरती दीदी ने शादी कर ली है। प्रेम विवाह वो भी विजातीय से और फिर लंबा अंतराल। पूजा के पत्र आने एकाएक बंद हो गए। मैं भी बिना उत्तर की उम्मीद किए लिखती रही। न

जाने कौन-कौन से भ्रम पूजा के लिए मन में पालती रही। एक दिन अचानक भ्रम के जाल टूट गए। पूजा ने लिखा कि आरती दीदी अब इस दुनिया में नहीं रहीं।

नर्मदा की ठंडी सतह पर बहती हवाओं ने मन की खिड़कियों पर पड़ी बर्फ की हल्की परत चिटका दी। यह क्या हुआ! कैसे हुआ! यह कैसी खबर है जिस पर यकीन करने को दिल नहीं कर रहा है! मेरी आँखें डबडबा आईं। मैंने आँसू नहीं पोंछे। वैसे ही आँखें बंद कर मैं उन दिनों, लम्हों से गुजरने लगी जो मैंने पूजा और आरती दीदी के साथ गुजारे थे। उन दिनों को जीते हुए कहीं कुछ था तो एक आक्रोश, ईश्वर के प्रति। और सवाल ही सवाल थे, अनसुलझे।

और आज रानीखेत का आमंत्रण। नहीं पूजा टाल नहीं सकूँगी अपना आना। रहस्यों को खोजती, उजागर करती तुम खुद रहस्य बन गई हो मेरे लिए। तुम और तुम्हारे पापा रेवा शंकर राय। मुझे परत दर परत झाँकना है चट्टानी दरारों से झाँकती नमी से उगी वनस्पति बन। या कुछ यूँ जैसे बरसों से बंद खिड़की का पर्दा हटाकर उसके पल्लों को खोल दिया गया हो।

शुक्रवार के दिन मैंने कॉलेज में छुट्टी की अर्जी दे दी, छुट्टी सेंक्शन होते ही में पूजा के शहर रानीखेत चल दी। बहुत आकर्षित करते हैं मुझे पहाड़ी शहर। प्रकृति का खजाना मानो खुला हुआ है इन जगहों पर। यहाँ की हवा में अजब सी तासीर है। मन खुश और दीन दुनिया से अलग-थलग अपनी कल्पनाओं के दरमियाँ होना। यह कोई मामूली बात नहीं। वरना बरसों लग जाते हैं कल्पना को साकार करने की दौड़ में।

आधी रात के करीब जब वे पानी पीने उठे थे तो अचानक पूजा को जागते पा उनका माथा ठनका था। जाने क्यों दो-तीन दिनों से पूरा राय भवन बेरौनक सा लग रहा था जैसे फिजाओं में दहशत तारी हो और बिल्कुल उसी समय पूजा ने एक जानलेवा सच से पर्दा उठाया था-'पापा आरती दीदी को कैंसर है।'

वे सन्न रह गए थे। साँस फेफड़ों में समाने से इंकार करने लगी। बड़ी तकलीफ से एक बिलबिलाती आह भरते वे फर्श पर पसर गए। सड़क के किनारे बिजली के तारों पर एक चमगादड़ अँधेरे में पंख फड़फड़ा रहा था। . . .

मैं जब रानीखेत के बस अड्डे पर उतरी, पहाड़ों पर शाम उतर आई थी। पूजा मुस्कुराती खड़ी थी। मुझे देखते ही बाँहें फैलाईं। मैंने देखा उसकी आँखों की कोरे नम थीं। आसमान में टँगा हँसिया सा दूज का चाँद अँधेरे को छीलने की कोशिश कर रहा था।

'पापा बुझ से गए हैं। सुबह शाम 2 घंटे पूजा में लगा देते हैं। '

हार शायद इसी को कहते हैं। मैं सुनती रही। पूजा कार चलाती रही। पहाड़ी सड़क के दाहिनी ओर जरा सा मुड़ कर टिमटिमाते लैंपपोस्ट के पास प्रसिद्ध उद्योगपति रेवा शंकर राय की भव्य कोठी है। पूरी सड़क ही राय एंड फैमिली के लिए आरक्षित थी। यह उनका ग्रीष्मकालीन निवास था। लेकिन अब वे यहीं रहते हैं पूजा के साथ। जो हर महीने मुंबई, बेंगलुरु और विदेशों में फैले अपने पिता के व्यापार को सँभालने के लिए जाती रहती है।

कोठी आ गई। कोठी के हॉल में आरती दीदी की तस्वीर दरवाजे के एन सम्मुख चंदन की माला पहने लगी थी। बिल्कुल पूजा का प्रतिरूप। इस तरह जीवन का अंत दुखद, व्यथित करता सा। लेकिन पिता के रहते जवान लड़की के मरने को क्या जीवन का अंत कहा जाए? यह तो रुकना हुआ। जैसे छल-छल बहती पहाड़ी नदी का अचानक रुक जाना। छलक गया है सब कुछ इस कोठी का।

'पापा जी, नमस्ते।

'मैंने चरण छुए उनके। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरा और मुझे अपने नजदीक बैठाकर पनियाई आँखों से मुझे देखने लगे। उनके सिर के सारे बाल सन से सफेद हो चुके थे। स्वेटर, कोट और दस्तानों में वे दुबके थे।

'पापा आपने कन्टोपा फिर उतार दिया।' कहती पूजा ने अपने हाथों से उन्हें कन्टोपा पहना दिया। मैंने भी गर्म पानी से तरोताजा होकर गर्म कपड़े पहन लिए। महाराज चाय, नाश्ता बना लाया था।

'अब तुम आ गई हो तो मेरा मन हल्का हो जाएगा। जिंदगी का बहुत कम वक्त बचा है मेरे पास और कहने को बहुत कुछ। मैं चैन से मर नहीं पाऊँगा अगर कहूँगा नहीं। रेशमा बेटी तुम्हारी लेखनी सँभाल पाएगी वह ज्वालामुखी जो फटा और पूरी जिंदगी अपने दहकते लावे में भस्म करता चला गया। भाप बनकर उड़ गई जिंदगी।'

'अच्छा पापा, बस, आज नहीं। आज हम मिलकर बढ़िया डिनर लेंगे। रेशमा रात दिन आपके पास बैठने, आपकी बात सुनने ही आई है, पूरे 10 दिन की छुट्टी लेकर। रेशमा क्या लोगी डिनर में? मशरूम पसंद है तुम्हें?'

'कुछ भी चलेगा पूजा अभी तो लेटने का मन कर रहा है।'

गुदगुदे बिस्तर में दुबक कर मैं कोठी की समृद्धि देखती, महसूस करती रही। करोड़पति पिता की बेटी पूजा भी थकी, ऊबी हुई लगी। बेचैन भी, ज्यों हवा में उड़ता, मुरझाया फूल जो अपने पौधे की तलाश में हो। आखिर क्या हो गया है इस घर को? कहाँ गई इसकी रौनक? पूजा वैज्ञानिक बनते-बनते व्यापार सँभालने लगी। आरती डॉक्टर होकर भी अपने को कैंसर की जानलेवा बीमारी से नहीं बचा पाई। इस घर की हर बाजी उल्टी क्यों पड़ी?

ओस गिरनी शुरू हो गई थी। कोठी के चारों ओर लगे बगीचे में से ओस की मंद टपकन मैं साफ सुन रही थी। हवा में लकड़ी के दरवाजे चरमरा रहे थे और फायर प्लेस में चीड़ की लकड़ियाँ

सुलग रही थीं। कमरा मीठी सुगन्ध और गुनगुनी गर्माहट से भला सा लग रहा था। मैं बिस्तर में दुबकी अपने हाथों को दोनों घुटनों के बीच दबाए नाक तक रजाई ओढ़े खाना बन जाने की प्रतीक्षा कर रही थी। पूजा बिना खाए सोने नहीं देगी और नींद पलकों पर दस्तक दे रही थी।

बरसों से तड़के सुबह उठ जाने की आदत है। उठी तो देखा रेवा शंकर राय के कमरे में अँधेरा था। बंद खिड़की की दरारों से आती रोशनी की शहतीरें लकड़ी के फर्श पर बिछे कालीन पर चित्रकारी कर रही थीं। कमरा अपेक्षाकृत गर्म था। मैं पूरे कमरे का एक चक्कर लगाकर सोफे पर आ बैठी। अचानक रेवा शंकर राय के कमरे में उजाले का पीला फूल खिला। खिड़की के सतरंगी काँच पीले उजास से भर गए। पहले कोठी फिर सड़क उज्जवल होती चली गई। इक्का-दुक्का लोगों की आमदरफ्त खामोशी को तोड़ रही थी। रानीखेत ठंड में ठिठुर रहा था। मानो सहमा सा पहाड़ों की घाटियों में भीरु हुआ पड़ा हो।

'उठ गईं रेशमा। नींद अच्छी आई।' पूजा ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा।

उसके पीछे-पीछे चाय की ट्रे लिए हुए महाराज भी कमरे में दाखिल हुआ।

'खूब गहरी नींद आई। बरसों बाद ऐसी ठंडी रात मिली। मैं ठंड को सचमुच एंजॉय कर रही हूँ।'

पूजा ने प्यालों में चाय ढाली और मेरे बाजू में ही बैठ गई।

'रेशमा, हम बरसों पुराने मित्र हैं बीच में भले ही हम एक-दूसरे के संपर्क में नहीं रहे थे लेकिन मित्र तो हैं। मुझसे पापा की बेचैनी देखी नहीं जाती। तुम्हें उनकी बेचैनी को अपनी कलम में उतारना है। उन्हें हिम्मत देनी है। तुम्हारी कलम वो छड़ी है जो सिंड्रेला को राजकुमारी बना सकती है।'

'अच्छा' मैं मुस्कुराई। न जाने क्यों मेरी हिम्मत नहीं हुई कि मैं पूजा से पूछूँ कि तुमने विवाह क्यों नहीं किया। मुझे लगा जैसे एक विशाल महल का खंडहर होता वर्तमान अपने हर टूटे बुर्ज, हर टूटी सीढ़ी, सीढ़ियों की दरारों पर वर्षा में उगी घास से और दीवारों के पपड़ाए, तिड़के, चिटखे रूप से जवाब माँग रहा हो कि ऐसा क्यों हुआ? क्यों हुआ ऐसा कि जैसा जीना चाहा महल जी न सका। जबकि अपार संपदा से भरा-पूरा था वह।

चाय पीते हुए मेरी नजर खिड़की से बाहर आइरिस के फूलों की ओर गई। शानदार बगीचे में अधिकतर आइरिस के पौधों की क्यारियाँ थीं जिनमें जामुनी फालसाई रंग के फूल खिले थे। निर्जनता, निस्तब्धता के प्रतीक यह फूल तो लोग कब्रिस्तान में कब्रों के आसपास लगाते हैं। फिर यह यहाँ क्यों? क्या कब्र में समा चुकी आरती दीदी का वजूद निकट रखने के लिए? क्या हर वक्त इस अहसास को महसूसने के लिए कि वह अब नहीं है दुनिया में? या किसी सिद्धि के लिए मसान साधने की जिद्द है ये? अनमनी हो मैंने पूजा को ताका मगर उसका चेहरा भावहीन पाषाण सा था। हाँ, दाँव पर तो वह भी लगी है।

दिन भर में पूजा के साथ गोल्ड के हरे-भरे मैदान और मैदानों की उतराई से शुरू होते चीड़ के जंगलों में भटकती रही। मुझे लगा एक व्यवस्थित जीवन की दिनचर्या से भटकन ज्यादा जिंदादिल है क्योंकि उसमें उत्सुकता है, जिज्ञासा है। मैंने चीड़ के कोन भी बटोरे। कुछ अद्भुत पत्ते भी तोड़े जिन्हें लौटकर अखबारों की तह में दबा दिया मैंने। रात रेवाशंकर राय की आराम कुर्सी के सामने जब मैं बैठी तो मैंने देखा कि कुछ चीड़ के कोन फायर प्लेस में जल रहे हैं। जिसमें से निकली नारंगी लपटों का नर्तन रेवा शंकर राय के चेहरे पर हो रहा था। पूजा मेरे पास ही फर का सफेद पुलोवर पहने बैठी थी। कमरा गर्म हो चुका था और वातावरण को बोहेमियन टच दे रहा था। हमारे सामने कॉफी के प्याले थे।

'पापा जी आप ज्यादा सोचा मत करिए। अपने आपको वक्त के हवाले कर दीजिए।' मैंने हिम्मत कर कहा।

वे जैसे मेरे बोलने के इंतजार में ही थे।

'कैसे? ये वक्त ही तो निर्दयी, जालिम, हत्यारा है। यह वक्त ही तो मुझसे मेरी बेटी छीन ले गया। मेरी भोली-भाली आरती। अपनी माँ के बिना पली स्वावलंबी। अच्छी खासी डॉक्टर होती अभी। प्रैक्टिस करती होती। मैंने उससे वादा किया था उसके लिए बड़ा अस्पताल खोलने का। पर उसने मौका नहीं दिया।'

वे रुके, साँस फूल आई थी उनकी। वे कुर्सी से टिक गए। और मुझे पता भी नहीं चला कि वे कब मुझे लेकर बीते दिनों को दस्तक देने लगे। उन दिनों को जब मैं रीतिकाव्य पर शोध कर रही थी, पूजा पढ़ने के लिए अमेरिका गई थी और आरती दीदी एमबीबीएस करके अपनी प्राइवेट प्रैक्टिस की तैयारी कर रही थी।

वे लौटते जाड़ों के गुलाबी दिन थे। रेवा शंकर राय की पुश्तैनी कोठी राय भवन के आसपास लगे चिलबिल, इमली, नीम के दरख्त दिनभर अपने पत्ते बरसाते रहते। नंगी शाखों की उदासी पखेरुओं के कलरव से टूटती। जब वे शाम को दाना चुग कर अपने घोंसलों में लौटते। ऐसी ही किसी कठोर शाम आरती दीदी ने धीरे से रेवा शंकर राय को बताया कि वे साहिल सैमुअल से शादी करना चाहती हैं।

'शादी!' वे चौंक पड़े।

'हाँ पापा, पापा हम एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ चुके हैं। हम मिलकर प्रैक्टिस करेंगे। वह सर्जन है।'

'लेकिन वह ईसाई है।' वे लगभग चीख पड़े। 'कभी जबान पर यह नाम दोबारा नहीं लाना। सोच कैसे लिया तुमने एक गैर मजहबी से ऐसे रिश्ते का।'

आरती दीदी उनकी चीख से थर्रा उठी थीं। उनकी आँखों में आँसू उबल पड़े थे। बाहर शाखों पर हवा सिर धुन रही थी। हवा का ऐसा मर्मरी स्वर पहले कभी सुना नहीं था। आरती दीदी रोती रहीं। आसमान में धुने बादलों के फाहों के बीच सितारे जगमगाने लगे। वे रोती रहीं और वक्त अपनी दहलीज उनकी ओर बढ़ाता रहा। किसी एक दहलीज पर कदम रख कर वे महीने भर की जद्दोजहद के बाद साहिल से शादी के लिए रुखसत हो गईं। उनके जाने से पहले उस आखिरी रात रेवा शंकर राय ने मिन्नत की थी, हाथ जोड़े थे 'मत करो आरती ऐसा। थू-थू कर उठेंगे संबंधी। मेरी जिंदगी भर की नेकनामी मिट्टी में मिल जाएगी। तू जानती नहीं, तू क्या करने जा रही है।'

आरती दीदी खामोश रहीं। उनकी आँखों में दृढ़ता की परछाइयाँ थीं। इन परछाइयों को फिर कोई रोशनी मिटा नहीं सकी। रेवा शंकर राय भी मिटा न सके। उन्होंने अपने बाल नोच लिए, दीवार पर सिर पटक दिया पर परछाइयाँ काँपी तक नहीं। मिटनी तो दूर की बात है।

तीसरे दिन जब वे अपने को आरती के बिना रहने के लिए अंश मात्र मना चुके थे और यह मान चुके थे कि माँ के बिना बेटियाँ पालने में वे खरे नहीं उतरे, तभी खबर आई कि आरती ईसाई हो गई है और उसने साहिल सेमुअल के साथ चर्च में जाकर विवाह करके अपना नाम जास्मिन रख लिया है। जमीन में धँस गया था उनका वजूद। क्यों जिंदा हैं वे। ईश्वर ने उन्हें यह दिन देखने के लिए जिंदा रखा था जबकि उनकी पत्नी छोटी-छोटी दोनों बच्चियों को छोड़कर चल बसी थीं। किस तरह उन्होंने पाला है दोनों को माँ और पिता दोनों बनकर। इन्हीं बेटियों की खातिर उन्होंने संबंधियों के लाख कहने पर भी दूसरा विवाह नहीं किया। सिर्फ बेटियों के लिए जिए और बेटियों को लायकवर बनाने में जी जान लगा दी। लेकिन पता नहीं कहाँ भूल हो गई। जो आरती ऐसा कांड कर बैठी, क्या मुँह दिखाएँगे वे सगे संबंधियों को, समाज को, जिनके बीच उनका नाम पूरे सम्मान से लिया जाता है। धूल में मिल गया अब वह सम्मान।

घंटों गुजर गए। एकाएक पूर्व दिशा से आँधी उठी और रेत की लहरें आँगन, बगीचे राय भवन की छत पर उमड़ आई। घनघोर आवाज से शाखों के पत्ते, तिनके, कचरा उड़-उड़कर अधर में फैल गया। सूखी कमजोर शाखें चरमरा उठीं। वे बदहवास से पत्नी की तस्वीर के सामने खड़े हो गए और फफक-फफक कर रो पड़े। अचानक बिजली कड़की और तेज बौछारें पड़ने लगीं। जैसे जलजला आया हो।

रात पूजा का अमेरिका से फोन था। वे मूक बने पूजा की तसल्ली देती आवाज सुनते रहे। हल्का सा सुकून दिल को मिला। लेकिन फिर आशंका कहीं पूजा ने भी तो कोई अमेरिकन . . . वे बिस्तर पर ढह गए। बौछारें बंद हो गई थीं और बादलों की गड़गड़ाहट भी। अब केवल थोड़े-थोड़े अंतराल के बाद बिजली चमक भर रही थी।

उस साल व्यापार में काफी घाटा आया। कंपनी के शेयर का भाव गिर गया। बाजार मंदी पर था और उनका ब्लड प्रेशर तेजी पर। शुगर की बीमारी तो पहले थी। ब्लड प्रेशर के कारण नमक भी खाना बंद। अधिक सोचना-विचारना बंद। डॉक्टर ने आराम की सलाह दी। पूजा उनकी गिरती सेहत के कारण भारत वापस लौट आई।

आते ही उसने उन्हें चिंता मुक्त कर उनका व्यापार सँभाल लिया। अब उनके पास वक्त ही वक्त था। वे सोचते और रात-रात भर जागते। कभी अपने को दोष देते, कभी पत्नी के असामयिक निधन को, कभी आरती को। शादी ब्याह, धार्मिक, सामाजिक समारोहों में जाते हुए उन्हें लगता कि लोग उनका उपहास उड़ाएँगे। कहेंगे कुछ नहीं क्योंकि उनके पास दौलत की ताकत है पर इस ताकत की दीवारों में दीमक लग गई है। जाने कब भरभरा कर गिर पड़े। कब उनका वर्तमान खंडहर बन मुँह बा दे कि अचानक छद्म चेतना ने उनका पोर-पोर जगा डाला। आरती उनके लिए मर गई। हाँ बाकायदा मर गई। वे जल्दी उसका तर्पण कर बोझ मुक्त हो जाएँगे।

इमली के पेड़ों पर बैठे कठफोड़वा की ठक-ठक माहौल को तरंगित-'कर रही थी। उनका मन हल्का था। पूजा ने बड़े आत्मविश्वास से उनका ऑफिस सँभाल लिया था। कर्मचारी, पदाधिकारी, ऑफिसर वगैरह अब कंपनी के लिए विश्वस्त थे। एक व्यवस्थित, सुलझी हुई दिनचर्या चल रही थी कि उनके छोटे भाई का खत आया-'भाई साहब, आरती के कारण मेरी लड़कियों की शादी कहीं नहीं लग रही है। पूरा शहर जानता है आरती की करतूत। आप के अन्य शहरों में फैले हुए व्यापार के कारण भी यह खबर फूस में चिंगारी की तरह फैल गई है। अब इन लड़कियों का क्या हो? उनकी उम्र बढ़ रही है। मेरी भी। बताइए दूसरों की करनी मेरी बेटियाँ क्यों भुगतें?'

उन्होंने लौटती डाक से जवाब दिया-'मेरे लिए आरती उसी दिन मर चुकी थी जिस दिन उसने घर की दहलीज के बाहर कदम रखा था और जो मर गया उसके नाम को अपने से जोड़कर रखने में क्या तुक है। तुम आरती से अपने रिश्ते को भुला दो।' लिख तो दिया पर क्या भूलना इतना आसान था। धीरे-धीरे घिसटते, तिल-तिल मरते दो साल गुजर गए। टेबल पर रखी दवाइयों की मिकदार भी बढ़ती गई। अंदर छीजन भी बढ़ती गई। अब अक्सर सीने में बाईं तरफ दर्द उठता और ऑक्सीजन की कमी महसूस होती। परिवार में भी संबंधियों की दो-दो मौतें सुनीं। दौड़ कर गए भी लेकिन गमी के माहौल में भी लानत-मलामत मिली। बड़ी भाभी ने जहर

उगला–'गला घोंट देते कुलच्छिनी का। हत्या का पाप ही लगता न। अब जो सारे खानदानियों को जीते जी मार रहे हो, सो हत्या नहीं? पूजा को क्या कुँवारी रखोगे? करेगा भी कौन उससे शादी?

वे कानों में अँगुलियाँ ठूँस बिस्तर पर पड़ जाते। वक्त मानो ठिठक सा जाता। ग्रहण लग गया पूरी जिंदगी को। क्या–क्या सोचा था इन लड़कियों को लेकर।

पत्नी के बिना भी उच्च शिक्षा दी रेवा शंकर राय ने अपनी लड़कियों को। तौर, तरीका, तहजीब सभी में बेमिसाल रहीं लड़कियाँ। लेकिन आरती ले डूबी उनकी मेहनत। खत्म कर दिया जीते जी उन्हें तर्पण किस का हो? उनका ? या आरती का? या पूजा की जिंदगी का? हाँ, असली कुर्बानी तो पूजा दे रही है। जिसने कच्ची उम्र में ही एक बेटे की तरह उनके कंधों को सहारा दिया। और बेटा ही नहीं पिता बन कर भी देखभाल कर रही है। अपनी सारी आकांक्षाओं का होम करके।

वे तो कई–कई बार अँधेरे उदास कमरे में रो चुके हैं। अवसाद की अधिकता में अब अक्सर पी भी लेते हैं जबकि शराब, तंबाकू या किसी प्रकार के नशे की सख्त हिदायत है, उन्हें। वैसे भी इन चीजों के आदी नहीं थे। बल्कि दोस्तों के बीच में पोंगा पंडित कहलाते थे।

आधी रात के करीब जब वे पानी पीने उठे थे तो अचानक पूजा को जागते पा उनका माथा ठनका था। जाने क्यों दो–तीन दिनों से पूरा राय भवन बेरौनक सा लग रहा था जैसे फिजाओं में दहशत तारी हो और बिल्कुल उसी समय पूजा ने एक जानलेवा सच से पर्दा उठाया था–'पापा आरती दीदी को कैंसर है।'

वे सन्न रह गए थे। साँस फेफड़ों में समाने से इंकार करने लगी। बड़ी तकलीफ से एक बिलबिलाती आह भरते वे फर्श पर पसर गए। सड़क के किनारे बिजली के तारों पर एक चमगादड़ अँधेरे में पंख फड़फड़ा रहा था। डूबती साँसों और सुन्न पड़ते कानों के साथ ही वे इतना और सुन पाए–'रोग का पता अब चला है जब आखिरी स्टेज है।' धीरे–धीरे उन्हें होश आया। डॉक्टर और पूजा पास ही बैठे थे।

'अब कैसा फील कर रहे हैं मिस्टर राय?'

उन्होंने बेहतरी में सिर हिलाया। 'देखिए हालात की सच्चाई तो आपको सहन करनी पड़ेगी। अपने को इस लायक बनाइए मिस्टर राय की आप सब कुछ बर्दाश्त कर सकें। पूजा का मुँह देखिए। वह भी तो आपकी बेटी है।'

वर्षों से फैमिली डॉक्टर माहेश्वरी अब फैमिली का हिस्सा बन चुके थे। उनकी तकलीफों में अपने सारे काम छोड़ कर भागे आते थे। रेवा शंकर राय हल्की स्मित से उनकी ओर देखकर उनसे कॉफी पीने का आग्रह करने लगे।

जिस बेटी का तर्पण तक करने को वे उतारू थे उसकी बीमारी ने उन्हें अंदर तक हिला डाला था। दोपहर को भोजन से निपट कर पूजा ने ऑफिस जाने से पहले चुपचाप उन्हें आरती का पत्र पकड़ा दिया और उन्हें अकेला छोड़ दिया। हालाँकि ऑफिस जाने का मूड नहीं था उसका। वे तकिए का सहारा ले पत्र पढ़ने लगे।

'पापा, आपकी बेटी ने अपने कर्मों की सजा इसी जन्म में पा ली है। बस चंद साँसें बची हैं। कहीं कुछ नहीं रहेगा मेरे लिए या शायद मैं ही नहीं रहूँगी किसी के लिए। मैं जिंदगी से लड़ती रही और जिंदगी मुझसे और पापा हम दोनों की लड़ाई में घाव आपको मिले। इन घावों को अच्छा करने की कश्मकश ही शायद मेरी यह चाहत है कि आप मेरा अंतिम संस्कार करें। हिंदू तरीके से। मैंने सेमुअल से कह दिया है कि वह मेरी बॉडी आपके दरवाजे रख आएँ। अपनी बेटी को अंतिम विदाई देंगे न पापा।'

सहसा उनके अंदर से बिलबिलाती रुलाई निकली। उबलते आँसू तकिया भिगोते रहे। लेकिन पूजा के लौटने तक उनकी कठोरता वापस लौट आई 'पूजा कह दो उससे वह मेरे लिए कब की मर चुकी है। मैंने उसका अंतिम संस्कार तभी कर दिया था जब घर से रुखसत हुई थी।'

पूजा अवाक थी। पापा इतने निष्ठुर होंगे उसने सोचा नहीं था।

'पापा, आपको हुआ क्या है! फाँसी के कैदी की भी अंतिम इच्छा पूरी की जाती है। इतना बड़ा गुनाह तो नहीं किया न आरती दीदी ने।' पूजा ने कहना चाहा पर खामोश रही।

रात सन्नाटे से भरी थी। अलबत्ता सड़क से गुजरते इक्का–दुक्का ट्रकों का शोर उभर आता था। नहीं सुनना है उन्हें कोई शोर। कोई आहट। उन्होंने खिड़कियाँ अच्छी तरह बंद करवाईं और कमरे में ही छड़ी के सहारे चहलकदमी करने लगे। आरती के किए की कोई सजा नहीं दे सके थे वे उसे। उसने उनकी इज्जत–आबरू पैरों तले रौंद कर बिरादरी में उनकी नाक कटा दी थी। दो साल से बिरादरी के तानों के तीर उनके आर–पार होते रहे हैं। शादियाँ तक न लगने का दोषी पाया गया है उन्हें। अपने मित्रों के बीच उपहास का विषय बने हैं वे। पूजा अपनी इच्छाओं का गला घोंट चुकी है। और वे झुक जाए आरती की जिद्द पर? नामुमकिन, इस घर में उसकी लाश तक के लिए जगह नहीं। दो साल पहले मर चुकी आरती का अब कोई वजूद नहीं उनके आगे।

दरवाजा खुलने की आवाज सुन उन्होंने पलटकर देखा। पूजा थी। सुबह के 5 बज चुके थे। उन्होंने मॉर्निंग वॉक के लिए अपने को तरोताजा किया और सड़क पर निकल आए। सुबह के धुँधलके में सड़क की बत्तियाँ फीकी, पीली सी लग रही थीं। ठंडी हवा में उन्होंने भरपूर साँस ली।

उसने समझा क्या है मुझे? एक लिजलिजा, बिना रीढ़ की हड्डी का बाप, जो उसके हर फैसले के आगे झुकता जाए? बर्बाद होता जाए? थी उसे खानदान की परवाह? पूजा की परवाह? प्यार में अंधी हो चुकी थी वह। दीन दुनिया, मजहब सब को ठोकर मार बावली सी दौड़ पड़ी थी साहिल की ओर। ईश्वर भले ही मुझे इस बात के लिए माफ न करें कि मैंने मरने वाले की अंतिम इच्छा पूरी नहीं की पर मैं कभी नहीं झुकूँगा। हरगिज़ नहीं।

सोचते-सोचते तेजी में वे काफी दूर निकल गए थे। अब इतना ही पैदल लौटना मुश्किल है। रक्त का दबाव बढ़ने लगा था। वे पुलिया पर बैठ गए। पुलिया के नीचे का नाला सूखा था और सूखे पत्तों से भरा था। एक कुत्ता उनके पास आकर दुम हिलाकर कूँ-कूँ करने लगा। वे अनासक्त से बैठे रहे। काफी देर बाद एक खाली रिक्शा वहाँ से गुजरा जिसे उन्होंने हाथ देकर रोका और घर लौट आए। स्वयं को दलीलें देते, वक्त और हालात को कोसते दो हफ्ते गुजर गए। वे पूछते कुछ नहीं पर इंतजार में रहते कि पूजा आकर आरती के हाल बताए। वह अस्पताल में एडमिट थी। उसका ऑपरेशन होने वाला था। डॉक्टरों का एक और प्रयास, सिर के सारे बाल झड़ चुके थे और शरीर का पोर-पोर दर्द से टीसता था। सेमुअल मेडिकल कॉलेज में डॉक्टर थे। कॉलेज के सभी विद्यार्थी उसे खून देने, हर तरह की मदद करने हाथ बाँधे खड़े रहते थे। सेमुअल ने कोई कसर नहीं छोड़ी थी। रुपया पानी की तरह बहाया था।

'खुद भी कमजोर हो गए हैं सेमुअल। उन्हें तो अपने खाने तक का होश नहीं है। दीदी का चुनाव गलत नहीं था पापा। सेमुअल सचमुच इंसानियत से भरे बेहतरीन इंसान हैं।'

वे सुनते हुए भी न सुनने का बहाना करते पर हर दिन की खबर सुनने को उतावले रहते।

गुरुवार की शाम डॉक्टरों ने किडनी फेल होने और हार्ट सिंक करने की खबर दी और शुक्रवार की सुबह 3 बजे आरती ने अंतिम साँस ली। वे बेआवाज टूट गए, मन कड़ा किए सर्वांग तरल होते रहे। आँसुओं का दरिया फूट पड़ा भीतर ही भीतर। जिगर का एक टुकड़ा कट कर गिर गया, ज्यों आरी से चीर दिया हो किसी ने। अंदर का लावा फूट पड़ने को आतुर था पर उन्होंने उस पर ढक्कन ढक दिया था।

'पापा, प्लीज मान जाइए। दीदी की आखिरी ख्वाहिश पूरी कर दीजिए।'

पूजा रो-रो कर उनके सामने गिड़गिड़ाने लगी।

फोन पर सेमुअल ने भी प्रार्थना की-'पापा जी हमारे गुनाहों को माफ कर दीजिए। आरती की इच्छा थी कि सिंदूर बिंदी से सजाकर उसे चंदन की चिता पर लिटाया जाए। पापा जी, ऐसा ही होगा। आप उसे आखिरी रुखसत दीजिए। वरना मैं जिंदगी भर पछताऊँगा।'

हाँ यही, यही तो चाहते हैं वे कि सेमुअल पछताए जिंदगी भर। चैन से न गुजरे उसके दिन। दो साल तिल-तिल मर कर गुजारे हैं उन्होंने। महसूस कर सकेगा वह? फायरप्लेस की आँच ठंडी पड़ चुकी थी। कमरा भी धीरे-धीरे ठंडा हो रहा था। पूजा ने लकड़ियाँ लाने के लिए महाराज को आवाज नहीं दी बल्कि खुद उठी, मैंने देखा उसकी आँखों में आँसू थे। आँसू रेवा शंकर राय की आँखों में भी तैर आये थे।

'रेशमा मैं निहायत स्वार्थी, खुदगर्ज इंसान बन गया था उस क्षण। बल्कि सेमुअल की तकलीफ, उसका गिड़गिड़ाना मुझे सुकून दे रहा था। बदले की आग मेरे दिल में सुलग रही थी। जैसे मैंने भुगता, जैसे मैंने सारी-सारी रात जागकर करवटें बदलते गुजारी हैं। वैसे सेमुअल भी गुजारे। बकाया उम्र तड़पे। पल-पल मरे यही चाहत बलवती थी तब। लेकिन जिंदगी को हर कर्म का फल भुगतना पड़ता है। मैंने आरती और सेमुअल से बदला लिया और यह करके अपने घावों पर मलहम की पतली परत जरूर चुपड़ ली। पर अब मेरी जिंदगी के अपने दिन हर सुबह, हर रात उन घावों को कुरेद कर ताजा कर देते हैं। हर रोज खून रिसता है, हर रोज दर्द की टीसें मेरी नींदें छीन लेती हैं। हर रात मैं जागते ख्वाब देखता हूँ कि मैंने आरती की कब्र खोदी है और उसकी लाश निकालकर चंदन की चिता पर लिटाया है।' और वे फूट-फूटकर रो पड़े। सहसा मैंने पाया कि रो तो मैं भी रही हूँ और उनकी आत्मकथा लिखने के लिए जो कागज मेरी गोद में रखे थे उन पर आँसुओं की बूँदें टपक रही हैं, टप...टप

पूजा लकड़ियों के टुकड़े लेकर कमरे में आई। उन्हें रोता देख उसने तेजी से लकड़ियाँ एक ओर पटकीं और बच्चों की तरह उनका चेहरा अपने से सटा कर बोली-'पापा, बस पापा, बोलिए

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।'

और आश्चर्य वे रोते-रोते रुक-रुक दोहराने लगे -

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि'

फ्लैट नं. 221, ऐक्या फाउंडेशन,
ए 163, महाकाली सोसाइटी, त्रिलंगा,
भोपाल - 462016 (म.प्र.)
मो.- 9760023188

मामले को कुछ ऐसे समझा जाए

- सुषमा मुनीन्द्र

जन्म – 5 अक्टूबर 1959।
जन्म स्थान – रीवा (म.प्र.)।
रचनाएँ – दो उपन्यास, कहानी की बारह पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – म.प्र. साहित्य अकादमी का सुभद्रा कुमारी चौहान सहित अनेक सम्मानों से विभूषित।

विनायकी को बातें शिकंजे की तरह लगने लगी हैं। ऐसा शिकंजा जिससे छूटना असंभव न हो कठिन होता है। अब तक निष्कर्ष की बातों ने शिकंजे में जकड़ रखा था। अब ब्रेकअप एक्सपर्ट की बातों ने जकड़ लिया है। निष्कर्ष की बातें उसे अपने भीतर मौजूद रहने वाली उस अच्छी लड़की को ढूँढ़ने नहीं दे रही थीं जो ठीक वक्त पर दफ्तर पहुँचती और चुस्त काम के लिए सराही जाती थी। अब ब्रेकअप एक्सपर्ट बता रहे हैं उस लड़की को ढूँढ़ने की जरूरत क्यों है जब वह उसके भीतर से कहीं गई नहीं है। कुछ सुस्त हो गई है। ऊर्जस्वित करने की जरूरत है।

प्रत्याशा ने निरूपाय होकर कहा था–'विनायकी तुम बेवकूफों की तरह हरकत करती रही तो तुम्हारा हरण कर ब्रेकअप एक्सपर्ट के पास ले जाऊँगी।'

विनायकी को प्रत्याशा फरेबी लगी थी–'प्रत्याशा यह कौन सा फ्रॉड है जिसे तुम ब्रेकअप एक्सपर्ट कह रही हो? मेरी शादी मेरे पैरेन्ट्स ने फिक्स की थी यह ब्रेकअप नहीं है।'

'अलग किस्म का है पर ब्रेकअप है। ड्रामेबाज निष्कर्ष के कारण अपनी खुद्दारी खत्म कर रही हो। ब्रेकअप रिकवरी की जरूरत है।'

किराए के छोटे फ्लैट में साथ रहते, दफ्तर में साथ काम करते हुए विनायकी सहयोगी वृत्ति वाली प्रत्याशा की संगत की इतनी अभ्यस्त हो गई है कि उसके बिना असुविधा होती है। आपत्ति के बावजूद प्रत्याशा उसे ब्रेकअप एक्सपर्ट के पास ले गई। विनायकी ने खुद को करीने वाले कक्ष के बीचोंबीच रखी बड़ी मेज के उस पार अगल-बगल बिराजे पचास वर्षीय और तिरासी वर्षीय एक्सपर्ट की जोड़ी के सामने बैठा पाया। वह आभासी दुनिया में ऐसी ध्यानस्थ थी कि ध्यान नहीं उससे क्या पूछा गया, उसने क्या बताया। साथ में बैठी प्रत्याशा चक्षुदर्शी की भाँति उसके बयान को मुकम्मल करती रही थी कि एक्सपर्ट मामले को जेहन में बैठा लें। विनायकी का पहला भाव सदैव नकारात्मक होता है। त्वरित तौर पर सोचती है यह नहीं करना है। ठहर कर सोचती है यही करना है। आरम्भिक सिटिंग में एक्सपर्ट उसे निष्कर्ष की तरह छलिया लगे थे। पचास वर्षीय एक्सपर्ट इस तरह धाराप्रवाह बोलते थे कि तिरासी वर्षीय जरूरत भर को स्वर निकाल पा रहे थे। व्यवसाय के अनुसार वे दोनों मुख को हँसमुख बनाए हुए थे। विनायकी को लग रहा था उसकी दीन मुद्रा देखकर हिंस्त्र किस्म का आनंद ले रहे हैं। वह फेवर चाहती थी। वे उसके विरुद्ध बोल रहे थे। उसे हीलिंग की उम्मीद थी। वे प्रहार कर रहे थे। चार-छः सिटिंग तक उसे उनकी बातें विचारणीय नहीं लगीं।

'आपने कैसे सोच लिया उदासियों से बाहर नहीं आ सकतीं? ब्रह्माण्ड इतनी विविधता से भरा है कि यहाँ शर्तिया कुछ नहीं होता। अस्वाभाविक और असम्भव तो होता ही नहीं। जो है, एक स्थिति है।

स्थिति स्थाई नहीं रहती। प्रत्याशा जी ने पीड़क का नाम बताया है पर मैं उसे लफ्फाज कहूँगा। विनायकी जी मैं इसे क्या सच मान लूँ लफ्फाज आपको पसंद नहीं था, अब इतना पसंद है कि उसके लिए कुंठित हो रही हैं?

पहले परिचय में निष्कर्ष, विनायकी को अपने जोड़ का नहीं लगा था। वह साल, दो साल परिणय से परे रहना चाहती थी। हुलहुला गए माँ और पा अमेरिका में कार्यरत निष्कर्ष के प्रबल समर्थक बने जा रहे थे। मोबाइल पर गूँजती माँ की फतह वाली आवाज सुनकर वह निस्पृह थी –'विनायकी, मेखला ने लड़का बताया है। यदि तुम्हें पसंद करता है, तुम्हारी किस्मत बन जाएगी।'

दिल्ली में बसी मौसेरी बहन मेखला की विनायकी ने भरपूर खिल्ली उड़ाई 'माँ, मेखला अठारह साल में गृहिणी बन गई

इसलिए किसी को कुँआरी नहीं रहने देना चाहती।'

'अट्ठाईस की हो। कब तक कुँआरी रहोगी?'

'दो साल।'

'मैं बीस की थी तब माँ बन गई थी।'

'मेरी तरह एम.टेक. नहीं थीं। अभी मेरा बांड पूरा नहीं हुआ है।'

'निष्कर्ष दो-तीन महीने बाद भारत आएगा। देखते ही तुम्हारी सुराहीदार गर्दन में जयमाल नहीं डाल देगा। शादी होने तक बांड पूरा हो जाएगा।'

निष्कर्ष दिल्ली आया।

योजना अनुसार माँ और पा मुकुंदपुर से ट्रेन द्वारा, विनायकी चेन्नई से विमान द्वारा मेखला के घर पहुँचे। विस्तृत कॉलोनी की एक ऊँची इमारत के तीसरे फ्लोर में मेखला, पाँचवें फ्लोर में निष्कर्ष की माँ शीलवती, पिता रामदरश का निवास है। विनायकी ने नकारात्मक नजरिया जाहिर किया-

'रे गृहिणी, इस एन.आर.आई. के भारी नखरे हैं। मुकुंदपुर आ सकता था।'

'रे एम. टेक., वह कम दिन के लिए आया है। यात्रा में समय खराब नहीं करना चाहता। उसकी तीनों बहनें बरी-बियाही (विवाहित) हैं। यह अकेला चिराग। तुम्हारा कल्याण होगा। कार्यक्रम तय है। रेस्टोरेन्ट में डिनर पर मिलना है।'

विनायकी को सामान्य साँवले चेहरे, अच्छे कद, अपनी लघुता में निश्छल लगती छोटी आँखों वाले बत्तीस वर्षीय निष्कर्ष की न शकल अच्छी लगी न अकल। दम्भी उस जैसी कमनीय कन्या को देख कर उत्सुक नहीं हुआ। शीलवती और रामदरश जरूर संपन्न परिवार की कमाऊ लड़की को देख कर लालायित लग रहे थे। रेस्टोरेन्ट से लौटते हुए शीलवती ने मेखला की कनपटी पर मंत्र फूँका -

'देखना-सुनना हो गया। निष्कर्ष, कॉलोनी के पार्क में कल शाम विनायकी से मिलना चाहता है।'

उसे वह प्रेरक लगा था। लगता है निगेटिव एप्रोच वाली को पॉजिटिव एप्रोच वाली बना कर साँस लेगा। व्याख्या नहीं कर सकती कैसी शानदार दुनिया बन रही थी। भला सा ख्याल और खुमार था। इठला कर मस्ती से चलने को जी करता। टी.वी. पर दिखाए जा रहे पुराने फिल्मी गीत 'मैं वही, दर्पण वही' की संगत कर गाने लगी 'न जाने मुझे क्या हो गया, सब कुछ लागे नया-नया।'

प्रत्याशा ने नब्ज टटोली 'सब कुछ नया लगने लगा?'

'यह मेरी पसंद का समय है। अमेरिका जाना चाहती हूँ। पूरा संसार देखना चाहती हूँ। ये दिल माँगे मोर जैसा फण्डा आकर्षक है। प्रत्याशा दफ्तर में एलान कर दो विनायकी पी के देश जा रही है।'

इसे बन रहे संयोग की तरह आँका गया। घर में मेखला ने विनायकी को सक्रिय किया-'रे एम. टेक., निष्कर्ष तुम्हारे रूप में ऐसा लट्टू हुआ कि बेचारे का हिवड़ा गड़बड़ा गया। वाणी चली गई। शायद पार्क में वाणी लौट आए।'

'भाठ मुझे पसंद नहीं आया।'

माँ बेफिक्र दिखी-'विनायकी तुम्हारा पहला रिएक्शन हमेशा निगेटिव रहता है। निष्कर्ष से मधुर होकर बात करना।'

खेलने आए बच्चों को विदा कर पार्क खामोश था। कतरी-व्यवस्थित हरित घास पर बिराजे निष्कर्ष और विनायकी ने सूचनाओं का औपचारिक आदान-प्रदान किया। तत्पश्चात् निष्कर्ष बोला-'मेरा मानना है शादी का फैसला कठिन होता है।'

'मेरा भी।'

'सोचने के लिए वक्त चाहती हैं?'

'आप?'

'आपको सहूलियत देना चाहता हूँ। परिवार खासकर माँ को दबाव बनाना आता है। आप दबाव में नहीं सोच-विचार कर फैसला करें। मैं दबाव बनाने के विरुद्ध हूँ।'

'बांड पूरा नहीं हुआ है। कुछ समय चाहती हूँ।'

'बांड पूरा होने दें। हमें एक-दूसरे के विचार जान लेने का अवसर मिलेगा। चेन्नई कब लौट रही हैं?'

'पर्सों।'

घर में दाखिल होते ही माँ ने विनायकी को अपनी जद में ले लिया-'क्या रहा?'

'भाठ स्वतंत्र विचार का है। लड़की को लड़की नहीं, मनुष्य समझता है। इतना ही जान सकी।'

मेखला ने प्रेरित किया 'एन.आर.आई. को लपक लो। होनहार पति बन कर रहेगा।'

'सूरत भाठ जैसी है।'

'भाठ जैसी सूरत वाले अर्द्धांगिनी के चाकर बन कर रहते हैं।

उसका लावण्य नहीं लक्षण देखो।'

'आजाद रहती हूँ। शादी के बाद दिनचर्या बिगड़ जाती है गृहिणी।'

'रे एम. टेक.। तालमेल बनाने में बुद्धि लगाई जाए तो नहीं बिगड़ती।'

माँ आश्वस्त थीं। जानती हैं विनायकी जो नहीं करना चाहती फिर वही करती है। मुकुंदपुर पहुँचकर विनायकी को मोबाइल पर दोनों पक्षों का सार इस तरह बतातीं जैसे पारसमणी हस्तगत हो गई है –

'शीलवती चाहती हैं चट मँगनी पट ब्याह हो जाए पर तुमने बांड वाला घपला कर दिया। निष्कर्ष अड़ा हुआ है बांड पूरा होने दो। अरे करोड़ों का लड़का है, शीलवती और रामदरश लाखों में संतोष किए लेते हैं। नहीं, माँग नहीं कर रहे हैं, हमें देना ही है। पूरा दहेज कैश में देंगे। अमेरिका क्या फर्नीचर लाद कर ले जाओगी दिसम्बर में शादी रखेंगे निष्कर्ष से बात नहीं होती क्या? मधुर होकर बोला करो।'

विनायकी सूक्ष्म उत्तर देती कि प्रत्याशा प्रपंच न जान ले पर प्रत्याशा ने चौंका दिया –

'विनायकी, चोरी-छिपे शादी फिक्स कर ली?'

'किसने कहा?'

'आंटी ने कॉल कर कहा, मैं तुम जैसी मूढ़मती को समझाऊँ।'

'मुझे भाठ पसंद नहीं है। आँखें इतनी छोटी हैं कि सोचती हूँ ठीक से देख न पाता होगा।'

'निष्कर्ष को कॉल कर कह दो आगे जाओ बाबा।'

'वह कॉल नहीं करता। मैं क्यों करूँ?'

'दिन और रात का फर्क है। सोचता होगा दुल्हनिया की नींद बाधित होगी।'

'मामला कुछ नहीं है। तुम ऑफिस में प्रचार न कर देना।'

निष्कर्ष के फोन कॉल ने जाहिर किया मामला कुछ है।

सौम्यता से सफाई दी-'सोचती होंगी मैंने कॉल नहीं किया। मैं जब जागता हूँ आप सो जाती होंगी, यह असमंजस बना रहा।'

'समझ सकती हूँ।'

'कॉल करने के लिए यह टाइम ठीक रहेगा न? अड़चन तो नहीं होगी?'

'नहीं।'

वह एक सप्ताह में दो बार कॉल करता। कुशलक्षेम पूछता। अमेरिका के अनुभव बताता। प्रत्याशा इस तरह कान लगाए रहती जैसे शुक-सारिका के किस्से जानना चाहती हो-

'क्या मंत्रणा चल रही है?'

'क्या खाया? दफ्तर में क्या किया? भद्र पुरुष इससे आगे नहीं बढ़ रहा है।'

'बंदा आत्मसंयम वाला है। तुम्हें न व्यवधान देगा, न हस्तक्षेप करेगा। अंकुश लगाएगा ही नहीं। जो कह दोगी मंजूर कर लेगा। अच्छा है न मुकाबले जैसी स्थिति नहीं बनेगी।'

'आप बताती हैं लफ्फाज को आपका बर्थ डे याद नहीं रहा। कुशलक्षेम से इतर कम बात करता था। डिजीटल युग है लेकिन उसने वीडियो कॉलिंग नहीं की। अरे इस उम्र के लड़के ऐसे असाधारण संकल्प करते हैं जो उनकी पुश्तें पूरे नहीं कर सकतीं। यह तो रोचक बात करता ही नहीं था। गजब बात है। आप इसे अदब समझती रहीं, मैं टालना कहूँगा। आप कहती हैं शादी नहीं करनी थी तो आत्मीयता क्यों बढ़ाता रहा? आत्मीयता वह नहीं आप बढ़ा रही थीं। वह तो डिनायल देने का मानस बन रहा था।'

वह मानस बना रहा था। यह अरमान जगा रही थी।

नहीं जानती थी बातों के असर गहरे होते हैं। बातें मायाजाल बुनती हैं। नजदीकियाँ बनाती हैं। इतनी कि जो बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था, मनमीत लगने लगा। उससे बात करने की तलब होती। मोबाइल पर बार-बार नजर जाती। उसके कॉल में विलम्ब होते देख अधीरता में उसका नम्बर लगा लेती-'अमेरिका में मैनेज करने में मुझे प्राब्लम तो नहीं होगी न?'

'नहीं। वैसे यहाँ दो मसले हैं। अकेलापन और संस्कृति। मुझे अक्सर लगता है मैं ढोंग कर रहा हूँ। यहाँ अपनी संस्कृति का बखान करता हूँ, भारत में ऐसा विदेशी बना रहता हूँ जैसे वहाँ पला-पढ़ा नहीं।'

'दिल्ली में आप सहज लग रहे थे।'

'मुझे गर्मी, ट्रैफिक, लोगों का दखल असहज कर रहा था।'

'होता है। आपको अमेरिका के माहौल का अभ्यास हो गया है।'

'आपकी पॉजीटिव एप्रोच मुझे प्रेरित करती है।'

उसे वह प्रेरक लगा था। लगता है निगेटिव एप्रोच वाली को पॉजिटिव एप्रोच वाली बना कर साँस लेगा। व्याख्या नहीं कर सकती कैसी शानदार दुनिया बन रही थी। भला सा ख्याल और खुमार था। इठला कर मस्ती से चलने को जी करता। टी.वी. पर दिखाए जा रहे पुराने फिल्मी गीत 'मैं वही, दर्पण वही' की संगत कर गाने लगी 'न जाने मुझे क्या हो गया, सब कुछ लागे नया-नया।'

प्रत्याशा ने नब्ज टटोली 'सब कुछ नया लगने लगा?'

'यह मेरी पसंद का समय है। अमेरिका जाना चाहती हूँ। पूरा संसार देखना चाहती हूँ। ये दिल माँगे मोर जैसा फण्डा आकर्षक है। प्रत्याशा दफ्तर में एलान कर दो, विनायकी पी के देश जा रही है।'

'समझ नहीं पा रहा हूँ आपको दफ्तर में लोगों का सामना करने में झिझक क्यों हो रही है। क्यों लगता है आपका मजाक बनाया जा रहा है? अच्छा बताए शादी फिक्स होने का बढ़-चढ़ कर प्रचार क्यों किया? आपका भाव कहीं न कहीं यह था आपको एन.आर.आई. मिल रहा है, जानकर लोग ईर्ष्यालु हों। तब इतना अधिक बताया अब छिपा रही हैं या इतना कम बता रही हैं कि बात अस्पष्ट है। लोग कयास तो लगाएँगे ही। मैं नहीं मानता घटित बताने में दिक्कत होनी चाहिए। लोगों का सामना कैसे करें यह कोई मैटर नहीं है। स्थिति को स्वीकार करने से लोग टिप्पणी करना छोड़ देते हैं कि आप स्पष्ट बोलना, स्थिति को स्वीकार करना जानती हैं। सच को छिपाने से भ्रांतियाँ बनती हैं। संशय बढ़ते हैं। चीजें कैसी हैं इससे अधिक जरूरी है हम चीजों को कैसे देखते हैं। इसे ही तो हम दृष्टिकोण कहते हैं। खुद को मजबूत दिखाना चाहिए, आप दीन दिखा रही हैं। इस तरह की छोटी-बड़ी आकस्मिक स्थितियाँ सभी के समक्ष आती हैं। कोई साहस खोकर स्थिति को हानिकारक बना लेता है, कोई साहस से साधारण बना लेता है। दफ्तर के लोगों से उसी तरह बात करें जिस तरह करती थीं। संवाद से मानसिकता बदलने में मदद मिलती है। लेकिन आपको लगता है आपकी बदनामी हो रही है। यह क्या बदनामी जैसी बात है? आपने अपराध किया है? असामाजिक काम करती हैं? ड्रग लेती हैं? शराब पीकर उत्पात मचाती हैं? दुश्चरित्र हैं या काला धन जोड़ रखा है? हाँ, कुछ लोग होते हैं जिन्हें दूसरों को संकट में देख सैडिस्टिक प्लेजर मिलता है। इनकी ओर ध्यान न दें।'

दफ्तर में विनायकी, नातेदारी में माँ गजब का प्रचार कर रही थीं। जैसे कहना चाहती हों जिसे-जिसे करना हो विनायकी के सौभाग्य से डाह कर ले। वैसे भी माँ जब तक अपनी पाँच बहनों (माँ को मिला के पाँच) विनायकी जिन्हें पाँच पाण्डवी कहती है, को सँदेसे न पहुँचा दें उनके आमाशय का नीर नहीं पचता।

'दिसम्बर मान कर चलो, डेट फिक्स होते ही बताऊँगी।'

सूचना को पाण्डवियों ने फिर भी सहज होकर ग्रहण किया। विनायकी की ताई और दोनों बुआओं की समान प्रतिक्रिया रही -माँ-बेटी उछाल मार रही हैं। माँ सचमुच बौरा गई थीं। चमचागिरी करने के लिए शीलवती और रामदरश को मुकुंदपुर सादर बुलाकर चित्रकूट, मैहर, खजुराहो, पन्ना नेशनल पार्क, धारकुण्डी, बसामन मामा आदि समीपवर्ती धार्मिक और पर्यटन स्थल दिखा कर पचास हजार से अधिक फूँक डाले। कोई अनुमान नहीं था जब दिसम्बर के आखिरी सप्ताह में सगाई, बरीक्षा, ओली, तिलक, सप्तपदी का चार दिवसीय कार्यक्रम सुनिश्चित किया जा रहा हो, विनायकी निश्चिन्तता की ओर अग्रसर हो, तब तीली लगाकर निष्कर्ष बड़ा विस्फोट कर देगा। विस्फोट के काले सघन धुँए और धुंध से विनायकी आज भी पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाई है। मोबाइल पर माँ बोल कम रही थीं, सिसक अधिक रही थी-'निष्कर्ष शादी नहीं करना चाहता।'

'माँ।'

'शीलवती में शील नहीं है। मैंने हाथ-पैर जोड़े पर वह टुच्ची बात करती है। कहती है हमारा सदमा आपसे बड़ा है। विनायकी भागी नहीं जा रही है, निष्कर्ष कुटुम्ब का लोटा डुबो रहा है जिस जेना (अमेरिकन लड़की) से पीछा छुड़ाने के लिए मैं निष्कर्ष की शादी जल्दी से जल्दी करना चाहती थी वह पिशाच की तरह चिपक गई है। विनायकी बांड पूरा करने पर न अड़ जाती तो मैं निष्कर्ष की शिखा पकड़ कर फेरे डलवा देती। अब आपकी लड़की बांड को मस्तक पर लटका कर घूमे मुकुंदपुर में। हमारी वजह से आपका जो खर्च हुआ, मैं हर्जाना भर दूँगी वह शीलहीन क्या-क्या न बोली।'

'माँ, निष्कर्ष ने कहा था मैं बांड पूरा करूँ।'

'वह टाल रहा था। निष्कर्ष से बात क्यों नहीं करती? मैं इस

दोगले परिवार को कचहरी में घसीटूँगी। जेल में सड़ाऊँगी।'

विनायकी के ऊर्जस्वित जीवन का सबसे खराब अनुभव। जैसे बुलंदी से निचले तल पर फेंक दी गई है। ठगी गई है। छली गई है। विक्षिप्त बना दी गई है। उसका सब कुछ बदल गया है। रक्त, माँस-मज्जा, त्वचा, केश का रंग उड़ गया है। क्या नाम दे इस संबंध को? जो बनकर नहीं बना। न बन कर बन गया। वह पता नहीं क्या हो गई है। वैसी नहीं है जो विवाह तय होने से पहले थी। वैसी नहीं है जो विवाह तय होने के बाद थी। तीसरे किस्म की हो गई है। भरे जल पात्र के खाली हो जाने की तरह। जी चाहता था अज्ञातवास में चली जाए।

'आपके पैरेन्ट्स क्यों सोचते हैं लफ्फाज को जेल भेजा जाए? मुकदमा किया जाए? उसने शादी करने का लिखित प्रस्ताव नहीं दिया। एंगेजमेंट नहीं हुई। आपने बताया सभी कार्यक्रम दिसम्बर के आखिरी सप्ताह में होने थे। सुनिए, विवाह संरचना में आज भी लोगों की विकराल आस्था है। गहन पड़ताल नहीं की जाती। औपचारिक पूछ-ताछ कर दो अनजानों को बाँध दिया जाता है। इसीलिए शादी को गैम्बल कहते हैं। इतनी त्रस्त है। कॉल कर उसे जी भर कर गाली दे देतीं तो घुटन कम हो जाती। गुस्सा करना कभी-कभी जरूरी हो जाता है।'

गाली गुफ्तार।

यही सुझाव प्रत्याशा ने दिया था-'विनायकी, निष्कर्ष का गुरूर तोड़ना पड़ेगा। कॉल कर कहो तुम्हें रिजेक्ट करने की उसकी औकात नहीं है। वह तुम्हें डे वन से पसंद नहीं। पैरेन्ट्स के प्रेशर में शादी को तैयार हुई। झटका उसे भी मिलना चाहिए। लड़के वाले भगवान नहीं हैं।'

'मैं बात नहीं करना चाहती।'

'चाहती हो। तुम्हारी नजर बार-बार मोबाइल पर जाती है।'

'कॉल रिसीव नहीं करेगा।'

'करो तो।'

उसने पूरी-सभ्यता से कॉल रिसीव की -

'स्पष्टीकरण नहीं दूँगा। बस यह कि आपको याद होगा मैंने कहा था माँ को दबाव बनाना आता है। मैंने माँ और जेना दोनों को समझाया। दोनों जिद्दी हैं। मैं आपको उलझाना नहीं चाहता।'

गाली देना चाहती थी, भरे कंठ से निवेदन निकला -'मेरे साथ टाइम पास कर रहे थे?'

'मैंने हमेशा एक फासला रख कर आपसे बात की है। कुछ बार लापरवाही दिखाई कि आप शायद नोटिस लें। कुछ कहें तो मैं स्थिति स्पष्ट कर दूँ। आप इतनी भली हैं कि अपनी ओर से स्थिति स्पष्ट करने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। मैं आपकी भावनाओं से खिलवाड़ नहीं करना चाहता इसलिए हिम्मत की।'

'हिम्मत करने में इतना वक्त लगता है?'

'बहुत कन्फ्यूज्ड रहा। मेरी मजबूरी समझ कर मुझे माफ कर दें।'

निष्कर्ष के जड़ व्यवहार से हताहत हुई विनायकी ने मोबाइल डिसकनेक्ट कर दिया। चीखी, चिल्लायी, रोई, नफरत की, क्रोध किया। पूरे सप्ताह दफ्तर नहीं गई। लोग क्या कहेंगे? चली थी अमेरिका सुंदरी बनने। दूध में पड़ी मक्खी बन गई। प्रत्याशा अलग जिद्दी। उसे दफ्तर ले गई। यह किसी से नजर न मिलाती। लगता लोग तरस खा रहे हैं। खिल्ली उड़ा रहे हैं। उपेक्षित कर रहे हैं। दफ्तर में मन न लगता। अंतस में छटपटाहट, झुँझलाहट बनी रहती। आत्महत्या का विचार आता। रात में अपने जब प्रत्याशा सो रही होती अपने कमरे में यह भगवान से प्रार्थना करती, धरा निगल ले या गगन खा ले। आत्महत्या के घातक तरीके पर ध्यान ठहर जाता। दोनों हाथों की नस काट लेना सबसे आसान तरीका लगता। घबरा कर बत्ती जला लेती। उसके कमरे की बत्ती जली देख प्रत्याशा एकाएक कमरे में आ गई-'विनायकी मैं तुम्हें स्ट्राँग मानती हूँ। तुम साधारण लड़की की तरह व्यवहार कर रही हो।'

'प्रत्याशा मैं उसे भूल नहीं पा रही हूँ।'

'नहीं मानती थी पर तुम्हारे हुलिए को देख कर मानना पड़ेगा, प्रेम अंधा होता है। कैरियर को लेकर क्रेजी रहती थी। अब शादी को लेकर हो रही हो। तुम्हारा एक्सटरनल अपीयरेंस कितना अच्छा होता था। फिट, हेल्दी, पॉजिटिव लगती थीं। कैसा तो हुलिया बना लिया है।'

'मर जाना चाहती हूँ।'

'डरती हूँ कुछ कर न बैठो। तुम्हें ब्रेकअप एक्सपर्ट के पास चलना है।'

'ठीक हूँ।'

'नहीं हो। तुम्हें देख कर मुझे भी दौरे पड़ने लगेंगे। तुम्हें ब्रेकअप रिकवरी की जरूरत है।'

'प्रत्याशा जी क्या सही कर रही हैं आप जीना नहीं चाहतीं' –

पचास वर्षीय की बात सुन तिरासी वर्षीय एक्सपर्ट अचानक अपनी टीप जोड़ने लगे 'आप छोटी उम्र में इतनी सुस्त हो गईं? मैं अस्सी पूरे कर चुका हूँ लेकिन मरना नहीं चाहता। अस्सी के बाद की उम्र को भगवान द्वारा दिया गया बोनस मानता हूँ। शुरू से बोनस का लोभी रहा हूँ।

अस्सी वर्षीय को अधिक कहने का मौका न दे पचास वर्षीय ने कमान थाम ली –'आपके न रहने से दुनिया का व्यवहार–व्यापार नहीं रुकेगा। लोग कहेंगे आपकी उम्र कुल इतनी थी। मौत इस बहाने ले गई। सुनिए, आज का सच यह है लफ्फाज आपसे शादी नहीं करेगा। इसे आप रिजेक्शन न मान लें। दूसरी लड़की होती तो लफ्फाज उसे भी अस्वीकार कर देता। तय था उसे अमेरिकन से शादी करनी है। यदि मैं कहूँ लफ्फाज शरीफ है, मुझे दुश्मन तो नहीं समझ लेंगी? उसने अमेरिकन के बारे में अपने पैरेन्ट्स से बात की होगी। वे नहीं माने होंगे। वे तो जैसे–तैसे आपकी शादी करा देना चाहते थे कि अब आप जानो और लफ्फाज जाने। वे कैश को तिजोरी में भर कर सुखी रहेंगे। आप कहती हैं उसने आपका भावनात्मक शोषण किया। ऐसा कुछ नहीं है। वह हिम्मत जुटाने के लिये वक्त ले रहा था। सुनिए उसमें पैरेन्ट्स का विरोध करने की हिम्मत होती तो वह आपको देखने नहीं आता। पैरेन्ट्स के दबाव में भारत आया। उनके दबाव में आपसे टेलीफोनिक कनवरशेसन शुरू किया। इस बीच पैरेन्ट्स को सहमत करता रहा होगा। नहीं हुए। उसने निर्णय ले लिया। आप उससे शादी न कर सुखी रहेंगी या नहीं रहेंगी, करके नहीं रहतीं। वह आपसे शादी करके अमेरिकन से संबंध रखता, आपसे तलाक माँगता, हिंसा करता, घरेलू नौकरानी बनाकर रखता यह कठिन स्थिति होती। लड़के शादी करके पत्नी को विदेश ले जाते हैं, नौकरानी की तरह व्यवहार करते हैं, ऐसे प्रसंग हो रहे हैं। आप संकट से बच गई हैं। मैंने शुरू में ही पकड़ लिया है आपके भीतर मानसिक अस्थिरता रहती है। नकारात्मक सोचती हैं। जजमेन्टल होने लगती हैं। मैं इसे अच्छा अभ्यास नहीं मानता लेकिन इस मामले में आपकी निगेटिव एप्रोच को बुद्धिमत्ता कहूँगा कि आपको लफ्फाज पहली नजर में अच्छा नहीं लगा। बांड पूरा करने और सोचने के लिए आपने वक्त लिया। उसके पैरेन्ट्स जल्दबाजी में शादी कर देते तो लफ्फाज को एम. टेक. मेड मिल जाती। अफसोस। आपको जो पसंद नहीं करता आप उसके लिए सेहत गिरा रही हैं। आपको अपने भविष्य पर एकाग्र होना है। इमेज बनानी है। प्रत्याशा जी कहती हैं दफ्तर में आपके काम की सराहना होती है। आपको वह निष्ठा बनाए रखनी है। कुंठित रहेंगी तो अवसाद में चली जाएँगी। पैनिक अटैक आने लगेंगे। लम्बे उपचार से गुजरेंगी।'

मध्य रात्रि है।

प्रत्याशा अपने कमरे में सो रही है।

विनायकी जाग रही है।

एक्सपर्ट के सामने जरूरत भर को बोली। उनकी बातें जरूरत भर को सुनीं लेकिन लग रहा है कोई सूत्र हाथ आ गया है। बातें उसके मानस में जज्ब होती रही हैं। असर डालती रही हैं। शिकंजे की तरह घेरती रही हैं। स्पष्ट लग रहा है जिन बातों को विरोधी मान रही थी वे उसके विरुद्ध नहीं हैं। जरूरी ठोस प्रहार की तरह है जो बंद जोड़ों को खोलने के लिये किया जाता है। नजरिए को बदलने के लिए मारक बातें करनी पड़ती हैं। हाँ, नजरिया बदल रहा है। मामला सुलझ रहा है। समझ में आ रहा है। खुद को बुद्धिमती मानती हैं तो अपना सम्बल बनना पड़ेगा। खुद को मजबूत नहीं बनाएँगी तो लोग अब तक हँस रहे थे या नहीं हँस रहे थे, अब जरूर हँसेंगे कि निकल गई स्मार्टनेस। अपने भीतर की उस लड़की को ढूँढ़ना ही होगा जो ठीक वक्त पर दफ्तर पहुँचती और अपने चुस्त काम के लिए सराही जाती है। समाधान बाहर से नहीं मिलते। अपनी लड़ाई खुद लड़नी पड़ती है। सुबह सलीके से तैयार हुई। प्रत्याशा के साथ दफ्तर जाते हुए अपने आस–पास को जी भर कर देखा। आसमान वैसा ही नीला है। पेड़ों का रंग वैसा ही हरा है। हवा में वैसी ही आश्वस्ति है, प्रत्याशा ने उसे गौर से देखा –

'कैसा लग रहा है?'

'जैसे ब्रेकअप रिकवरी हो गई है।'

'कहती थी यह ब्रेकअप नहीं है।'

'पर रिकवरी हो गई।'

द्वारा श्री एम. के. मिश्र
जीवन विहार अपार्टमेंट
द्वितीय तल, फ्लैट नं. 7
महेश्वरी स्वीट्स के पीछे,
रीवा रोड, सतना -485001 (म.प्र.)
मो.- 07898245549

पंचरत्न

- सुदर्शन वशिष्ठ

जन्म - 24 सितंबर 1949।
जन्म स्थान - पालमपुर (हिमाचल)
रचनाएँ - बाइस पुस्तकें प्रकाशित, कतिपय सम्पादित।
सम्मान - हिमाचल अकादमी के 'शिखर सम्मान' सहित अनेक सम्मान।

ऊँचे गेट के बाहर उतारा रिक्शे वाले ने तो लगा किसी गलत जगह आ गए हैं। एक बार तो लौटने को हो गया प्रताप।

गेट के भीतर एक ओर लम्बी-चौड़ी पार्किंग थी। एक वर्दीधारी रौबीला दरबान बड़े सलीके से गाड़ियाँ लगवा रहा था। भीतर के मुख्य द्वार पर बड़ा सा शीशा लगा था जो आदमी के करीब जाते ही खुद खुल जा रहा था। आदमी के भीतर प्रवेश पर खुद ही बंद। डरता-डरता द्वार तक गया तो शीशा खुल गया। प्रताप ने पहले पत्नी को सामान की तरह भीतर धकेला, फिर खुद भी जैसे धक्के से अंदर जा गिरा। शीशा पुनः बंद हो गया।

भीतर बहुत मजेदार ठण्डक थी। जैसे स्वर्ग में पहुँच गए दोनों जन। भीनी-भीनी सुगन्ध चारों ओर फैली हुई थी। एक आदमी लगातार सुगन्धित पोचा लगाता जा रहा था। बाईं ओर चाय-पानी के लिए कैफे था। काउंटर में शीशे के अंदर करीने से सजा खाने-पीने का सामान। सामने बैठने को कुर्सियाँ, गोलमेज़। पत्नी को बड़ी देर से प्यास लगी थी। घर से लाया पानी तो गर्म होने से पहले ही पी लिया था। किसी भी टेबल पर पानी का जग नहीं था अतः सोचा एक बोतल खरीद कर पहले प्यास तो बुझा ली जाए। एक पानी की बोतल के पचास रुपए वसूल लिए। पानी ठण्डा था।

हॉल के बीच खम्बे के चारों ओर व दीवार के साथ लोहे की कुर्सियाँ फिक्स की हुई थीं। कुछ लोग वहाँ बैठे थे। वे भी वहाँ बैठ गए और पानी की आधी-आधी बोतल गटक डाली। प्यास तो कम बुझी, कलेजे तक ठण्डक पड़ गई।

शहर पहुँचते-पहुँचते पूरे बदन में चिपचिपाहट हो गई। गर्मी इतनी थी कि जहाँ भी जरा सा बस रुकती, पसीना बह निकलता। पत्नी अलग परेशान थी। उसे कहा भी, रहने दे, मैं ही हो आता हूँ। तुम्हारी गठरी कौन उठाएगा! वहाँ भीतर तो किसी को नहीं जाने देते, भाभी ने फोन पर बताया था।

बस स्टैण्ड से अस्पताल काफी दूर था। ऑटो या टैक्सी करने की सलाह दी एक मेहरबान ने। पैसा बचाने के चक्कर में रिक्शा क्या किया, पसीने से नहा गए। हालाँकि धूप ढल रही थी। रिक्शे वाले ने भी दूरी तो बताई पर मोल भाव कर साठ रुपए में चलने को तैयार हो गया था। बेचारे रिक्शेवाले ने इतना पसीना बहा कर साठ रुपए लिए और यहाँ एक बोतल ही पचास रुपए की।

हॉल में नजर दौड़ाई तो बड़े से गोलाकार मेज के अंदर कई स्मार्ट काली पोशाक में लड़कियाँ बैठी थीं। कुछ आगंतुकों को अटैंड कर रही थीं तो कुछ फोन में व्यस्त। एक ओर एटीएम था जहाँ पैसे निकालने वालों की लाइन लगी थी।

चलो पूछते हैं, पत्नी को कहा प्रताप ने और काउंटर की ओर बढ़ा।

'हाउ केन आई हेल्प यू!' मधुर स्वर में लड़की ने पूछा।

'देखिए, यहाँ वेद भारद्वाज दाखिल हैं। उनसे मिलना है।' ऐसे कहा प्रताप ने जैसे वीआईपी वेद इस होटल में ठहरे हों।

'वेद भारद्वाज!' उसने कंप्यूटर में देखा, 'आगे लिफ्ट है। पाँचवीं मंजिल पर चले जाइए। वहाँ आईसीयू में हैं।'

बैग कन्धे पर लटका रखा था प्रताप ने। बैग में ही दस हजार रुपए बैंक से निकाल कर रूमाल में बाँध रखे थे। बीमारी में क्या पता पैसे की कब जरूरत पड़ जाए। दो हजार रास्ते के लिए अलग जेब में रख लिए थे। काउंटर में या कैफे में कहीं भी उसे उपयुक्त जगह नहीं दिख रही थी जहाँ बैग रख दे और

जाती बार ले ले।

आगे एक कोने में बड़ी-सी लिफ्ट ऊपर जा रही थी। कुछ लोग ऊपर जाने के लिए खड़े थे। लिफ्ट का दरवाजा खुलते ही वह पत्नी को आगे धकेल भीतर चला गया। लिफ्ट में नम्बर पाँच जगने पर कुछ लोग उतरने को उतावले हुए तो वे भी उतर गए।

इस मंजिल में तो दूर तक गलियारा दिख रहा था। यहाँ भी भीनी-भीनी सुगन्ध फैली हुई थी। वैसे ही एक खम्बे के साथ गोलाकार कुर्सियाँ लगीं थीं। दूर तक दीवार के साथ भी कुर्सियाँ फिक्स थीं। यहाँ भी एक किनारे काउंटर था जिसके भीतर आकर्षक वेशभूषा में लड़कियाँ फोन के साथ विराजमान थीं।

पत्नी और बैग को कुर्सी पर रख कर काउंटर के पास गया प्रताप। कांउटर वाली लड़की के पूछने से पहले ही उसने बता दिया-'वेद भारद्वाज एडमिट हैं यहाँ।'

यहाँ भी लड़की ने कंप्यूटर खोला और बोली 'यस सर! वे तो आईसीयू में हैं। यू कांट मीट एट द मूमेंट।'

प्रताप सहम गया। अब क्या करें! फिर हिम्मत कर पूछा, 'उनके साथ के कुछ लोग पत्नी, बेटा यहाँ होंगे!'

'आगे जा कर राइट को पहले गलियारे में बाहर स्टाफ होगा, उनसे पता कर लें।'

उसने बैग उठा पत्नी को पीछे आने को इशारा किया। कुछ आगे जा कर राइट मुड़ने पर एक और काउंटर दिखा। वहाँ भी एक महिला फोन के साथ बैठी थी।

'मैडम! यहाँ मि. वेद भारद्वाज हैं, कहते हैं आईसीयू में हैं। क्या हम देख सकते हैं। उनके रिश्तेदार हैं, गाँव से आए हैं।'

'मि. वेद भादद्वाज' इस मैडम ने भी कंप्यूटर खोला। वह भी उचक कर देखने लगा। शायद भाई साहब का फोटो कंप्यूटर में आ रहा होगा।

'यस! ही इज इन आई सी यू। अंदर जाना अलाउड नहीं है।'

'उन्हें अटैंड करने वाले मिसेज या बेटा होंगे यहाँ।'

'पता नहीं कहाँ होंगे! यू केन चैक इन। फूड प्लाजा यहीं लास्ट में है। आप फोन कर पता कर लीजिए।' मैडम बोली।

दोनों जन फिर कुर्सियों पर बैठ गए। अब तो छः बजने को आए थे। वहाँ सब ओर 'साइलेंस प्लीज़' था अतः मोबाइल से फोन करने में डर रहा था प्रताप।

'चलो आगे देखते हैं, होटल बता रही है,' प्रताप ने कहा तो पत्नी चौंक गई। अस्पताल में कैसा होटल!

मंजिल के आखिर में एक बड़ा दरवाजा था। एक ओर शीशे में 'फूड प्लाजा' लिखा था।

दरवाजा खोल भीतर झाँके तो बड़े से हॉल में बढ़िया सोफे और कुर्सियाँ लगी थीं। एक ओर काउंटर था। सफेद ड्रेस में बेयरे ऊँचे नेपकिन लगाए घूम रहे थे। मन हुआ, बैठ कर कुछ खा लें। भूख भी लग आई थी। एक ओर लगी रेट लिस्ट देख हवा सरक गई। कोई भी एक चीज़ डेढ़-सौ रुपए से कम न थी।

वापिस बाहर निकलने ही वाले थे कि प्रताप को चाची और भतीजी सायना एक टेबल पर बैठे दिख गए। वे कुछ खा रहे थे। उसने हाथ हिलाया, चाची ही थीं। भतीजी ने वहाँ बुलाने का इशारा किया।

'आप क्यों आ गए देवर जी। आपको मना किया था। देखिए हम भी यहाँ बैठे हैं। भीतर तो किसी को जाने नहीं देते।' प्रताप को इस तरह यहाँ आना अच्छा नहीं लगा। ये लोग कुछ खा-पी लेते तब ही आना चाहिए था। सायना ने ना-ना करते भी चाय मँगवा ली।

'अब कैसे हैं भैया!' उत्सुक और भावुक हो गया प्रताप।

'तबीयत तो खराब थी ही चल रही थी, आपको बताया था। ज्यादा बिगड़ी तो अस्पताल ले आए। सायना भी कल ही पहुँची बैंगलोर से। तीन दिन तो स्पेशियल वार्ड में रहे। ठीक ही थे। आपको पता है वीपी तो रहता ही था। शुगर भी है। ऊपर से किडनी कमजोर हो गई। ठीक भी हो गए थे कि कुछ बेहोशी सी आने लगी सो कल डॉक्टरों ने आईसीयू में बदल दिया।'

वहाँ से बाहर निकले तो सायना एक गलियारे में ले गई जहाँ से शीशे में से आईसीयू देखा जा सकता था। 'वो देखिए' सायना के चेहरे पर कुछ खुशी और कुछ ग़मी का भाव आया।

भैया बिस्तर पर लेटे थे। छाती, नाक में तारें और नालियाँ लगीं थीं। पेशाब के लिए थैली नीचे लटक रही थी। एक ओर कई मशीनें सजी हुई थीं। प्रताप ने वहीं से हाथ हिलाया तो लगा भैया

भी हाथ हिला रहे हैं। वह रुआँसा हो गया।

'हम भी बाहर ही हैं', सायना ने बताया। कल मुझे भी इशारे से बुला रहे थे, शायद कुछ कहना चाहते थे। डॉक्टर लोग भीतर जाने नहीं देते। वे भी अपनी जगह ठीक हैं।'

'गोल्डी भी आने वाला है। यदि टिकट बन गई तो हो सकता है रात ही पहुँच जाए।' भाभी ने कहा।

'इतनी दूर से आना भी तो आसान नहीं।' प्रताप बोला।

'पाँच दिन तो स्पेशियल वार्ड में रहे। हम भी वहीं थे। सोने को बेड लगा था जिसमें हम दोनों आराम से सो जातीं थी।' सायना ने बताया।

'खर्चा भी तो बहुत होगा।' प्रताप के मुँह से निकल गया। पत्नी ने कोहनी से बाँह दबाई कि ऐसी बात क्यों कर रहे!

'स्पेशियल वार्ड में पाँच हजार तो किराया ही था फेसिलिटी सारी थी। बस फोन करो जो मन में आए मँगवा लो।' भाभी ने कुछ गुमान से बताया।

'अब मिलने नहीं देंगे!' चिंतित हो गया प्रताप।

'सात बजे एक-एक आदमी जा पाएगा, पाँच मिनट के लिए।'

मशीनें, जो लम्बी धुन में बज उठीं थीं, धीमी पड़ गईं और एकाएक बंद हो गईं। दिल का ग्राफ टूट गया। डॉक्टर ने सिर हिलाया। प्रताप ने फट से जेब से पंचरत्न की पुड़िया निकाली और डॉक्टर को पूछा- 'मुँह में डाल दूँ!'

'यस! यस! व्हाई नॉट!'

प्रताप ने मन में रामनाम जपते हुए पुड़िया मुँह में उड़ेली और खटाक से मुँह बंद कर दिया। उसी समय फूड प्लाजा से सभी आ गए। नर्स ने सब को बाहर जाने का आदेश दिया यहाँ रोना-धोना मना है। और भी सीरियस पेशेंट हैं।

'साढ़े छः तो हो गए हैं,' सायना ने कहा, 'चलो वहाँ बैठते हैं।'

'भैया बीमार हो गए हैं ज्यादा, अस्पताल ले जा रहे हैं', भाभी ने काँपती आवाज में फोन पर बताया था तो खटका तो हुआ था प्रताप को। दो साल से बीमार ही तो चल रहे थे, कभी-कभी कुछ, कभी कुछ। पिछले साल तो बीमारी की ख़बर सुन बेटा भी आ गया था केनेडा से। सात दिन यहीं रुका रहा। फिर ठीक भी हो गए। सब कुछ कण्ट्रोल में आ गया। सारे टेस्ट ठीक आए।

वेद भैया का दबदबा था पूरे इलाके में। हालाँकि बड़ा अफसर बनने पर उनका गाँव आना-जाना कम हो गया। उस टाइम में स्टेट बैंक में प्रोबेशन ऑफिसर लगे थे जब बैंक की नौकरी सबसे अच्छी और ज्यादा तनख्वाह वाली मानी जाती थी। उसके बाद प्रमोशन पर प्रमोशन लेते गए। भाभी भी पढ़-लिख गईं। एक अंग्रेजी स्कूल में शौकिया नौकरी भी की। अंत में चण्डीगढ़ ही बस गए और कंसलटेंसी खोल ली। आठ माले की आलीशान कोठी बनाई। सुनते हैं दिल्ली में भी फ्लेट लिया है। बेटा विदेश चला गया। बेटी ने बैंगलोर में ब्याह कर लिया। घर की जमीन, खेतीबाड़ी एक तरह से भाई के सुपुर्द ही छोड़ दी थी।

रिटायरमेंट के बाद भी वेद भैया एकदम तंदरुस्त रहे। लम्बे, गोरे चिट्टे, चेहरे पर रौनक। जब मँहगा सूट, टाई लगा निकलते तो लोग वैसे ही नमस्कार मुद्रा में झुक जाते। कई लोग खुद ब खुद रास्ता छोड़ देते। मिलनसार भी बहुत थे और जान-पहचान तो थी ही।

सात बज गए। भाभी ने कहा, मैं पहले जा आती हूँ। कुछ जरूरी चाहिए होगा।

वे शीशे से देखते रहे। भाभी ने अंदर जा कर कुछ बात की जिससे लगा भैया होश में हैं। जल्दी ही भाभी बाहर आ गई और एक पर्ची सायना को दी 'जरूरी इंजेक्शन हैं। ले आओ।'

'मैं ले आता हूँ।' प्रताप तुरंत बोला।

'आपको पता नहीं चलेगा बहुत लम्बा-चौड़ा अस्पताल है यह। दवाइयाँ बाहर की ओर हैं। बाहर से लो तो सस्ती पड़तीं हैं। अब आप जा आओ भैया, भाभी को चाहे यहीं रहने दो।'

बूट खोले प्रताप ने तो जुराबों से दुर्गन्ध आने लगी। जुराबें भी उसने बूटों में ही फँसा कर अस्पताल की सफेद चप्पलें पहन लीं। प्रताप ने सोचा, अलग कमरा होगा पर ये तो बड़ा-सा हॉल ही था जिसमें पार्टीशन दे कर अलग-अलग केबिन से बनाए थे। हर बेड के साथ कई मशीनें लगीं थीं।

भाई होश में थे। उसे देख उन्होंने सच में ही हाथ हिलाया था। भैया का हाथ पकड़ लिया प्रताप ने। मन बुरा सा हुआ। इतना स्मार्ट, इतना फुर्तीला, इतना इंटेलिजेंट आदमी और इस हालत में। भैया का हाथ बहुत कमजोर और ठण्डा था। यहाँ भी अंदर एसी की ठण्डक थी।

'तू भी आ गया!' उनकी धीमी आवाज में एक बेचारगी थी।

'जल्दी ठीक हो जाएँगे भैया! चिंता न करो।' इतना कह पाया प्रताप कि नर्स ने बाहर जाने का इशारा किया बोलना ठीक नहीं इनके लिए। उसे अपनी जुराबों की दुर्गन्ध से भी ग्लानि हो रही थी। भैया हाथ नहीं छोड़ रहे थे। उनका हाथ बहुत कमजोर और लिजलिजा लग रहा था। जैसे किसी ने चिड़िया का मरा हुआ बच्चा पकड़ा दिया हो।

'मैं यहीं हूँ अब आप चिंता न करें।'

विवश सा बाहर आ गया प्रताप।

'अब आप घर चलिए। नौकर है वहाँ। आराम करिए। हम भी थोड़ी देर में इंजेक्शन वगैरा दे कर आ जाएँगे। आपके लिए कैब कर देते हैं।' भाभी ने कहा।

'नहीं-नहीं। हम चले जाएँगे।'

उसी लिफ्ट से नीचे उतरे दोनों जन तो गलियारे में एक आदमी मिल गया।

'भाई साब! कौन दाखिल है। देखिए हमारे पास इंस्टेंट, आँख का लैंस, रेटिना का इंजेक्शन बहुत ही सस्ते दामों पर मिलता है। लैंस साठ हजार का होगा, तीस में देंगे। रेटिना का इंजेक्शन एमआरआईपी सत्तर हजार है, हम पैंतीस में देंगे क्या बीमारी है।'

पहले तो कुछ समझ नहीं आया प्रताप को। पीछे दो आदमी और खड़े थे जिनके पास मेडिकल रिप्रेजेंटेटिव जैसे बैग थे।

'नहीं भैया। हमें नहीं चाहिए।' उसने पीछा छुड़ाना चाहा।

'फिर भी। है कौन बीमार आपका! दस्सो ता सही।'

'भैया हैं।' उसके मुँह से निकल गया।

'तो बताओ न क्या बीमारी है और क्या चाहिए। हॉस्पिटल में तो ठगी है। हम आधे से कम दामों पर आपको देंगे।'

'नहीं-नहीं, मैं अभी-अभी उनको देखने भर के लिए आया हूँ।' उसने पीछा छुड़ाया।

आठ बजने को आए होंगे। बाहर अभी भी उमस थी। सड़क से जैसे गर्म हवा उठ रही थी। भैया के आठ सेक्टर के घर में वह पहले भी कई बार आया था। घर दूर था फिर भी एक रिक्शे वाला अस्सी रुपए में चलने को तैयार हो गया। कोठी तक पहुँचने से पहले भी वह उतर गया। उसे याद था यहाँ एक कोने में पेड़ के नीचे एक आदमी दाल और चपाती देता था। घर खाकर ही जाते हैं। यह सोच कोने में गया तो उस आदमी का तंदूर लगा था। दोनों जनों ने तीन-तीन रोटियाँ गर्म दाल के साथ खाईं और कोठी का गेट खोल भीतर गए।

बेल बजाने पर गाँव से लाए पुराने नौकर मस्तो ने दरवाजा खोला। मस्तो को देख उनकी सारी थकान जाती रही। उन्हें एक कमरा खोल एसी लगा दिया।

'खाना हम खा आए हैं मस्तो। पानी की दिक्कत न हो तो नहा लें। फिर चाय पिला देना।'

'आप चिंता न करें मालका। जितना मर्जी नहाओ। टाँकियाँ लगी हैं ऊपर।'

नहाने से पहले पत्नी ने बैग से निकाल एक पुड़िया थमा दी प्रताप को : 'इसे रख लेना जेब में। पता नहीं कब जरूरत पड़ जाएगी।'

'क्या है!' जानते हुए भी अनजान सा बना प्रताप।

'पता नहीं आपको। आपने ही तो कहा था। पंचरत्न है। मैंने तो बाहर से देखा, जेठजी मुझे ठीक नहीं लग रहे।'

एक धक्का सा लगा प्रताप को।

सुबह छः बजे मस्तो ने चाय पिला दी। जाग तो वह पाँच बजे ही गया था। सुबह उठने की आदत जो थी।

'भाभी जी आ गए! कैसे हैं भैया अब?' प्रताप उतावला हो गया।

'रात आ गए थे। वैसे ही हैं। आज गोल्डी भी आ जाएगा शायद। आप भी तैयार हो जाना। ब्रेकफास्ट के बाद जाएँगे शायद।' मस्तो ने बताया।

सुपर स्पेशियलिटी हॉस्पिटल 'आस्था' में पहुँचे तो वहाँ बहुत चहल-पहल थी। बाहर के काउंटर में काफी लोग खड़े थे। बहुत से गलियारे में इधर-उधर आ जा रहे थे। कुछ कुर्सियों पर पसरे थे। बहुत से लोग ओपीडी में चैकअप के लिए आते हैं, भाभी ने बताया। स्पेशियलिस्ट से मिलने की एक हजार फीस है, भाभी ने गर्व से कहा। नीचे की मंजिल में ओपीडी थी जहाँ

कई तरह के डॉक्टरों की नेमप्लेटें लगी हुई थीं। इतना पैसा देने पर भी लोग लाइन में लगे थे।

सभी पाँचवीं मंजिल में जा पहुँचे। भाभी ने वहाँ काउंटर पर बैठी महिला से भैया की कुशलक्षेम पूछी और निश्चिंत हो गई। स्टेबल हैं, चिंता की कोई बात नहीं, वे बोलीं। आगे जा कर शीशे से झाँका तो वेद भैया लेटे थे, वैसे ही बिना हिलेडुले।

प्रताप को लगा वे हाथ उठा इशारे से बुला रहे हैं। तब तक माँ-बेटी आगे निकल गई थीं।

वेद भैया के लिए किसी चीज की कमी थोड़े ही है। पर बड़े लोगों को उतनी ही बड़ी बीमारी आईसीयू का एक नाइट का खर्चा दस हजार है। दवा, इंजेक्शन, डॉक्टरों की विजिट का बिल अलग। अलग बीमारी का अलग डॉक्टर आएगा और अलग फीस वसूलेगा।

दोपहर को जबरदस्ती ही नीचे के कैफे में ले गई सायना। हम कोई खानेपीने थोड़े ही आए हैं यहाँ, प्रताप ने मना भी किया। प्रताप ने जोश में आ कर बिल दिया तो चार लोगों की डिपडिप चाय और एक-एक बटर स्लाइस का पाँच सौ कुछ आ गया।

आज उसे गाँव का एक आदमी मिल गया जो यहाँ सिक्योरिटी गार्ड लगा हुआ था। उधर के कई एक्स सर्विसमेन और बेकार युवक इस शहर में आकर बड़े-बड़े मॉल्ज में, होटलों में, कंपनियों में वर्दी पहन सिक्योरिटी गार्ड, बेयरे या इस तरह के कामों में लगे हुए थे। कुशलक्षेम पूछने के बाद उसने बताया, 'यहाँ तो महाराज जिसकी जेब में पचास-साठ-सत्तर हजार हो वही भीतर आ सकता है। पैसे तो ये लोग पहले ही रखवा लेते हैं, इलाज बाद में। जिसके पास पैसा नहीं है, वह तो बाहर से ही लौट जाता है। टेस्ट करवाते-करवाते ही रिश्तेदारों सहित बंदा बेहोश हो जाता है। आप अंदर आए नीं कि मीटर घूमणा शुरू। एक बात और है, ठीक होने पर भी मरीज को डिस्चार्ज नहीं किया जाता। न ही मरने पर एकदम छोड़ा जाता है। बस घोचते रहते हैं।'

शाम सात बजे भैया का हाथ अपने हाथ में लेने के बाद कल की तरह वापिस आ गए दोनों जन। उसी पेड़ के नीचे दाल-फुलका खाया। आज रात गोल्डी आ जाएगा केनेडा से, यह सूचना थी। मस्तो ने चाय पिलाई और निश्चिंत हो सोए दोनों।

सुबह उठा तो मस्तो ने ख़बर दी, गोल्डी साब रात आ गए हैं। अभी तो सोए हैं। थोड़ी देर में अस्पताल जाएँगे। आप तैयार हो जाइए, आराम से।

गोल्डी के आने से जैसे जान आ गई। अस्पताल पहुँचते ही फर्राटेदार अंग्रेजी बोलते हुए उसने डॉक्टरों से बात की। एक खलबली सी मचा दी उसने। एमआरआई सहित फिर से कई टेस्ट करवा दिए गए। दवाइयाँ, महँगे इंजेक्शन। भैया का सारा शरीर सुईयों से छलनी कर दिया।

गोल्डी और सायना को जब देखो मुख्य काउंटर में कार्ड से पेमेंट कर रहे हैं। एक लाख तो आते ही जमा करवा लिया था अस्पताल वालों ने, भाभी ने बताया।

आज पत्नी को भाई के घर छोड़ आया प्रताप। कपड़े साफ कर लेगी। गर्मी में जो कपड़ा पहनो, शाम तक मैल से काला हो जाता। जुराबें तो रोज धोनी पड़तीं। चलो घर में खुद दाल-चावल बना कर ढंग का खाना तो खा लेगी। यहाँ तो बस पीछे पीछे चलती रहेगी।

पूरा दिन दौड़-भाग में ही बीता। हर दस मिनट बाद देखते तो डॉक्टर भैया को घेरे खड़े होते। आज भैया के पड़ौसी, संगी-साथी भी देखने आए जो बाहर से देख लौट गए।

दिन में शीशे से देखा तो भैया जैसे गोल्डी को हाथ हिला बुला रहे थे। जब भी मैं यहाँ आता हूँ, मुझे हाथ हिला बुलाते हैं, गोल्डी ने बताया। सुबह मिल आया था, डॉक्टर बार-बार मिलने को मना करते हैं, ठीक भी है।

गोल्डी के आने के दूसरे दिन भैया ज्यादा पस्त दिखे। अस्पताल में परिजनों की गतिविधियाँ जितनी बढ़ीं, भैया उतने ही निश्चेष्ट होने लगे। उनके बेड के साथ लगी मशीनों की आवाज तेज हो रही थी, वे शांत होते जा रहे थे।

गोल्डी और सायना का धैर्य जबाब देता जा रहा था। गोल्डी तो डॉक्टरों से उलझ गया कि हमारे डैड हैं और हमें ही मिलने नहीं दे रहे।

आज पाँचवाँ दिन था। वे न बोले, न हाथ हिलाया। असल में रात उनका डायलिसिस कर दिया था जिससे ठीक होने के बजाय और सुस्त हो गए। शाम को उन्होंने हाथ भी नहीं पकड़ा

प्रताप का। उसने हाथ-पैर टोहे तो ठण्डे लगे। डायलिसिस के बाद डाक्टरों ने कह दिया था कि इनका दिमाग डैड होता जा रहा है। अब कोमा में चले गए हैं जहाँ से वापिस आना कठिन है। इनके सारे अंग अब मशीनों के सहारे जीवित हैं। मशीनों की टूँ-टूँ आवाज से ही पता चला रहा था कि अंग-प्रत्यंग अभी जिंदा हैं।

छठे दिन तो आँखें भी एकटक ऊपर की ओर हो गईं। पुतलियाँ स्थिर हो गईं।

'क्यों न इन्हें घर ले जाएँ!' प्रताप ने डरते-डरते सुझाव दिया।

'ना-ना। कैसी बातें कर रहे हैं चाचू! देखते नहीं यहाँ कितनी फेसिलिटी है। मिनट-मिनट में डॉक्टर चैक कर रहे हैं। इतनी लाइफ सेविंग ड्रग्ज हैं। मशीनें लगी हैं। इन्हें हटाया तो ये गेट तक नहीं पहुँच पाएँगे। यहाँ तो इतना इंतजाम है कि आदमी को मरने पर भी कई दिन जिंदा रख सकते हैं।

देखते-देखते शाम हो गई।

जीवन साँसों पर नहीं, यन्त्रों पर टिका है। जब तक साँस है, तब तक आस नहीं है जीवन। जब तक यन्त्र हैं तब तक है जीवन। जीवन तो क्या मरण है तब तक। एक मरण तो पहले ही हो चुका जब दिमाग चेतनाशून्य हुआ। दूसरा मरण तब जब यन्त्र हटे। मरण के बाद दूसरा मरण हुआ।

एक मृत्यु है, एक मृत्यु से पहले मृत्यु।

उस क्षण संयोग से प्रताप ही था वहाँ। बाकी सब फूड प्लाजा में थे। भैया का एक दोस्त आया था, उसे भी साथ ले गए थे। ठीक सात बजे का ही टाइम था।

प्रताप ने हाथ छुए। एकदम ठण्डे। पैर, टाँगें, सब ठण्डे। साँस तो जैसे चल ही नहीं रही थी। सिर पर हाथ रखा, कुछ गर्म था। सिर पर हाथ रखते ही वे थोड़ा हिले। गले में जैसे कुछ फँसा था। 'ऊँ- ऊँ' करते मुँह से थोड़ा सा थूक निकला और एक ओर को लुढ़क से गए।

यन्त्र एक लम्बी धुन में बज उठे।

एक डॉक्टर, जो दूसरे मरीज को देख रहा था, दौड़ा हुआ आया। उसने नब्ज टटोली, आँखें खोल देखीं। फिर दोनों हाथों से छाती दबाने लगा मगर मुँह खुल गया भैया का। मशीनें, जो लम्बी धुन में बज उठीं थीं, धीमी पड़ गईं और एकाएक बंद हो गईं। दिल का ग्राफ टूट गया।

डॉक्टर ने सिर हिलाया। प्रताप ने फट से जेब से पंचरत्न की पुड़िया निकाली और डॉक्टर को पूछा-'मुँह में डाल दूँ!'

'यस! यस! व्हाई नॉट!'

प्रताप ने मन में रामनाम जपते हुए पुड़िया मुँह में उड़ेली और खटाक से मुँह बंद कर दिया।

उसी समय फूड प्लाजा से सभी आ गए। नर्स ने सब को बाहर जाने का आदेश दिया यहाँ रोना-धोना मना है। और भी सीरियस पेशेंट हैं।

सब बाहर आ गए। भाभी और सायना कुर्सी पर बैठ रोनें लगीं। डोंट वरी मॉम, आई एम देअर, गोल्डी दिलासा देने लगा।

'अब इन्हें घर ले चलते हैं।' प्रताप के मुँह से निकला।

'नो-नो घर क्या करेंगे। इन्हें यहाँ मारचुरी में ही रखवा देते हैं। कुछ चार्जिज लेते हैं ये। वैसे भी बॉडी लेने के लिए अभी कई फॉरमेलिटीज होंगी। सुईयाँ, नालियाँ हटाने से बॉडी से दो-तीन घण्टे खून रिसता रहता है। ये लोग सारी ड्रेसिंग कर वहाँ एसी में रखेंगे। सुबह आपको एकदम साफ-सुथरे और तरोताजा मिलेंगे फिर चाहे यहीं से।' वेद के एक मित्र ने कहा।

सभी घर वापिस आ गए। कुछ पड़ोसी और जानकार बैठने आए और सुबह का टाइम पूछ कर चले गए।

'शरीर तो आखिरी टैम घर लाया जाता है। पंचरत्न डाला आपने!' कमरे में आते ही पत्नी ने पूछा तो सिर हिलाता फफक् कर रो पड़ा प्रताप।

पूरी रात नींद नहीं आई प्रताप को। भैया का बिना किसी जख़्म के साफ-सुथरा नंगा शरीर, तरोताजा चेहरा दिखता रहा। इकहरी सफेद चादर में जैसे उन्हें एसी में ठण्ड लग रही थी।

कल हम दाह संस्कार के बाद चले जाएँगे। भैया वह नींद में बुदबुदाया।

'अभिनंदन'
कृष्ण निवास लोअर,
पंथा घाटी शिमला-171009
मो.-94180-85595

नई सोच

- कुसुम रानी नैथानी

जन्म - 30 अप्रैल 1958।
शिक्षा - एम.ए., एम.एस.सी., एम.एड., एल.एल.बी., पीएच.डी।
रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।
सम्मान - शैलेश मटियानी शैक्षिक उत्कृष्टता राष्ट्रपति पुरस्कार।

थकी हारी आशा ऑफिस का काम निपटाकर घर पहुँची। शाम के साढ़े छः बज गए थे। घर में घुसते ही सामने सोफे पर उसके पति राकेश गंभीर मुद्रा में बैठे थे। उनके हाथ में बैंक की पासबुक थी। आशा पर नजर पड़ते ही उन्होंने अपना प्रश्न दाग दिया-'मैं भी तो जानूँ आखिर तुम्हारी कमाई का सारा रुपया जाता कहाँ है?'

आशा का जी चाहा राकेश के हाथ से पासबुक छीन कर पटक दे। भला यह भी कोई समय है प्रश्न पूछने का। घर आते ही न पानी के लिए पूछा और न ही उसकी दिनचर्या के बारे में। बस रुपए का तकाजा करने लगे। मन के भावों को किसी तरह दबाकर बिना उत्तर दिए आशा ने कंधे पर लटका बैग एक किनारे रखा और सीधे किचन की ओर बढ़ गई। उसने फ्रिज से निकालकर ठंडा पानी पिया तो उसे थोड़ी राहत मिली। राकेश की निगाहें लगातार आशा का पीछा कर रही थीं। पिछले तीन घंटे से वह एक ही प्रश्न पर अटका हुआ था। थोड़ी देर में आशा चाय बना कर ले आई। राकेश ने अपना प्रश्न दोहरा दिया और बोला-'तुमने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया।'

पलट कर आशा ने भी प्रश्न दाग दिया-

'लगता है मकान का बजट कुछ ज्यादा बढ़ गया।'

'आज ठेकेदार फिर रुपए माँगने आया था। मैं उसे क्या जवाब देता? पासबुक के हाल तुम्हें पता ही हैं। घर का खर्च आज भी बाबू जी की पेंशन से चलता है फिर तुम्हारी तनख्वाह से।'

ऑफिस से आते ही आशा किसी बहस में नहीं पड़ना चाहती थी। उसके मन में भी कहने को बहुत कुछ था पर वह इस समय बात बढ़ाना नहीं चाहती थी।

'बाबू जी कहाँ हैं?'

'बाजार गए हैं। आशा मैं आजकल बहुत परेशान हूँ पता नहीं हमारा घर बनकर कब तैयार होगा।'

'जल्दी तैयार हो जाएगा। थोड़ा सब्र रखो राकेश। साल बीत गया है। बस कुछ महीनों की बात है।'

'समय तो कट ही जाएगा पर उसके लिए रुपया कहाँ से आएगा?'

'मैं अपनी ओर से पूरी कोशिश कर रही हूँ कि जल्दी रुपयों का इंतजाम कर दूँ।'

'अपने काम के मामले में तुम बहुत सुस्त हो आशा।'

'बात रुपए की है राकेश। एक साधारण से टाइपिस्ट के लिए इतने सारे रुपयों का इंतजाम करना आसान काम नहीं है। तुम तनाव मत लो। मैं कुछ न कुछ इंतजाम करती हूँ।' 'लेकिन कब? तुम मेरी परेशानी देख रही हो।'

'मैं समझती हूँ तुम्हारी परेशानी। चलो छोड़ो इस वक्त इस बात को। बाहर खुली हवा में घूमने चलते हैं।' आशा बातों के रुख को मोड़ने के लिए बार-बार प्रयास कर रही थी लेकिन राकेश का मूड इस समय उसके साथ बहस करने का था।

अपने को किसी तरह संयत कर आशा राकेश के साथ बाहर आ गई। रास्ते में राकेश का दोस्त मोहन मिल गया तो आशा ने राहत की साँस ली। उसका ध्यान कुछ समय के लिए रुपयों से हटकर मोहन पर चला गया। आशा राकेश के व्यवहार से बहुत आहत होती लेकिन गृहस्थी बचाने की खातिर अक्सर मन के भावों को मन में दबाकर दुनियादारी निभाने के लिए सहज बनने की कोशिश करती।

कभी-कभी उसके मन के भाव विद्रोह पर उतर आते।

'तुम क्यों करती हो इतना समझौता?'

'क्या करूँ दो परिवारों की इज्जत जुड़ी होती है औरत के साथ।' वह अपने आप से उत्तर देती।

'दुनिया में तुम ही एक अकेली औरत नहीं हो। तुम्हारे भी अपने अरमान हैं। क्या यही जिंदगी है? घर और ऑफिस के बीच दौड़ते हुए पति और बॉस के प्रश्नों को झेलती रहो।'

उसका मन विद्रोह करता। दो घंटे घर से बाहर बिता कर वे दोनों वापस लौट आए थे। घर पर उस वक्त बाबू जी टीवी पर समाचार देख रहे थे। राकेश भी उनके पास बैठकर टीवी देखने लगे। आशा किचन में डिनर की तैयारी में लग गई। रात करीब दस बजे खाना खाकर उसने रसोई के काम निपटाए। थकी-हारी वह बेडरूम में आई। बिस्तर पर आते ही उसने तुरंत राकेश से गुड नाइट कहा और कमरे की बत्ती बुझा दी।

एक दिन आशा की समझदारी और सहनशीलता के कारण विवाद से बच गया था। वह यह बात अच्छी तरह जानती थी कि जल्दी ही यह प्रश्न कई गुना वेग से फिर उस पर प्रहार करेगा। उसके लिए वह मानसिक रूप से तैयार थी। एक हफ्ते बाद वही हुआ जिसका आशा को डर था। शाम को ऑफिस से घर लौटते ही राकेश ने आशा पर फिर वही प्रश्न दाग दिया।

'कई दिनों से मैं तुमसे रुपयों का हिसाब माँग रहा हूँ। तुम जवाब देने से क्यों कतरा रही हो?'

आशा का जी चाह रहा था वह चीख कर पूछे कि तुम हिसाब माँगने वाले होते कौन हो? कभी एक रुपया कमा कर रखा है पत्नी या पिता के हाथ में। पर ऊपर से वह शांत बनी रही।

'मेरी बहन शोभा की शादी तय हो गई है। उसी के लिए मैंने कुछ रुपए माँ को दिए हैं। इतना हक उनका भी है अपनी कमाऊ बेटी पर।'

'तुमने यह बात मुझे पहले क्यों नहीं बताई?'

'शादी तय हो जाती तब बता देती। मैं इस गलतफहमी में थी कि मेरी कमाई पर मेरा हक है। उस पर उनका हक है जिन्होंने कभी रुपए का मूल्य ही नहीं समझा। पचास हजार रुपए कोई बहुत बड़ी रकम नहीं है।'

'मकान के काम के लिए एक रुपए का भी बहुत मूल्य है। भविष्य में फिर कभी ऐसी गलती न दोहराना वरना मुझसे बुरा कोई न होगा।'

'तुम यह बात अच्छी तरह से जानते हो राकेश फिर भी बार-बार पूछ रहे हो?'

'पत्नी की मनमानी पर रोक लगाने के लिए यह सब करना पड़ता है।' राकेश गुस्से से बोला।

'ठीक है थोड़ी देर सुस्ताकर सारा हिसाब तुम्हें बता देती हूँ।' आशा बोली और बैग एक किनारे सरका कर किचन में चली गई। राकेश के एक तरफा प्रहार आशा से टकराकर निष्क्रिय साबित हो रहे थे। इससे उसका रोष और बढ़ता जा रहा था। किचन में चाय बनाते हुए आशा आज से ठीक पंद्रह साल पहले उस जगह पहुँच गई जब आशा की शादी की बात राकेश से चल रही थी।

माँ ने इस बारे में आशा की राय जाननी चाही थी। वह बोली - 'आशा रामप्रसाद जी का बेटा राकेश बहुत होशियार है। सिविल सर्विस परीक्षा की तैयारी कर रहा है। तेरे लिए यह रिश्ता बहुत अच्छा रहेगा।'

'माँ अभी राकेश कुछ कमाता है या नहीं।' आशा ने पूछा।

'नौकरी के साथ पढ़ाई नहीं हो पाती। रामप्रसाद जी कमा रहे हैं अपनी गृहस्थी के लिए। उनके लिए नौकरी की ज्यादा अहमियत नहीं है।'

'यदि नौकरी उनके लिए मायने नहीं रखती तो वह नौकरी वाली बहू क्यों ढूँढ़ रहे हैं?' आशा बोली तो माँ ने चौंक कर उसे देखा। वह बोली-'आशा तू बहुत सयानी हो गई है।'

'माँ घर से बाहर निकलने पर दुनिया में क्या हो रहा है उसकी खबर रहती है मुझे।'

'बेटी तेरे तो भाग्य खुल गए हैं जो इतने अच्छे घर का रिश्ता आया है वरना राकेश के लिए रिश्तों की कमी नहीं है।'

'यदि वह सिविल सर्विस की परीक्षा पास नहीं कर पाया तो क्या होगा?' आशा ने पूछा।

'इतने पढ़े-लिखे लड़के के लिए नौकरी की कमी थोड़े ही है। कोई और नौकरी कर लेगा। इस रिश्ते के लिए मना मत कर बेटी। अपनी उम्र देख पूरे तीस बरस की हो गई है। तेरे साथ वाली सहेलियों के बच्चे भी स्कूल जाने लगे हैं।' माँ फिर से वही अपना पुराना रोना लेकर बैठ गई। आशा को समझ नहीं आ रहा था इस रिश्ते के लिए हाँ कहे या न। हर दृष्टिकोण से आशा का परिवार राकेश के परिवार से उन्नीस था, सिवाय उसकी नौकरी को छोड़कर। उसे समझ नहीं आ रहा था रामप्रसाद जी इतने साधारण परिवार में अपने बेटे का रिश्ता करने के लिए क्यों राजी हो गए? माँ की जिद के आगे आशा ने शादी के लिए हाँ कर दी। शुभ मुहूर्त देखकर आशा की शादी धूमधाम से राकेश से हो गई। शादी के बाद दोनों खुश थे। आशा की नौकरी से ससुराल में किसी को ऐतराज न था। राकेश अपनी कांपिटिशन की तैयारी में लगे रहते।

साल भर में आशा ने एक प्यारे से बेटे अनुज को जन्म दिया।

रामप्रसाद जी खुशी से फूले नहीं समा रहे थे। उन्होंने पोते का नामकरण बहुत धूमधाम से किया। राकेश को मेहनत के अनुरूप सफलता नहीं मिल रही थी। तीन साल लगातार मेहनत करने के बाद भी जब वह सफल न हो सका तो उसने परीक्षा न देने का फैसला कर लिया। रामप्रसाद जी ने बेटे को बहुत समझाया– 'बेटा हार मान लेना समस्या का समाधान नहीं है। तुम्हें सिविल सर्विस की परीक्षा के लिए एक बार फिर से कोशिश करनी चाहिए।'

'पापा सिविल सर्वेंट बनना मेरे भाग्य में नहीं है। यह बात मेरी समझ में ठीक से आ गई है।'

'राकेश हमारे कर्म ही भाग्य का निर्माण करते हैं।'

'आपके कहने का मतलब है मैं निकम्मा हूँ।' राकेश तुनक कर बोला।

'मेरा आशय यह नहीं है। कर्म पर और अधिक ध्यान दो। भाग्य खुद व खुद सँवर जाएगा।' बाबू जी की नसीहत राकेश को जरा भी अच्छी न लगी। उसने अपना फैसला तुरंत सुना दिया था।

'पापा मैं एक ही बात जानता हूँ। या तो आएएस आफिसर बनूँगा या फिर बिजनेस करूँगा। और कुछ करने के लिए मुझे न कहिएगा।'

राकेश से इस समय बात करना बेमानी था। आशा पहले ही बाप–बेटे के बीच चल रही बातचीत के बीच नहीं आती थी। राकेश ने अब परीक्षा देने से तौबा कर ली। रामप्रसाद जी के पास इतना रुपया न था कि वे बेटे की इच्छानुसार कोई बड़ा बिजनेस शुरू करते। फिर क्या था? राकेश ने हर काम से अपना हाथ खींच लिया। बड़ी मुश्किल से रामप्रसाद जी ने उसे ठेकेदार बनने के लिए राजी किया। पहले ही काम में उसे घाटा हो गया। उसके बाद कभी किसी ने उसकी मर्जी के खिलाफ राकेश को कुछ करने की सलाह न दी।

रामप्रसाद जी कि पेंशन और पत्नी आशा की तनख्वाह से उनका गुजारा आराम से हो रहा था। रामप्रसाद जी की सलाह पर आशा ने अपने बेटे अनुज का एक हॉस्टल में दाखिला करा दिया था। वह साल में दो बार घर आता। कभी–कभी वे सब उससे मिलने हॉस्टल चले जाते। ससुर जी के सहयोग से आशा घर और नौकरी में पति की अकर्मण्यता के बाद भी सही तालमेल बिठाए हुए थी। वह दिन भर खाली बैठे रहते। राकेश के दिमाग को चैन न था। एक छोटे से जमीन के टुकड़े पर नया घर बनाने के लिए वह बाबू जी पर कब से जोर डाल रहा था।

उनकी रजा मंदी पर आशा भी मकान बनाने के लिए तैयार हो गई। कंस्ट्रक्शन मटेरियल के बढ़ते दाम के कारण आशा का बजट गड़बड़ा गया। उस पर राकेश के ताने उसे अंदर तक तोड़ रहे थे। चाय तैयार हो गई थी। आशा अतीत से उबर कर वर्तमान में आ गई। चाय की ट्रे के साथ वह ड्राइंग रूम में आई। चाय का कप हाथ में लेकर राकेश बोला–'अब कहो अपनी सफाई में क्या कहना चाहती हो।'

'तुम ही बताओ मैं क्या कहूँ? सब कुछ तुम्हारी नजरों के सामने हो रहा है।'

'यह मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं है।'

'तो सुन लो इंसान की केवल पेट भर खाने के अलावा और भी बहुत सारी जिम्मेदारियाँ होती हैं जिनके लिए रुपयों की जरूरत पड़ती है।'

'मैं भी जानूँ तुम्हारी और जिम्मेदारियों के बारे में।'

ताना मारते हुए राकेश बोला। 'जिसने परिवार की जिम्मेदारी नहीं निभाई वह और जिम्मेदारी को क्या समझेगा?'

'तो क्या मैं गैर जिम्मेदार हूँ।'

'जान बूझकर जिम्मेदारी न उठाने और गैर जिम्मेदार होने में बड़ा फर्क होता है राकेश।'

'मुझे तुमसे यह उम्मीद नहीं थी आशा।'

'इसीलिए कई दिनों से मैं तुम्हारे प्रश्नों को टाल रही थी। मुझे विश्वास था तुम प्रश्न तो कर सकते हो लेकिन उत्तर झेलने की सामर्थ्य तुममें नहीं है।'

'और भी क्या–क्या कमियाँ हैं मुझ में? सब बता दो।'

'मैंने कभी तुम्हारी कमियों पर अपना ध्यान केंद्रित नहीं किया। मैं बस इतना जानती हूँ कि मैंने सब कुछ जानकर तुमसे विवाह किया था। तुम जैसे तब थे आज भी वैसे ही हो। हाँ मेरी जिम्मेदारियाँ जरूर बढ़ गई हैं।' आशा जुबान को संयत करते हुए बोली।

'ये जिम्मेदारियाँ केवल तुम्हारी ही नहीं हैं, पूरे परिवार की हैं।'

'पर उन्हें निभाने के लिए रात दिन मेहनत कौन करता है? इसके बारे में सोचा है कभी तुमने?'

'रुपयों की धौंस जमाने लगी हो तुम आशा।'

'तुम जो चाहे सोच लो। बिना रुपयों के कोई काम नहीं कराए जा सकते। मैं इतना जानती हूँ।'

'मैं ने रुपयों का तकाजा क्या कर लिया तुमने आसमान सिर पर उठा लिया।'

'तुम्हारे तकाजे से नहीं विश्वास की कमी के कारण मुझे यह सब कहने के लिए मजबूर होना पड़ा है। मैं इस घर के लिए औरत और मर्द दोनों की जिम्मेदारी निभा रही हूँ और बदले में तुम्हारा असहयोग भी झेल रही हूँ। रुपयों के बारे में जानना चाहते हो तो सुनो घर का किराया, बेटे की हॉस्टल की फीस, नाते-रिश्तेदारी सब इसी तनख्वाह से निपटाए जाते हैं। बाबू जी बस अपने बेटे के परिवार के खाने का प्रबंध करते हैं।'

'यह सब सालों से निभाए जाते रहे हैं। इस बार कौन सी नई बात हो गई?'

'मेरी बहन शोभा की शादी तय हो गई है। उसी के लिए मैंने कुछ रुपए माँ को दिए हैं। इतना हक उनका भी है अपनी कमाऊ बेटी पर।'

'तुमने यह बात मुझे पहले क्यों नहीं बताई?'

'शादी तय हो जाती तब बता देती। मैं इस गलतफहमी में थी कि मेरी कमाई पर मेरा हक है। उस पर उनका हक है जिन्होंने कभी रुपए का मूल्य ही नहीं समझा। पचास हजार रुपए कोई बहुत बड़ी रकम नहीं है।'

'मकान के काम के लिए एक रुपए का भी बहुत मूल्य है। भविष्य में फिर कभी ऐसी गलती न दोहराना वरना मुझसे बुरा कोई न होगा।' चेतावनी देते हुए राकेश बोला और बात खत्म कर घर से बाहर चला गया।

आशा को काटो तो खून नहीं। उसे राकेश से ऐसे व्यवहार की कतई उम्मीद न थी। कहने को गुलामी की प्रथा सदियों पहले खत्म हो गई थी पर यहाँ पर मूर्त रूप में उसके सामने खड़ी थी। क्षण भर को आशा को लगा उसके हाथ और पैर किसी ने बेड़ियों में जकड़ दिए हैं और राकेश उसे चाबुक हाथ में लिए काम के लिए खदेड़ रहा है। तभी उसके अंदर की स्त्री जाग गई और सिर उठा कर बोली-'आशा तू एक गुलाम नहीं है। नई सदी की नारी है। कब तक अपने को इसी तरह बेड़ियों में जकड़े हुए देखती रहेगी। इन्हें काटकर फेंक और खुलकर जीना सीख। तू जितना दबेगी तुझे उतना ही दबाया जाएगा।'

आशा ने सोच लिया भविष्य में वह किसी की ज्यादतियाँ नहीं सहेगी और इसका भरपूर विरोध करेगी। नई सोच के साथ वह अपने को बहुत हल्का महसूस करने लगी।

318-ए, ओंकार रोड,
चुखुवाला, देहरादून-248001 (उ.खं.)

रचनाकारों से अनुरोध

- *मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।*
- *रचना फुल स्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित मूल प्रति में भेजें।*
- *रचनाकार/लेखक अपना पूरा परिचय, पता, पिनकोड, फोन नंबर एवं फोटो साथ भेजें।*
- *डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचना वापस भेजी जा सकती है। अतः लेखकों से निवेदन है कि लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।*
- *'अक्षरा' में प्रकाशन हेतु रचना भेजने के बाद उसे अन्यत्र प्रकाशन हेतु न भेजें। यदि अन्यत्र प्रकाशित हो रही हो तो कार्यालय को अवश्य सूचित करें।*
- *आप अपनी रचनाएँ* **myakshara18@gmail.com** *पर ई-मेल द्वारा भी भेज सकते हैं।*

पूर्ण-बंदी

- प्रमोद भार्गव

जन्म - 15 अगस्त 1956।
जन्म स्थान - शिवपुरी (म.प्र.)
शिक्षा - स्नातकोत्तर।
रचनाएँ - विभिन्न विधाओं में सात पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - डॉ. धर्मवीर भारती सम्मान सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

प्रज्ञा भी थाली चम्मच बजाने अपने अपार्टमेंट की गैलरी में पहुँच गई। पाँच बजते ही विभिन्न ध्वनियाँ गूँजने लगीं। उनके सामने रहने वाले मिश्रा जी शंख फूँक रहे थे। प्रज्ञा देख रही थी, ऐसा कोई घर, बाल्कनी और पोर्च नहीं था, जहाँ रसोई के बर्तन वाद्य-यंत्र की भाँति न बजाए जा रहे हों? जब बीस मिनट पूरे हुए तो टंकारें कम हुईं और मिश्रा जी बोले, 'प्रज्ञा जी आप भी?'

'हाँ क्यों नहीं प्रधानमंत्री के निर्देश पालन में संकोच कैसा? मैं संस्कृत की विद्यार्थी रही हूँ इसलिए जानती हूँ, घंटा-घड़ियाल और शंख-ध्वनि से जो तरंगें उत्पन्न होती हैं, वे खतरनाक जीवाणु-विषाणुओं को नष्ट करती हैं।'

'अरे वाह, प्रज्ञा जी!'

'हमारे वैदिक ग्रंथों के अनुसार, पृथ्वी की उत्पत्ति के समय पैदा हुई पहली ध्वनि 'ऊँ' थी। इसने समूचे ब्रह्माण्ड को प्रति-ध्वनित कर प्रकंपित किया था। इससे सूक्ष्मतम अणु विभाजित हुए और ऊर्जा का जन्म हुआ। इसी ऊर्जा के संघटित परिणाम ग्रह-नक्षत्र व संपूर्ण सृष्टि हैं।' चुस्त-दुरुस्त और इकहरे बदन की छरहरी प्रज्ञा ने मिश्रा जी को ताड़ा तो वह सहम गए और कोई सार्थक उत्तर देने की बजाय बोले, 'आपको तो किसी कॉलेज में संस्कृत या दर्शन शास्त्र की प्रोफेसर होना चाहिए था?'

'हाँ, यदि मैं इस फिल्म-टीवी की लाइन में आई न होती तो कदाचित संस्कृत की प्राध्यापक ही होती और शायद इस व्यवसाय से अध्यापन का कार्य ज्यादा बेहतर तो होता ही, संतोषप्रद भी होता? लेकिन जीवन अपने सोचे अनुसार थोड़े ही चलता है?'

'हाँ, सो तो है।' झेंपे मिश्रा जी, कोई सार्थक उत्तर नहीं दे पाए।

'चलो अच्छा हुआ मिश्रा जी, आज बर्तन बजाने के संदेश पालन में बहुत दिनों बाद आपसे मुलाकात और बातचीत हो गई। तालाबंदी बनी रहती है तो फिर मिलते हैं।' और प्रज्ञा अपने फ्लैट में लॉकडाउन हो गईं।

इस भीड़ भरे आपाधापी से जूझ रहे शहर में प्रज्ञा फिल्म व टीवी के कारोबार से जरूर जुड़ी हैं, लेकिन उन्होंने अपने हाथ इतना अधिक काम कभी नहीं लिया कि खुद से मिलने, खुद से वार्तालाप करने की फुरसत ही न मिले। अब इस कदाचित लंबी चलने वाली तालाबंदी में तो फुरसत ही फुरसत! इस एकांतवास में तो बस गुजरे जमाने की यादें ही समय बिताने की पर्याय बनी रहेंगी। अकेलेपन के काटने से बचने का यही सार्थक उपाय है। काश! उसने स्वेच्छा से यह एकाकी रहने की जिद्द न अपनाई होती तो उसका भी अपना भरा-पूरा परिवार होता? एक अदद पति होता और दो-तीन बच्चे होते? हालाँकि उसने अपनी कोख से एक बेटी को जन्मा है, लेकिन अविवाहित रहते हुए? काश! वह सुशांत के साथ लिव-इन-रिलेशनशिप में न रही होती? रही भी तो इस बच्ची को न जन्मा होता? तो आज जिन्दगी चिंतामुक्त और बहुत कुछ सुखांत होती? किंतु अब बढ़ती उम्र और घटते काम में किसी ऐसे साथी की तलाश में वे हैं, जो उन्हें आर्थिक सुरक्षा के साथ, भरपूर प्यार भी दे।

इस छाया की परिकल्पना में प्रज्ञा सोईं तो सुबह उनकी नींद दूध वाले के कर्कश उद्घोष से टूटी। वे उनींदी सी कुनमुनाई, 'उफ! इस देशबंदी ने तो हैरान कर दिया, दूध, सब्जी या फिर किराने का समान लेना हो तो मोबाइल वेन के आने पर नीचे दौड़ो! बाइ दवे न ला पाए तो लॉकडाउन के चलते बाजार से तो मिलने से रहा?' न चाहते हुए भी वह कंबल फेंक उठीं। उनके माथे पर बेचैनी की सलवटें थीं। भगोनी उठाई और दरवाजा खोल गैलरी में आईं। तभी सामने वाले फ्लैट का द्वार खोल मिश्रा जी नमस्ते करते हुए बोले, 'आप रहने दीजिए, मैं दूध लेने जा ही रहा हूँ, आपका भी लिए आता हूँ। कितना चाहिए?' उन्होंने भगोनी अपने हाथ में ले ली।

'एक लीटर। ये पैसे लीजिए।' प्रज्ञा की जैसे बिन माँगे, मुराद पूरी हुई।

'ले लेंगे। पैसे कहाँ जाते हैं?

'चलिए ठीक है। लेकिन चाय मेरे साथ ही पीजिएगा।'

'जरूर!' मिश्रा लिफ्ट की ओर बढ़ गए।

दरअसल, प्रज्ञा ग्लैमर की दुनिया में थीं। इसलिए उन्हें जब चाहे सोसायटी के लोगों के बीच जाना भाता नहीं था। खासकर औरतें सीरियलों में किए अभिनय की तारीफ करने लगतीं और बच्चे ऑटोग्राफ के लिए विनम्र विनय के लहजे में मचलते। लेकिन क्या करे, देशबंदी में यातायात के साधन बंद हैं, गोया नौकर-चाकर काम पर आ नहीं पा रहे हैं। अन्यथा उसे खरीददारी के लिए नीचे जाने की जरूरत ही क्या?

परंतु आज मजबूरी ने प्राथमिकताएँ बदल दी हैं और अनायास सामुदायिकता बढ़ रही है। मिश्रा जी उनके लिए दूध ला रहे हैं और वे उन्हें अपने हाथों की बनी चाय पिलाने के लिए आमंत्रित कर रही हैं। यह तो वाकई गृह प्रवास में पड़ोसियों से आत्मीय संबंध बना लेने का सुखद संयोग है।

प्रज्ञा ने चाय इंडेक्शन पर चढ़ा दी। ब्रश किया। चेहरे को मलकर धोया। तौलिए से रगड़कर पोंछा। आदमकद दर्पण के सामने पहुँच, चेहरे पर स्प्रे किया। टिश्यू पेपर से नमी को सोखा। बाल सँवारे। पहने हुए नाइट-शूट को इधर-उधर से खींच सलवटें ठीक कीं। संतुष्टि के बाद सोचा, अब हुलिया कुछ-कुछ ऐसा हो गया है कि किसी के सामने सुकून से बैठा जा सकता है।

द्वार-घंटी बजी। वह जान गई मिश्रा जी आ गए। हालाँकि प्रज्ञा दरवाजा खुला छोड़ आई थी। लेकिन किसी के घर में प्रवेश के पहले द्वार खटखटा कर आना ही सभ्य तरीका है। प्रज्ञा के द्वार तक पहुँचने से पहले ही मिश्रा जी फाटक ठेल, देहरी लाँघ चुके थे। प्रज्ञा ने भगोनी हाथ में लेकर, मिश्रा जी को सोफे पर बैठने का इशारा किया और रसोई में चली गईं। इस मुश्किल घड़ी में मिश्रा जी उसके लिए मददगार साबित हुए, यह सोच उसे पुलक भरी तरल अनुभूति हुई।

थोड़ी ही देर में प्रज्ञा चाय की ट्रे के साथ उपस्थित थीं। ट्रे टेबिल पर रखते हुए सोफे पर बैठ गईं। उन्होंने बड़े से रंगीन मगों में केटली से चाय भरी। एक मग मिश्रा जी की ओर बढ़ाती हुईं प्रसन्नचित्त लहजे में बोलीं, 'लीजिए, गरमागरम चाय पीजिए।'

'वाह, अजीब सुखद संयोग है कि लॉकडाउन में आप जैसी हस्ती की बनी चाय पीने का अवसर मिल गया। हालाँकि आपके यहाँ चाय तो कई मर्तबा पी है, लेकिन वह कामवाली के हाथ की बनी होती थी।'

'मिश्रा जी यह हस्ती-वस्ती महज आडंबर है। इस चका-चौंध की दुनिया में अपना स्टेटस और न्यूज वैल्यू बनाए रखने के लिए तमाम आडंबर रचने होते हैं। ग्लैमर तो सिर्फ देखने वालों की नजर में है। वरना आप देख नहीं रहे, कैसे एक अदृश्य सूक्ष्म जीव ने अमेरिका जैसी महाशक्ति को हिला कर रख दिया है। बगीचों का देश इटली उजड़ रहा है। फ्रांस, स्पेन, ब्रिटेन, जर्मनी, रूस, तुर्की और ईरान का भी बुरा हाल है। लगता है, प्रकृति के आगे, जैसे मनुष्य और समाज की दिनचर्या ठहर गई है। मालूम नहीं यह ठहराव कब गति पकड़े?' भविष्य के प्रति आशंकित प्रज्ञा प्रश्न उछालकर ठहर गई।

'यह सही है, तत्काल ठहराव आ गया है। संभव है, इस स्थिरता में कल बदलाव का विचार पनपे? इस विषाणु-त्रासदी के भी कोई सकारात्मक परिणाम निकलें? साहचर्य के सरोकार बढ़ें? मनुष्य की मनुष्य के प्रति अंतरंग आत्मीयता प्रगाढ़ हो? हमारे जो बच्चे यूरोपीय देशों में श्रेष्ठ रोजगार के भ्रम में चले गए हैं, संभवत: उनकी वापसी हो, क्योंकि स्वास्थ्य के मोर्चे पर इन देशों के विकसति होने का भ्रम टूट रहा है। अमेरिका जैसे देश ने हमसे हाइड्रोक्सी-क्लोरोक्वीन की गोलियाँ ली हैं। क्या इससे इनके विकसित देश होने पर सवाल नहीं उठता?' मिश्रा जी ने खाली मग टेबिल पर रखते हुए अपनी धारणा प्रगट की।

प्रज्ञा ने मिश्रा जी के मग में चाय उड़ेलते हुए कहा, 'आज इस तालाबंदी में अनुभव हो रहा है कि मशीन बनी जिंदगी सिर्फ खाने-कमाने भर के लिए नहीं है। इस आपाधापी के बीच कैरियर बनाए रखने की चुनौतियों में जीवन की स्वाभाविक मौज-मस्ती कहीं गुम हो रही है।'

'दरअसल, जिंदगी रोमांच माँगती है। कला, साहित्य और व्यवसाय की चुनौतियाँ भी एक रोमांच ही है। किंतु आज धरती पर यमराज बनकर घूम रहे इस वायरस ने हम जैसे अकेलों को घर में कैद कर रोमांच पर विराम लगा दिया है। बिना रोमांच के निराश जिदंगी अवसाद में बदल जाने का डर मन में पैदा कर रही है।' मिश्रा जी जाने के लिए खड़े हो गए।

मिश्रा जी के जाने के बाद प्रज्ञा ने दरवाजा तालाबंद किया और अंतर्मन में मिश्रा जी का कहा संवाद दोहराने लगी, 'इस वायरस ने हम जैसे अकेलों को घर में कैद कर रोमांच पर विराम लगा दिया है।' तो क्या मिश्रा जी की मनोदशा भी कोई दुखती रग की गिरफ्त में है? क्या वे पत्नी सुप्रिया की मृत्यु के बाद जिदंगी को उस चुइंग-गम की तरह चबाए जा रहे हैं, जिसकी मिठास तो चली गई, फिर भी उसे चबाया जा रहा है। वे तो इस चुइंग-

गम को बीते ढाई दशक से चबाए चली आ रही हैं।

उनींदी, अनमनी सी प्रज्ञा पलंग पर पसर गई। उन्होंने लंबा हाथ कर कारवां रेडियो का स्विच ऑन किया। फिर मुलायम तकिए को बाँहों में भरकर लेट गईं। जैसे कोई पुरुष बाहुपाश में हो। तभी गजल का मुखड़ा गूँजा, 'शमां जलाए रखना, जब तक कि मैं न आऊँ, खुद को बचाए रखना।' अनायास ही उनके होंठ बुदबुदाए', मैंने तो पूरे पच्चीस साल शमां जलाए रखी, लेकिन तुम ही नहीं आए। इतने झूठे और फरेबी निकले कि बारंबार भरोसा दे-दे कर छलते रहे। मन को भी, तन को भी। वाक्पटु इतने थे कि तुम्हारे भावपूर्ण शब्द जाल में, मैं उलझती चली गई। जबकि कई मर्तबा मेरे बुद्धि-विवेक सचेत करते कि तुम समुद्र में डाल दिए गए जाल में बिंधे ऐसे दाना हो, जिसे मैं मछली बन पाने को स्वयं उद्यत हो रही हूँ।' फिर वह स्वयं स्मृति-पटल पर स्मृतियों को बलपूर्वक उधेड़, जिदंगी को समझने और भूलों से सबक लेने के उपक्रम में तल्लीन हो गईं।

देसी नुस्खे से तैयार दवा का गिलास प्रज्ञा के होंठों की ओर बढ़ा दिया। प्रज्ञा ने एकाएक दवा नहीं पीने की मंशा से सिर पीछे किया, किंतु मिश्रा जी ने अनायास ही सिर के पीछे बाँए हाथ की हथेली लगाकर थाम लिया। अब गिलास प्रज्ञा के होंठों के बीच था और प्रज्ञा ने ज्यादा दवा मुँह में न भर जाए, इस भय से मिश्रा जी की कलाई थाम ली थी। मुँह भर दवा देते हुए मिश्रा जी बोले, 'इसे गटकना नहीं। पन्द्रह-बीस सेकेंड भरे रहिए और दो-तीन कुल्ले कर लीजिए।' मिश्रा जी ने हथेली सिर से हटा ली और गिलास प्रज्ञा के हाथ में पकड़ा दिया।

प्रज्ञा सोच रही हैं, 'जो जिदंगी कल थी, वह सही थी या जो आज है, वह सही है? आज जिदंगी में धन है, प्रसिद्धि है, लेकिन ऐसा कोई अपना नहीं है, जिसके साथ अपनत्व बाँटा जा सके? तन-मन को एकाकार किया जा सके? उम्र की ढलान और घटते काम की एकांत बेचैनी में स्थाई जीवन-साथी का होना तीव्रता से खलता है। कदमताल मिलाकर चलने वाला पति साथ होता है तो परस्पर सुख-दु:ख में मददगार बने रहते हैं। काश, आज साथ चलने वाला पति होता, दो-तीन बच्चे होते, तो खुशहाल जिदंगी का रूप ही कुछ और होता? समस्याएँ आतीं भी तो समझौतों से सुलझ जातीं। एक अदद बेटी है भी तो, उस पुरुष से, हाँ, हाँ, पति नहीं पुरुष से ही उसे पाया। लंपट और धूर्त पुरुष। पाया भी अविवाहित रहते हुए। वह पुरुष सुशांत था, जो विवाह कर लेने का भरोसा देते हुए लिव-इन-रिलेशन में साथ रहता रहा। उन एकांत रमणीय क्षणों में उसने खूब विश्वास जताया और प्यार उड़ेला। पुरुष देह की इस गंध में बहक जाने वाली ऐसी मदहोशी थी, जिसने सारी वर्जनाओं की खिड़कियाँ खोल दीं। फिर जो परिणाम निकला, वह अनचाहा गर्भ था। अब दो ही उपाय शेष थे। एक, अनचाहे गर्भ से मुक्ति पा ली जाए या फिर अविवाहित मातृत्व की चुनौती स्वीकार ली जाए? जिस व्यवस्था से मैं गुजर रही थी, उसमें स्त्री स्वातंत्र्य की प्रबलता थी। हालाँकि यह एक भूल थी। दरअसल स्त्री स्वतंत्रता और स्वच्छंदता के बीच एक महीन रेखा होती है, दुर्भाग्य से आज मेरी तरह इसी लज्जाजनक स्वच्छंदता को नारी-मुक्ति मान लेने की भूल हो रही है।'

प्रज्ञा ने गहरी साँस लेकर अँगड़ाई ली। उसकी आँखों में आँसुओं की द्रव्यता ने अपारदर्शी धुंध की परत बिछा दी थी। उस द्रव्यता को पौंछ वह फिर विचारमग्न हो गई, किंतु उन दिनों सत्य केवल कोख में ठहरा, अनचाहा मातृत्व था। मैंने जब इस रहस्य को अपने प्रियजनों पर प्रकट किया तो कमोबेश सभी की एकपक्षीय राय थी कि इस पाप से निवृत्ति पा ली जाए। मेरे अभिभावक प्रतिष्ठित आर्थिक हैसियत के थे। मैं स्वयं दर्शनीय कद-काठी और सुगठित देहयष्टि की उच्च शिक्षित युवती थी। मूल भारतीय ही आर्य थे। इस विषय पर संस्कृत में पीएचडी उपाधि के लिए शोधरत थी। अतएव यथास्थिति में रहते हुए तुलनात्मक रूप से कम आर्थिक हैसियत वाले युवक से शादी कर दी जाए। जिससे परिवार की इज्जत बची रहे और मेरा भविष्य भी सँवर जाए। शायद इसीलिए श्वेतकेतु द्वारा अस्तित्व में लाई गई वैदिक विवाह पद्धति में विदा के समय पिता वधू को वर को न सौंपते हुए, कुटुंब के वरिष्ठतम व्यक्ति को सौंपते हैं। यही वह सामाजिक दबाव होता है, जिसके वशीभूत हुआ पति, पत्नी को नहीं व्यवस्था को ढोने के लिए विवश रहता है। परंतु अब लैंगिक समानता के कथित प्रयास इतने आक्रामक हैं कि इस संघर्ष में परिवार ही विघटित हो रहे हैं।'

प्रज्ञा ने फिर गहरी आह भरी और पुन: अतीत में खो गईं, अंतत: मैंने सभी सलाहें-नसीहतें दरकिनार कर दीं। मैं तो बचपन से ही जिद्दी, सनकी और तुनकमिजाज थी। इसी रोमांचकारी जुनून में मुझे सुखानुभूमि होती थी। सो, मैंने मेरे ही रक्त-मज्जा से गढ़ी जा रही निर्दोष आकृति को संपूर्ण आकार लेकर बाहर आने के लिए कोख में पलने व पनपने दिया। निर्दोष इसलिए क्योंकि स्त्री-पुरुष का, प्रणय की प्रक्रिया से गुजरना एक प्राकृतिक कर्म है। इसी अंतरंग मिलन का परिणाम है, सृजन! वैसे भी कोख तो उस उर्वरा भूमि की तरह है, जिसमें बीज पड़ेगा तो अंकुरित होगा ही! फिर मैं क्यूँ अवैध संतान के भय से भ्रूण-हत्या जैसा धत्कर्म करूँ? क्यों एक नन्हीं जान के प्राण गर्भ में ही घोंट दूँ या फिर जन्मने के बाद डब्बे बंद कर कूड़ेदान में फिकवा दूँ? क्या स्त्री की कोख अपनी ही संतान का शव ढोने के लिए इसलिए विवश है, क्योंकि संतान का वास्तविक पिता शादी से भागा

फिर रहा है? फिर भी भूल मेरी ही थी, मुझे संबंध स्थापित करने से पहले संयम अथवा सावधानी बरतनी चाहिए थी?'

स्मृतियों के स्मरण की स्थिति में प्रज्ञा की कब झपकी लग गई, उन्हें ज्ञात ही नहीं रहा। अपितु झपकी में उनके अवचेतन में दबी इच्छाएँ अपरिभाषित प्रतीकों के माध्यम से उभरने लगीं। स्वप्निक आनंद के समय पर ही प्रज्ञा के कानों में डोर-बैल की कर्कश ध्वनि गूँजी। फलत: तंद्रा टूटने के साथ मधुरस में पगा स्वप्न भी टूट गया।

तत्काल प्रज्ञा समझ नहीं पाई कि रात है या दिन। आँखें मींजने से जब धुँधलका छँटा तब निश्चय हुआ कि दिन ही है। फिर उन्हें याद आया कि वे मिश्रा जी के साथ सुबह चाय पीने के बाद अलसाई सी बिस्तर पर पसर गईं थीं। और फिर अतीत में खोती चलीं गईं थीं। किंतु यह स्वप्न? यह स्वप्न क्या भविष्य का कोई प्रतीकात्मक संदेश है? ऐसा विचित्र सपना उसने पहले कभी नहीं देखा था।

घंटी फिर बजी।

प्रज्ञा सोचते हुए द्वार की ओर बढ़ी उन्होंने द्वार पर आकर आई-ग्लास से बाहर झाँका। अरे ये तो मिश्रा जी हैं। परंतु अनायास किसलिए? उन्होंने दीवार घड़ी पर निगाह टिकाई, उफ, दोपहर के डेढ़ बज रहे हैं। वह द्वार खोलते हुए मन ही मन चहकी, 'ओह! दिन में इतनी चैन भरी लंबी नींद!' प्रज्ञा ने द्वार खोला। सामने मिश्रा जी हाथ में टिफिन लिए प्रस्तुत थे। अप्रत्याशित आगमन पर आश्चर्यचकित प्रज्ञा बोलीं, 'अरे, मिश्रा जी आप?'

'क्षमा कीजिए, आपको बेवक्त तकलीफ दी। खालीपन को भरने के लिए सोचा, आज कुछ लीक से हटकर भोजन बनाया जाए। सो, दाल-बाटी बना लिए। आजकल आपकी भी बाई नहीं आ रही है, इसलिए आपके लायक भी बनाए हैं। लीजिए।' मिश्रा जी ने देहरी पर खड़े रहते ही हाथ आगे बढ़ा दिया।

'अरे मिश्रा जी आपने क्यों कष्ट किया? मैं तो बना लेती।' प्रज्ञा ने न-नुकुर की ज्यादा औपचारिकता व्यक्त किए बिना टिफिन मुट्ठी में सँभाल लिया।

'खाकर बताइए, कैसे बने हैं?'

'हाँ, जरूर। लेकिन मेरे दाँतों में दर्द उभर आया है। इसलिए आराम से खाकर बताती हूँ।'

'कोई दवा ली?' मिश्रा जी का चिंता भाव झलका।

'नहीं, अभी नहीं। देखती हूँ, कोई पेन किलर पड़ी होगी तो खा लूँगी।' प्रज्ञा निश्चिंत थीं।

'आराम न मिले तो बताइए, अन्यथा मैं कोई देसी नुस्खा सुझाऊँगा।'

'निश्चित। ओके!'

हॉटकेश टिफिन से न तो कोई सुगंध फूट रही थी और न तपन की आँच। तत्पश्चात् भी प्रज्ञा के नासिका छिद्र गंध की अनुभूति कर रहे थे। उन्होंने टिफिन हथेलियों के बीच लेकर देखा तो गरमाहट का भी अहसास हुआ। इन अनुभूतियों के संगम से उनकी चेतना में ताजा ऊर्जा संचरित हुई और वे स्नान के लिए स्नानागार में घुस गईं। फव्वारा चालू कर उन्होंने माथे पर रिमझिम धार को देह पर स्वच्छंद बहने दिया। प्रज्ञा को हाल ही में टिफिन से जिस गंध और ताप के आभास से चेतना की उद्विग्नता जागी थी, वह जल की निर्मलता से बह चली थी। मन का आवेग नियंत्रित हुआ तो वे फिर अतीत की भूलें, उसके वर्तमान पर भविष्य की चिंताएँ उभारती हुई प्रगट होने लगीं, 'बावन-तिरेपन की इस बढ़ती कहूँ या फिर ढलती उम्र में परिवार की कमी इस नीरस एकांत में तीव्रता से खलती है। काश, आज अपनी संस्कृति के पारंपरिक रिश्तों की डोर से गुँथी होतीं तो महिला होने के सुख की दुनिया कुछ और ही होती? पति और बच्चों की वंचना इस तरह कचोटती नहीं? लिव-इन में रहते हुए संबंध बना लेने की स्वतंत्रता तो होती है, परंतु जीवन का संपूर्ण सुख अधूरा ही रहता है। अविश्वास की आशंकाएँ शूल बनकर उभरती ही रहती हैं। आरंभ में प्यार का जो ज्वार हर मर्यादा तोड़ देने को उद्यत रहता है, वही कुछ समय बाद उतरने लगता है। यह स्थिति बोझिल अवसाद से भरी होती है। कोख हरी होने के बावजूद वे तो इस आघात से इसलिए उभर गईं, क्योंकि एक तो वे संकीर्ण सोच की उस परिधि से बाहर थीं, जहाँ, लोग इस तरह की चरित्रहीनताओं को बरदाश्त नहीं करते। वरना, अपनों की ही उलाहनाएँ इतनी तल्ख होती हैं कि आत्मघाती रास्ते पर चलने की विवशता पेश आ जाती है। फिर वे स्वयं जीविका-उपार्जन में समर्थ थीं और कटु से कटु व कठिन से कठिन स्थिति का सामना करने का माद्दा रखती थीं। वैसे भी महत्वाकांक्षा वह मोती है, जो सीप की निष्ठुर कोख में ही पलता है। किंतु अब लगता है कि महत्वाकांक्षाओं का रसायन धमनियों में उबलना ही बंद हो गया है। प्रज्ञा ने तत्क्षण फब्बारा बंद किया और अंग-वस्त्र पहनने लगीं।

मिश्रा जी के हाथों बने दाल-बाटी अत्यंत स्वादिष्ट थे। उन्हें वर्षों बाद आहारजन्य, संतुष्टि हुई थी। आराम-कुर्सी की पीठिका से इत्मीनान से टिककर प्रज्ञा ने स्टूल पर पैर पसारे और मिश्रा जी

का नंबर डायल कर दिया। घंटी बजना आरंभ ही हुई थी कि स्विच ऑन हो गया। जैसे वे इसी फोन का इंतजार कर रहे थे। आवाज आई, 'हैलो।'

'हाँ, हाँ प्रज्ञा जी, भोजन लिया?'

'हाँ, हाँ! अभी भोजन करके ही निपटी हूँ। लजीज़ दाल-बाटी बने हैं। घी की मोन लगी इतनी खस्ता बाटी और जीरे का बघार लगी दाल, मजा आ गया।'

'अरे वाह! झूठी तारीफ तो नहीं कर रहीं?'

'नहीं, नहीं, मिश्रा जी! सुप्रिया भाभी बताती रहती थीं कि आप पाक कला में पारंगत हैं।'

'चलो, धन्य हुआ। मेहनत सार्थक हुई।'

'मिश्रा जी, मैं कह रही थी कि आपने दाँत-दर्द का जो देसी नुस्खा सुझाने की बात कही थी न, वह मुझे बताएँ? क्योंकि घर में कोई पेन किलर तो मिली नहीं। लॉकडाउन में कैसे मँगाऊँ?'

'आप कतई चिंता न करें। मैं आपको ऐसा नुस्खा दूँगा कि एक खुराक पीने से ही बहुत आराम मिल जाएगा। फिर भी आपको पेन किलर की जरूरत पड़ती है तो दवा की दुकानें तो खुली ही हैं, मैं मोटर साइकल से जाकर तुरंत ले आऊँगा।' मिश्रा जी ने बड़ी सहजता से सहयोग के लिए अपनत्व प्रगट किया।

'मेडिकल से दवा लाने की जरूरत नहीं है। दर्द की दवा तो मैं बहुत जरूरत पड़ने पर ही लेती हूँ। पेन किलर लेने के बाद नींद खुलती है, तो लंबे समय तक शरीर में सुस्ती छाई रहती है। आप तो सायंकाल देसी नुस्खा ही दीजिए।'

'जरूर, बनाकर शाम को लाता हूँ।'

मिश्रा जी के बारे में प्रज्ञा जितना अब सोच रही हैं, बीते बीस-बाइस सालों में कभी नहीं विचारा। दरअसल, उनकी वाणी में शहद में पड़ी जो मिठास थी, लयबद्धता थी, उससे स्पष्ट हो रहा था कि वे यदि मिश्रा जी को अभी नुस्खा लाने को बोलतीं तो वे दौड़े चले आते। अलबत्ता सच्चाई यह भी थी कि वे भी इन तन्हाई भरे लम्हों में उनके बोल सुनते ही भीतर ही भीतर खिल रहीं थीं। डोल रहीं थी। जो अल्हड़ता किशोर उम्र में आचरण की उन्मुक्तता से फूटने लगती है, जैसे वह फिर से फूटने को उमड़ रही है। परंतु मिश्रा जी के बारे में यह तो उनका आंकलन है, क्या वे भी उनके बारे में ऐसा ही कुछ विचार रहे होंगे? अब वे जो भी विचार रहे हों, किंतु तालाबंदी में दूरी बनाकर रखने की बाध्यता में स्नेहात्मक प्रतिबद्धता उनके व्यवहार में झलक अवश्य रही है।

खैर, प्रज्ञा के मन को सुकून दे रही यादों में याद आ रहा है कि बीस-बाइस साल पहले वे और मिश्रा जी इस अपार्टमेंट के नौवें माले पर तीन शयनकक्षों वाले फ्लैटों को क्रय करके रहने आए थे। तब से वह और मिश्रा जी तो निरंतर रहते चले आ रहे हैं, लेकिन इस फ्लोर पर निर्मित कुल जमा चार फ्लैटों में से दो में किराएदार बदलते रहते हैं। दरअसल अन्य दो फ्लैटों के मालिक उच्चाधिकारी हैं। गोया, वे रहते तो सरकारी बँगलों में हैं, किंतु अतिरिक्त आय के लिए इन फ्लैटों को ऊँचे किराए पर चढ़ा देते हैं। किराएदार भी एक-डेढ़ साल में बदल जाते हैं, इसलिए उनसे प्रज्ञा की या फिर मिश्रा परिवार की प्रगाढ़ता कायम हो ही नहीं पाई। हालाँकि कई मर्तबा प्रज्ञा सोचती हैं कि एक व्यक्ति के पास कई-कई मकानों की उपलब्धता से देश में आवास की कमी और भ्रष्टाचार की बुराई बनी हुई है। काश, सरकार ऐसे मकानों और खाली पड़े नए फ्लैटों को अधिग्रहण कर जरूरतमंदों को दे, दे तो शायद 'अपना घर' न होने की समस्या का समाधान हो जाए? इस उपाय से उपजाऊ कृषि भूमि भी नष्ट होने से बच जाएगी। प्रज्ञा ने सिर झटका, उफ, वह भी क्या अनुत्तरित प्रश्नों के हल न होने वाले उत्तरों की उधेड़-बुन में लग गईं? यह दिमागी भूख भी न जाने कहाँ से कहाँ ले पहुँचती है।

हाँ तो मिश्रा जी की पत्नी सुप्रिया महाविद्यालय में हिन्दी की और मिश्रा जी होम साइंस प्राध्यापक थे। वे निहायत सरल, सहृदय एवं शालीन थीं। फुरसत में कहानियाँ भी लिख लिया करती थीं। इसलिए प्रज्ञा उनसे अपने सीरियल के संवाद चुस्त करा लिया करती थी। सुप्रिया, प्रज्ञा की अनुपस्थिति में उनकी बेटी पृथा की भी उचित देखभाल कर लेतीं थीं। सुप्रिया की बेटी-बेटे के साथ ही पृथा संग रहते हुए ही पली, बढ़ी व पढ़ी थी। अब दोनों के बच्चे रोजगार के लिए विदेश में हैं। बेचारी सुप्रिया दो साल पहले एक सड़क दुर्घटना में चल बसीं। इन दो सालों में मिश्रा जी से कभी-कभा अनायास सामना हो जाने पर नमस्ते हो जाया करती थी। पर अब इस लॉकडाउन में लग रहा है, सुप्रिया की तरह उनसे निकटता बढ़ने के या फिर बढ़ाने के नए-नए बहानों का सिलसिला चल पड़ा है।

ठीक इसी समय द्वार-घंटी बजी। प्रज्ञा ने दीवार घड़ी की ओर देखा शाम के सात बजने को थे और सूरज ओझल हो रहा था। कमरे में अँधेरे की छाया घिरने को थी। प्रकाश के विलोपित होने और अँधेरा गहराने की संधि-वेला को प्रज्ञा वर्षों बाद अनुभव कर रही थी। उन्होंने एक साथ बिजली के कई खटके

दबा दिए। प्रज्ञा समझ गईं मिश्रा जी होंगे। नेत्र-काँच में आँख लगाकर बाहर झाँका। मिश्रा जी ही थे। उन्होंने किवाड़ खोल मिश्रा जी का अभिवादन करते हुए कहा, 'आइए आइए।'

'अभी दाँतों में दर्द है?' मिश्रा जी सोफे पर बैठते हुए बोले।

'रह-रहकर तीखा दर्द उठता रहता है।'

'अभी ठीक हुआ जाता है। रसोई से एक गिलास पानी गुनगुना करके लाता हूँ।' मिश्रा जी बेहिचक रसोई की ओर बढ़ गए।

'मिश्रा जी आप रुकिए मैं लाती हूँ।' प्रज्ञा उठकर उनके पीछे चल दी।

मिश्रा जी अतिरिक्त फुर्ती में थे। उन्होंने रसोई के प्लेटफार्म पर रखी भगोनी उठाई और उसमें आरओ का नल खोलकर अंदाजन पौन गिलास पानी भरकर, भगोनी इंडक्शन पर स्विच ऑन कर रख दी। हतप्रभ प्रज्ञा देखती रह गईं। मिश्रा जी उनकी रसोई में इस अभ्यस्थता से पेश आए थे, मानो सब कुछ उनके ज्ञान में हो। पानी के गुनगुना होने पर उन्होंने उसे एक काँच के गिलास में उड़ेला और बैठक में आकर इत्मीनान से सोफे पर बैठ गए। प्रज्ञा ने भी उनका अनुकरण किया और सोफे की कुर्सी पर बैठ गईं। वे देख रही थीं, मिश्रा जी ने कुर्ते की जेब से कागज में लिपटी एक पुड़िया निकालकर खोली। उसमें फिटकरी की एक बड़ी सी डली थी। डली को गिलास में डालकर करीब बीस सेकेंड तक चम्मच से हिलाते रहे। फिर डली निकालकर प्लेट में रख दी और देसी नुस्खे से तैयार दवा का गिलास प्रज्ञा के होंठों की ओर बढ़ा दिया। प्रज्ञा ने एकाएक दवा नहीं पीने की मंशा से सिर पीछे किया, किंतु मिश्रा जी ने अनायास ही सिर के पीछे बाँए हाथ की हथेली लगाकर थाम लिया। अब गिलास प्रज्ञा के होंठों के बीच था और प्रज्ञा ने ज्यादा दवा मुँह में न भर जाए, इस भय से मिश्रा जी की कलाई थाम ली थी। मुँह भर दवा देते हुए मिश्रा जी बोले, 'इसे गटकना नहीं। पन्द्रह-बीस सेकेंड भरे रहिए और दो-तीन कुल्ले कर लीजिए।' मिश्रा जी ने हथेली सिर से हटा ली और गिलास प्रज्ञा के हाथ में पकड़ा दिया। प्रज्ञा उठीं और वाश-बेसिन पर चली गईं।

तीन-चार कुल्ले कर वह फारिग हुईं तो उसने गिलास में शेष बचे पानी से चेहरा धोकर तौलिया से पौंछा। चेहरा दर्पण में गौर से देखा। चेहरे पर ताजगी उभर आई थी। यह ताजगी फिटकरी युक्त पानी के धोने से थी या फिर मिश्रा जी ने हथेली से दवा पिलाते समय सिर थाम लिया था, उस मार्मिक स्पर्श से? यह भेद स्पष्ट नहीं कर पा रहीं थीं। लेकिन कोई तड़प पैदा कर देने वाली खुमारी जरूर थी, जो उनकी धमनियों में दौड़ पड़ी थी और जोर देने पर भी सामान्य नहीं हुई थी। शायद मिश्रा जी भी ऐसे जादुई असर को अनुभव कर रहे हों? क्योंकि जब मिश्र जी ने उनके होंठों के बीच गिलास लगाया था, तब उन्होंने भी उनकी कलाई थाम ली थी। प्रज्ञा सोच रही थी फिल्म व सीरियलों की शूटिंग के समय कलाकार पुरुषों के स्पर्श से गुजरना उनके लिए कोई नई बात नहीं थी, लेकिन मिश्रा जी के स्पर्श में विशिष्ट चाहत का अुनभव कर रहीं थीं। बेटी के कोख में आने के बाद से ही वह तो लगभग दांपत्य नहीं, नहीं, पुरुष प्रदत्त काम-सुख से वंचित थीं हीं, मिश्रा जी भी पत्नी सुप्रिया की मौत के बाद से दांपत्य सुख से निषिद्ध चल रहे थे। आज के भौतिक और उपभोक्तावादी युग में भला पचास-पचपन की उम्र होती ही क्या है? चाहा-अनचाहा अकेलापन इस प्रौढ़ता में साथी का कहीं ज्यादा अनुभव करता है। प्रज्ञा के मुँह में फिटकरी का खुशबू भरा स्वाद अभी बाकी था और दर्द कम लग रहा था। मिश्रा जी के इस सेवा-भाव से प्रज्ञा प्रफुल्लित थीं और अंतर्मन खिलने को आतुर था। मुस्कुराती प्रज्ञा बैठक में पहुँचीं और कुर्सी पर बैठते हुए बोलीं, 'सच कहती थीं, सुप्रिया भाभी कि आप जैसा पति परमेश्वर पाकर वे धन्य-धन्य हैं।'

'क्या वाकई सुप्रिया ऐसा कहती थीं?' मिश्रा जी प्रशंसा सुन मुग्ध हो गए।

'और नहीं तो झूठ थोड़े ही बोल रही हूँ। जिंदगी में जीवन साथी बिना शर्त साथ देने वाला हो तो जीवन का सुख कुछ और ही होता है? मैं सुख की वंचना का अनुभव करती हूँ तो बड़ी आंतरिक पीड़ा होती है।' शुष्कता के साथ एक खामोश पीड़ा प्रज्ञा के चेहरे पर उभर आई।

'प्रज्ञा जी मैं कई बार सोचता हूँ कि आपने अविवाहित रहते अपने प्रेमी से संबंध बनाए। लोक-निंदा की परवाह किए बिना बेटी को जन्म देने और उसे पालने का दुस्साहस भी किया? क्या इसे आज आप ठीक मानती हैं?'

'आज लंबे अनुभव और उम्र की इस परिपक्वता में, इसे कतई उचित नहीं मानती, बल्कि वाचाल उम्र में की गई एक बड़ी भूल मानती हूँ।'

'अब तो अविवाहित रहते हुए सह-जीवन में रहने का चलन बहुत बढ़ गया है, लेकिन ढाई-तीन दशक पहले के कालखंड में आपने यह हिम्मत कैसे जुटा ली? ठीक लगे तो उत्तर दें, अन्यथा रहने दें?'

'नहीं-नहीं मैं कोई डरपोक स्त्री थोड़ी ही हूँ, जो उत्तर देने से डरूँ? फिर आपसे क्या डरना? आप कोई पत्रकार थोड़े ही हैं, जो टीआरपी के लिए वाक्य को तोड़-मरोड़ देंगे? मैं तो आपको और आपके परिवार को अपने ही परिवार का सदस्य मानती रही हूँ। इस संकटकाल में भी आप मेरे कितने मददगार सिद्ध हो रहे हैं, इसलिए आपके समक्ष कोई रहस्योद्घाटन करने में कैसा संकोच?

'वही तो मैं सोच रहा था।' मिश्रा जी संतुष्ट हुए कि उनका प्रश्न अनचाहा नहीं है।

'दरअसल मेरी प्राचीन संस्कृत साहित्य पढ़ने में बड़ी रुचि रही है। इस अविवाहित मातृत्व को स्वीकारने में महाभारत और उपनिषदों में उल्लेखित कथाओं से प्रेरणा मिली थी।'

'इन प्राचीन कथाओं में ऐसी कौन सी कथाएँ हैं, जिनमें मातृसत्तात्मक स्त्री विमर्श के सूत्र थे?'

प्रज्ञा व्यंगात्मक हँसी, हँसते हुए बोली, 'नारीवादी आंदोलनों में जो स्त्री विमर्श आज दिखाई दे रहा है, वह इन कथाओं में पहले से ही कहीं ज्यादा साहस और उन्मुक्तता के साथ उपस्थित है।'

'अच्छा!' मिश्रा जी हैरान हुए।

'कुंती ने तो अविवाहित रहते हुए सूर्यदेव से कर्ण को बाद में जन्म दिया, इससे पहले कुंती की सास सत्यवती कुँवारी रहते हुए ऋषि पराशर के समक्ष समर्पित होकर महाभारत के रचयिता वेद व्यास को जन्म दे चुकी थीं। हस्तिनापुर के महाराज शांतनु से तो उनका पाणिग्रहण बाद में हुआ।'

'अच्छा!' मिश्रा जी ने आश्चर्य प्रगट किया।

'हाँ, जिन कौरव-पाण्डवों का संघर्ष हम महाभारत में देखते हैं, दरअसल वह कुरु-कुल इन्हीं सत्यवती का वंश है। ये कथाएँ फिर भी ठीक हैं, क्योंकि पितृत्व प्रच्छन्न भले ही है, परंतु स्पष्ट है।'

'तो फिर अस्पष्ट किस कथा में है?' मिश्रा जी ने जिज्ञासा जताई।

'छान्दोग्योपनिषद में वैश्या जबाला के पुत्र सत्यकाम की कथा, स्पष्ट होने के साथ विलक्षण भी है।'

'अच्छा!' मिश्रा जी ने विस्फारित नेत्रों से प्रज्ञा को घूरा।

'हाँ, मिश्रा जी!' सत्यकाम ने जब माता जबाला से अपने पिता का नाम पूछा तो उन्होंने नि:संकोच कहा, 'पुत्र मैं आश्रमों में ऋषियों की सेवा करती थी। इस अवस्था में मेरा अनेक ऋषियों से संपर्क हुआ। अतएव मैं नहीं जानती कि तुम किस पुरुष से उत्पन्न हो।' पूरे जबाला-सत्यकाम संवाद में यह कहीं स्पष्ट नहीं है कि वह कुँवारी है, सधवा है, विधवा है या फिर परित्यक्ता? अलबत्ता उनकी स्वीकारोक्ति में अनेक ऋषियों से संसर्ग की बात प्रस्तुत है। इससे संकेत मिलता है कि वे वैश्या थीं। या फिर देह की मर्यादाएँ उनके लिए बाध्यकारी नहीं थीं?'

'तो क्या उस कालखंड में सत्य केवल मातृत्व था?' मिश्रा जी ने प्रश्न किया।

'मैं नहीं जानती कि उस कालखंड में सत्य क्या था? लेकिन इतना जरूर जानती हूँ कि सत्य केवल मातृत्व होता है। अपने शिशु का वास्तविक पिता कौन है, यह केवल माता के ही ज्ञान में होता है। प्रकृति ने स्त्री को यह विलक्षण क्षमता और बोध देकर, स्त्री-पुरुष के दैहिक संबंधों में स्त्री को मजबूती दी थी, लेकिन कालांतर में पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्री के इस मौलिक अधिकार पर यौनजन्य वर्जना की एकपक्षीय सँहिताएँ रचकर कई-कई लक्ष्मण रेखाएँ खींच दीं, जो अब टूट रही हैं।'

'ओह! यह स्त्री के साथ कुटिल पुरुष ने बड़ी विडंबना रच दी है?'

'हाँ और नहीं तो! मुझे इस समय भगवान कृष्ण के ज्येष्ठ पुत्र प्रद्युम्न के पैदा होते ही चोरी हो जाने की कथा भी स्मरण हो रही है। रुक्मिणी के गर्भ से पैदा होते ही प्रद्युम्न को शंबरासुर नाम का अनार्य प्रसूति कक्ष से चुरा ले गया था। दस दिन के इस शिशु को दादी देवकी ने स्यमंतक मणि की माला पहना दी थी। माला लेकर शंबरासुर ने शिशु को समुद्र में फेंक दिया था। इस बालक के मन-मोहिनी रूप से आकर्षित होकर मायावती नाम की एक धीवर जाति की स्त्री ने इसका गोपनीय रूप से लालन-पालन किया। पंद्रह वर्ष की यह स्त्री इस समय कुँवारी थी। जब यह बालक पन्द्रह-सोलह का किशोर हुआ तो इस पालित स्त्री ने कामिनी का रूप ले किया। फिर उसके साथ अंतरंग संबंध बनाए रखते हुए सह-जीवन, अर्थात् लिव-इन-रिलेशन में रहने लगी। कालांतर में कृष्ण एवं रुक्मिणी ने इन्हें अपनाकर परिणय-सूत्र में बाँधा।'

'अर्थात् जहाँ तक मैं समझ रहा हूँ कि प्राचीन काल में स्त्री-पुरुष संबंध भिन्न-भिन्न रूपों में सामने आते रहे हैं?'

'हाँ, बिल्कुल ठीक समझे आप। हमारे समाज में विवाह पूर्व या फिर विवाहेतर संबंध सच्चाई से आँख चुराने के पश्चात् भी सदा से रहे हैं, बस संख्या में ज्यादा देखने में अब आ रहे हैं।'

'वाकई प्रज्ञा जी आप बहुत ज्ञानी हैं। एक प्रोफेसर होने के नाते

अपनी परंपरा का ज्ञान होना तो हमें चाहिए, लेकिन है आपको। अब चलता हूँ प्रज्ञा जी। कल फिर मुलाकात करते हैं।' मिश्रा जी निकल गए। जबकि प्रज्ञा अभी और उनकी निकटता चाहती थी।

इतनी चैन का अनुभव प्रज्ञा वर्षों बाद कर रहीं हैं। बेंत की झूलेदार कुर्सी पर हिचकोले लेते हुए वह देख रही थीं, सामने कभी खाली नहीं रहने वाली चार-पंक्ति वाली सड़क पर सन्नाटा पसरा है। वे हैरान थीं, जितनी चौड़ी सड़क आज लग रही है, पहले कभी नहीं लगी? जब भी चलो रेलम-पेल। चलते हुए लगता था ओह, इतनी सँकरी सड़क? ये सरकारें क्या करती रहती हैं? चौड़ी नहीं कर सकतीं? जिससे बिना गियर बदले फर्राटे से चलना आसान बना रहे? लेकिन उसे याद आया कि जब वे इस अपार्टमेंट में फ्लैट लेने आईं थीं, तब काम-चलाऊ उखड़ी गिट्टियों और गड्ढों वाली सड़क थी। फिर उसी पर डामरीकरण हुआ। फिर कुछ सालों बाद दोहरीकरण हुआ और विभाजक (डिवाइटर) भी बन गया। विभाजक की पीठ पर ही बिजली के ऊँचे खंभों पर दोनों ओर सोडियम लैंप लगा दिए। फिर कुछ साल बाद सड़क को चार पंक्तियों में बना दिया गया। यानी सब कुछ बदल गया। शायद इसीलिए मनुष्य की समय से तुलना करते हुए कहा गया है कि 'वक्त रहता नहीं कभी टिककर, आदत इसकी भी आदमी सी है।' लेकिन अब समय-चक्र तो अपनी पूर्व स्थिति की तरह ही गतिशील है, परंतु मनुष्य के पैर टिक गए हैं। मनुष्य के पैर टिके तो वाहनों के पहियों की चाल भी थम गई। रेल और वायुयान भी अपने-अपने अड्डों पर स्थिर खड़े रह गए। पानी के जहाज और नौकाएँ भी लंगरों से बाँध दिए गए हैं।

इसीलिए सब जगह प्रकृति का पुनरुत्थान दिख रहा है। प्रदूषण में तब्दील हो चुकी एकरूपता, विविधता में बदलती दिख रही है। खाली सड़क कोरा कागज लग रही है। जिस पर कोई दूध वाला लकीर सी खींचता सरपट साइकिल दौड़ाए चला जा रहा है। वह देखो, किसी कल्पनाशील ने कोरोना का मुकुटधारी चित्र काली सड़क पर सफेद पेंट से उकेर दिया है। शारीरिक दूरी बनाए रखने का संदेश देने के लिए गोले बना दिए हैं। अपार्टमेंट के कुछ बालक साइकिलों से उन्हीं गोलों के इर्द-गिर्द घूम रहे हैं तो कुछ क्रिकेट खेल रहे हैं। शीतल वायु साँसों में संजीवनी सी अनुभव हो रही है। आसमान की नीलिमा इतनी उज्जवल दिखने लगी है कि उसका पर्यायवाची 'नीलाभ' शब्द अब वाकई सार्थक लग रहा है। कतारबद्ध अनुशासित पक्षी घोंसलों को लौट रहे हैं। अभी-अभी वह टीवी में देख रही थी कि हिरणों का झुंड सड़क पर अठखेलियाँ कर विभाजक को तकिया बनाकर पसर गया है और समुद्र में किनारों पर ही व्हेल अँगड़ाई ले रही हैं तो डॉल्फिन उछल-कूद करती दिखाई देने लगी हैं। हरिद्वार में गंगा और यमुना में प्राणवायु की मात्रा बढ़ गई है। जालंधर से हिमालय दिखाई देने लगा है। प्रकृति की यह अद्वितीय-अभिराम छठा, कोरोना-संशय से घिरे मन को जब सुखानुभूति करा रहे थे, तभी द्वार-घंटी की झनझनाहट ने जैसे स्मृति सुख को छिन्न-भिन्न करने का प्रबंध कर दिया।

ओह! मिश्रा जी थे। दरअसल इस कोरोना-युग में मिश्रा जी से मेल-जोल इतना आम-फहम हो गया था कि उनके आने-जाने का सिलसिला अनाहूत हो गया था। जिस स्मृति सुख को उन्होंने तत्क्षण छिन्न-भिन्न होने का अनुभव किया था, वह मिश्रा जी का निकट पाते ही, इस उम्र में भी जादुई असर डालने वाली कल्पनाओं में गोते लगाने लगा था। दरअसल प्रेम पर किसी आयु विशेष का एकाधिकार नहीं है। यह जीवन की अंतिम साँस तक जारी रहने वाली दिव्य भावना है। इसलिए संवाद-संप्रेषित किए बिना ही काया से आत्मा तक दिव्य अहसास की लहर अनायास ही बहने लगती है। शायद इसी कारण जब वे प्रौढ़ों या बूढ़ों के प्रेम-विवाह के समाचार पढ़ती हैं, तो रोमांचित हो उठती हैं। ऐसे में एक जुगुप्सा जागती और किसी से जुड़ जाने का राग-बोध पैदा कर जाती। यही भाव-बोध उन्हें अब भी उत्पन्न हो रहा था। लेकिन मिश्रा जी के मन में क्या भाव हैं, वे क्या जानें?

मन में उठे प्रश्न को मन में ही नियंत्रित करते प्रज्ञा ने मिश्रा जी को बाल्कनी में ही मूढ़े पर बिठाया और खुद भी दूसरे मूढ़े पर बैठ गई। बीच में बेंत की टेबिल थी। खाली टेबिल पर पारदर्शी काँच बिछा था। बेंत की फसंटियों और काँच के बीच एक चित्र था, जिसमें खजुराहों की संभोगरत मूर्तियों की शृंखला थी। मिश्रा जी की दत्तचित्त निगाहें, उसी पर टिक गई थीं, प्रज्ञा ने ताड़ते हुए कहा, 'क्या देख रहे हैं?' मिश्रा जी झेंप गए। उन्होंने जब प्रज्ञा की ओर नजरें उठाईं तो लगा, जैसे उनकी आँखों में शोख शरारत तैर रही है। थोड़ा लजाते हुए वे बोले, 'मूर्तियों का शृंगार निहार रहा था।'

प्रज्ञा ने उनके चेहरे पर आँखें गड़ा दीं। वे निरुत्तर रह गए। तब वही बोली, 'सनातन हिंदू काम के प्रति कोई शर्मिंदगी का भाव अंतर्मन में नहीं रखते थे, लेकिन प्रकट रूप में कभी इसके प्रति इतना जुनून नहीं दर्शाया कि जिंदगी के दूसरे पहलुओं को नजरअंदाज ही कर दिया जाए।'

'हम तो जिंदगी के दूसरे पहलुओं में ही ज्यादा उलझे रहे। काम के प्रति एक अपराध बोध भी रहा, इसलिए सुप्रिया के कई बार कहने के पश्चात् भी खजुराहो नहीं जा पाए। लेकिन अब एकांत में ऐसा आभास होता है कि जब महत्वाकांक्षाएँ जवान होती हैं, तभी उन्हें पूरी करने के लिए उड़ान भर लेनी चाहिए, वरना पचास की उम्र के पार जाते हुए ऐसा लगता है कि शरीर साथ

देने से इनकार कर रहा है। इसी उम्र में सुप्रिया साथ छोड़ गईं तो यह अहसास और गहरा गया।'

एक उदासीनता के साथ उनके चेहरे पर समाज द्वारा बाँध दिए गए बंधन और दायित्वों के बोध का बोझ झलक आया। पत्नी से बिछड़ जाने की तनहाई भी असर दिखा रही थी। ऐसे में हमदर्दी ही कारगर दवा हो सकती है। अर्थात् प्रज्ञा ने सलाह दी, 'मिश्रा जी, अभी आपकी बहुत ज्यादा उम्र नहीं है। बावन-तिरपन के होंगे? सुप्रिया जी भले ही आज नहीं रहीं, बावजूद हर उम्र में नई चुनौती स्वीकारने का अपना एक आनंद है। पुनर्विवाह करके इस आनंद को ले सकते हैं। आपके जीवन में जो ठहराव आ गया है, उसे सक्रिय करने का यह एक अच्छा उपाय हो सकता है? जीवन की खूबसूरती बहाल करने का यही सार्थक उपाय है?'

'यदि यही प्रश्न मैं आपसे करूँ, तो आप क्या उत्तर देंगी?'

'आपका प्रश्न वृथा नहीं है। मैं स्पष्ट रूप से कह रही हूँ कि विवाह अत्यंत आवश्यक है। स्त्री को पुरुष और पुरुष की स्त्री को नैसर्गिक जरूरत होती है। इच्छाओं की पूर्ति का यही नैतिक साधन है। बढ़ती उम्र में दांपत्य ही मजबूत सहारा होता है।' प्रज्ञा जानतीं थीं, हरेक मन में एक उमगता-मचलता कोना रहता है, जो इस समय प्रज्ञा के मन की तरह शायद उनके मन में भी अँगड़ाई ले रहा हो? परंतु क्या विडंबना है कि भावनाओं की इस कस्तूरी खुशबू को परस्पर ढूँढ़ तो रहे हैं, लेकिन स्वीकारता के शब्द नहीं दे पा रहे हैं।

'फिर आप क्यों नहीं पुनर्विवाह कर रहीं?' मिश्रा जी ने फिर दबाव देकर प्रश्न उछाला।

'क्योंकि मुझे अभी तक अपनी प्रकृति के अनुकूल पुरुष नहीं मिला। जिस दिन मिल जाएगा कर लूँगी।'

'अपनी प्रकृति स्पष्ट कर पाएँगी?' मिश्रा जी मुखर हो रहे थे।

'देखिए आप जानते हैं, मैंने अविवाहित रहते हुए बेटी को जन्म दिया। समाज के बीच ही रहते हुए, उसे पाला-पोसा और बड़ा किया। किसी वर्जना को तोड़ने के डर से आँखें नहीं चुराईं। पारंपरिक नैतिकता को ढोने की विवशता स्वीकार नहीं की। रूढ़ियों का तिरष्कार मेरी जीवन-शैली रही है। हालाँकि इसी शैली को अपनाए रखने की अब मेरी दृढ़ता खंडित हो रही है। इसलिए मैं भी भरोसे का जीवन-साथी चाहती हूँ। मानसिक शांति और शारीरिक संतुष्टि के लिए हिंदू जीवन-दर्शन का महत्व मुझे अब समझ आ रहा है। इसलिए मुझे ऐसा साथी चाहिए, जो मेरे विरोधाभासी मूल्यों पर ताना मारने की बनिस्बत उन्हें सहजता से स्वीकारने का माद्दा रखता हो?'

'क्या आपको मेरी प्रकृति और आचरण अपने अनुकूल लगते हैं?'

न जाने क्यों प्रज्ञा के मन में अहमन्यता जाग आई। तत्क्षण मिश्रा जी को पा लेने की उत्कटता के तत्पश्चात् भी वे संयम बरतते हुए बोलीं, 'हाँ, आपकी प्राकृति और स्वभाव ऐसे हैं, जो मेरे अनुसार ढल जाएँगे। फिर भी मैं सोचती हूँ, थोड़ा और विचार लूँ।'

'तो फिर सोचकर बताइए? अब मैं चलता हूँ।' दोनों के बीच मौन छा गया। मिश्रा जी प्रज्ञा को सोचने-विचारने के लिए, छोड़ चले आए।

यक्ष को उत्तर देते हुए युधिष्ठिर ने ठीक ही कहा था कि सूर्य किरणों की गति से मन की गति तेज होती है। मनुष्य के अवचेतन में किसी भी समुद्र से अधिक लहरें चलती हैं और उसकी गहराई भी अधिक होती है। मिश्रा जी के साथ हाल ही में बिताए लम्हों के वार्तालाप ने प्रज्ञा के मन में शहद घोल दी थी। इस शहद की मिठास से एक रासायनिक उद्विग्नता का अंतकरण में उबाल आ जाने का तीव्र अनुभव करते हुए, मिश्रा के प्रस्ताव पर विचार किया, 'दिमाग अक्सर भविष्य की संभावनाओं को सही-गलत के पलड़े पर तौलता है, लेकिन दिल बरसात के पानी की तरह लंघन करता है। दायरे तोड़ता है और नए दायरे बनाता भी है। यही नया दायरा, नई मंजिल होती है। अब या तो घड़ी की सुई बने रहकर एक घेरे में घूमते रहो या फिर समय बन जाओ और बदलते रहो। इस बढ़ती उम्र में परिवर्तन ही समय की माँग है। इस दूर-दूर तक पसरे सन्नाटे में अकेलापन कचोटता है। लेकिन अब यही एकाकीपन एक साथी का संग चाहता है। तो क्या सुशांत ने उनके यौवन का जहाँ छूकर छोड़ दिया था, इस अधेड़ उम्र में मिश्रा जी को वहीं से छूने की अनुमति दे, दे? उनका अवलंब ले, और उन्हें भी सहारा बन जाए? तो फिर समय बनकर इस बदलाव को स्वीकार लूँ? हाँ समय बन जाना ही उचित है। दे दूँ मिश्रा के मोबाइल पर घंटी! और कह दूँ कि मुझे आपका प्रस्ताव मंजूर है। तुरंत चले आइए। और जब वे आ जाएँ, तो उनसे यह कहते हुए कि 'इस कोविड-19 नाम के तुच्छ-कण ने दुनिया को जिस भय से व्याप्त कर दिया है, उससे दुनिया को अंततः प्रेम ही बचाएगा।' और लॉकडाउन हो जाऊँ उनके साथ!

और फिर दिमाग में उमड़ रहे सब प्रश्न-प्रति प्रश्नों पर दृढ़ता से विराम लगाते हुए प्रज्ञा ने मोबाइल स्क्रीन पर मिश्रा जी के नाम वाले चित्र पर अँगुली छुआ दी। तत्क्षण उन्हें लगा, जैसे सच में उन्होंने मिश्रा जी के होंठ छू लिए हों।

शब्दार्थ 49, श्रीराम कॉलोनी
शिवपुरी म.प्र.-473551
मो. 09425488224

मौत के आगोश में

– धनेश दत्त पाण्डेय

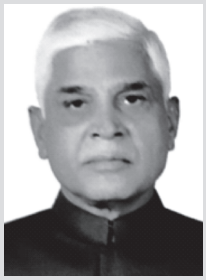

जन्म – 14 जुलाई 1954।

शिक्षा – एम.ए., बी.एड., एल.एल.बी.।

रचनाएँ – चार पुस्तकें प्रकाशित।

विशेष – आंचलिक लेखन में विशेष कार्य।

जून की गदराई दोपहरी। आकाश में सुलगते कंडों को बीन-बीन कर इंसानों पर बरपाती बेशऊर हवाएँ। बेशर्मी के कोरस पर थाप मारती गरम-गरम साँसें, कि जिस किसी का भी बस चले, अपने कपड़े उतार कर कहीं शीतल फुहार के नीचे एलोरा की गुफाओं वाले भित्तिचित्र बन जाए। ऊपर से शालीमार रेलवे स्टेशन के धूसरित लावण्य में जान खाती चिपचिपाहट। कुर्ते उतारने की देर, रीढ़ की दरारें कुल्लू के मणिकर्ण का दरिया बन जाएँ।

गनीमत रही कि कोरोमंडल एक्सप्रेस बिना ज्यादा इन्तजार कराए आ लगी। मैं झटपट ही अपने कोच में दाखिल होता हूँ। कुदरत तो बिगड़ी हुई थी ही, कृत्रिम ही काम आया कि धौकनी हो रही मेरी छाती 'ए.सी.' की शीतल-सुखद वायु से थिर होने लगी।

गाड़ी चली तो कोच अटेंडेंट आई और बड़ी नजाकत से मेरे बर्थ पर बेड-रोल का पैकेट धरते हुए कुशल-क्षेम पूछने की तरह पूछा, 'आज बाहर बहुत गर्मी है न सर? पानी की बोतल भी तो कायदे से ठंडा नहीं हो पा रही। फिर भी, कुछ है मेरे पास। अभी देता हूँ, थोड़ी तरावट तो मिल ही जाएगी।'

आज की इस यात्रा पर प्रस्थित होने के बाद किसी पराये द्वारा अनायास ही बरसाया हुआ पहला उद्‌गार था यह। आत्मीय, अच्छा लगा। उमस हो, और बौछारें अचानक ही आ पड़ें तो कहना ही क्या!

मैं बेड-रोल को खिड़की की टेक पर साधकर उसका मसनद बना लेता हूँ और 'एकदंत-गजानन' बना इसके सहारे उटंग जाता हूँ।

पूरे डब्बे में पथराए शीत से हर शै एक अनचाहा अलस खिंच गया है। अलसा कर मैं भी पसर जाना चाह रहा हूँ कि तभी काले कोट के ऊपर अपना सुरमई थोबड़ा उठाये टी. टी. इ. साहेब आ जाते हैं और अपनी झक्क बत्तीसी की नुमाइश से 'कहाँ चढ़े, कहाँ उतरेंगे, क्या नाम?' पूछकर राजी-खुशी आगे बढ़ जाते हैं।

सामने वाली बर्थ पर एक तड़ित-विनिंदक, गोल-मटोल अधेड़ उम्र की प्रौढ़ा अपने ऊपर रेल वालों की दी हुई सफेद चादर डाले विश्राम कर रहीं हैं। ज्यादा सुंदर तो नहीं, परन्तु कुरूप तो कहीं से भी नहीं। कद-काठी मँझोल और चुम्बकीय, आम की फाँक-सी आँखों वाली। देखने से ही सेठानी दिखतीं हैं, बाद में साबित भी हो गईं। मैं उनसे बिल्कुल बेखबर हूँ, यह कहना झूठ होगा। लेकिन उनकी खबर लेने की अपनी इच्छा को मर्यादा की साँकल से लपेटकर एक संवाद शुरू हो सकने के सही समय की बाट जोह रहा हूँ।

'आप कोई कथावाचक या संन्यासी या विरक्त तो नहीं?' कुछ देर तक मेरे आनन पर अपनी दृष्टि चुभा लेने के बाद वे बोलीं।

'आपके अनुमान कदाचित सही नहीं हैं, परन्तु यह पूरी तरह गलत है, यह भी नहीं कह रहा मैं। फिर भी मैं जानना चाहता हूँ कि आपने यह अनुमान लगाया कैसे?'

'क्योंकि, आपके ललाट प्रशस्त हैं, आप प्रसन्न-बदन हैं, ललाट पर गोरोचन तिलक धारते हैं और आपके वस्त्र शुभ्र हैं। हमारे कोलकाता में ऐसी आभा और शारीरिक द्युति तो सिर्फ उन साधकों की ही होती है जो किसी न किसी सम्प्रदाय से जुड़कर कठिन साधना में रत होते हैं।'

'जी नहीं, मैं न तो किसी सम्प्रदाय से जुड़ा हूँ और न ही कोई साधु, ज्ञानी या संन्यासी हूँ। मैं तो एक छोटा-सा बनिया भर हूँ, गीता प्रेस और अन्य प्रकाशकों के सद-साहित्य और धार्मिक ग्रंथों को बेचकर अपनी आजीविका चलाता हूँ। बस्स। और आप?'

'मैं लखनऊ की रहने वाली हूँ, हावड़ा मंगलाहाट में कपड़ों की

एक छोटी-सी दुकान है हमारी और उसके ही पीछे एक छोटा-सा अपना घर भी।'

आग बढ़ाने के लिए फूस चाहिए होता है और बात बढ़ाने के लिए बहाना। विषय तो कुछ था नहीं, मगर मन है कि अपनी रंजना के लिए किसी नामुराद को भी अपनी मुराद बना लेता है। ऊपर की बर्थ पर लेटे पैसेंजर को ठिठुरन कुछ ज्यादा ही लग रही है क्योंकि कम्बल के ऊपर चादर साँट कर खुद को ओहार में ढँक लिया है उन्होंने और अब तो उनकी नाक भी बजने लगी है। कुछ बच्चों को न गिनें तो बोगी के भीतर सभी लगभग सो रहे हैं। जिन्हें नींद नहीं भी आ रही वे भी सोए हुओं का छल किए चुपचाप लेटे पड़े हैं। पूरा डब्बा लगभग नि:शब्द है। सुनने-सा कुछ है भी तो पिसती हुई पटरियों की चरमराहट जो अपने ऊपर से गुजर रही ट्रेन का बोझ चुपचाप नहीं सह पा रहीं तो अब गालियाँ बरसा रहीं हैं-खच्चर, खच्चर, खटाक! बोगी ए.सी. है तो बाहर की आवाज भी स्पष्ट नहीं सुनी जा सकती।

हम दोनों भी बहुत देर तक गुमसुम अपनी-अपनी जगह बैठे बाहर दीठ जमाए प्रकृति का दीदार पाते रहे। पटरियों से लगे भागते खेत, पोखर, डांगर, डगर, चौपाया, दोपाया। छोटे-छोटे जलाशयों में, गड्ढों में पशुओं के आचमन भर जमा पानी। अनगिन झाड़-झंखाड़। आसोज के आगमन के पहले वाली उमस से परेशान कृषक कमर से तहमद बाँधे आने वाली फसल के रोपण के लिए खेतों में तल्लीन। प्रकृति के इस गुमान को कौन नकारे? देखते-देखते फूट पड़ा मुँह से, 'कितना सुन्दर! कितना सुहाना!'

हुआ कि इन्हीं दो शब्दों के बोल सुनने की मुरीद बनीं बैठीं हैं वो। सुनते ही अपने आसन पर तनिक विचलित हुई हौले से बोलीं, 'कुछ कहा आपने?'

'जी नहीं। कुछ वैसे ही। देखिए न, लू लहकाती इस गर्मी में भी गाँव-देहात की सरसती हवाएँ अपने पोषितों के लिए किस तरह स्नेहिल बनी हुई है। गोधूली की बेला है, खाए-अघाए पशु अब घर जाने के लिए अपने झुण्ड बना रहे हैं। बेपरवा अलमस्त झाड़ियाँ डोल रहीं हैं, मद्धिम सरसती हवाओं ने इन पर धूप का मामूली असर भी नहीं होने दिया। शहरों में प्रकृति की ऐसी न्यारी मर्यादा कब किसको नसीब हो पाती? जीवन तो इन गाँव-जंगलों में ही प्राणवंत हैं, मैडम! है कि नहीं?'

'हाँ, ऐसा ही है। परन्तु, ऐसे एहसास बिना भाव-विभूति के पैदा भी तो नहीं होते। आपके मन में प्रकृति को लेकर जो अनुराग है वह आपके बोल-बचन, व्यवहार-विचार और आपकी भेदक दृष्टि में साफ दिख रहा है। शहर वालों में ऐसे अनुराग भी तो नहीं रह गए हैं?'

अपनी प्रशंसा सुनना किसे नहीं भाता? हालाँकि, सुनते ही मैं थोड़ा असहज हो गया। मगर मन प्रशंसा का रसिया होता है, इसलिए हम जो अब खुले तो बस खुलते ही चले गए। हमारी बेतरतीब बातें कई छोटी-मोटी पगडंडियों को लाँघते-फलाँगते लौकिक-अलौकिक की सीमा तक जा पहुँचीं, गो कि हम इसके लिए कहीं से भी सुयोग्य हैं नहीं।

'मैं मान नहीं सकती कि आप साधना के प्रत्याशी नहीं हैं। जीवन की भागम-भाग में पड़कर भी प्रकृति में शांति को ढूँढ़ने वाला एक साधक ही हो सकता है। मैंने भी कुछ साधु-संन्यासियों का संग किया है और मर्मखोजी दृष्टि; अंत:प्रवेशी दृष्टि के धारक को थोड़ा-थोड़ा समझने भी लगी हूँ।'

प्रशंसा अब पहिचान में बदलने लगी, तो मुझे कहना पड़ा कि साधना के लिए मैं थोड़ा-थोड़ा श्रम करता हूँ। सौभाग्य से गौढ़ सम्प्रदाय के एक सिद्ध से मुझे मार्ग दर्शन भी मिलने लगा है जो स्वयं अष्टांगयोग साधना के प्रेत हैं, और यह सिद्धि अब मेरी भी अभिप्रेत हो रही है।

सुनकर उन्हें कुछ आश्चर्य-सा हुआ, तो वे अपने सशंक भाव से मुझे निहारते हुए बोलीं, 'सुना है, अष्टांगयोग बहुत बड़ी सिद्धि दे सकता है और इसका सिद्ध अपने अंत:मन से सूक्ष्म से सूक्ष्मतर को भी पूर्णता में रेखांकित करने का फन हासिल कर लेता है।'

'आपकी बातें सत्य हो सकती हैं, परन्तु इसका अभी तक मैंने परस भी नहीं पाया है। सुना तो मैंने भी है कि इसे हासिल कर लेने वाला अपनी शक्ति की ओज से आसक्तियों के समस्त बंधन को छिन्न-भिन्न कर सकता है परन्तु अभी तक तो ये सब मेरे लिए भी सुनी-सुनाई ही है। छोड़िए ऐसी गंभीर बातों को। वह देखिए। आकाश का वह गोलाकार वृत्त। कुछ ही देर बाद वहाँ से चाँद की सवारी निकलेगी सफर पर।' मैंने अपनी तर्जनी से आकाश को इंगित किया।

'हाँ, आज ज्येष्ठ माह के शुक्लपक्ष की त्रयोदशी है, दो जून है न आज? शाम के सात बज चुके हैं, इसलिए ही चाँद निकलनेवाला है।'

'जी हाँ, भागती रफ्तार पर इस पूर्ण चन्द्र को निहारना कितना मनोहारी होगा! है कि नहीं?'

लेकिन, आज का यह चाँद मनोहारी होकर भी मनोहारी रह कहाँ पाया? ससीम की मर्यादा तो हमेशा ही असीम से टकराकर

तार-तार होती आई है, आज भी हो गई। अद्भुत; अलौकिक को बखान रहा जीवन अचानक ही खंड-खंड होकर इतना घिनौना और फटेहाल हो जाएगा, ऐसा हमने कब सोचा? कोई नहीं सोच सकता।

एक जोर का धमाका हुआ और क्षणांश में पूरी धरती काँप उठी। बिजलियाँ कड़क गईं, हवाएँ थम गईं, समुद्र विड़ोलित हुआ और दूर-देस खड़े पर्वत तक थरथराने लगे। सुंदर, सुहानी प्रकृति हाली-मजूर बनकर हाथों में खप्पड़ उठाए मानव-रक्त पीती प्रेत हो गई!

'बह्मागा बाजार स्टेशन (बालासोर, उड़ीसा) के पास कोरोमंडल एक्सप्रेस का इंजन 2 जून, शुक्रवार शाम। 20 बजे ट्रैक पर खड़ी मालगाड़ी के ऊपर चढ़ गई जबकि पीछे की तीन बोगियों को छोड़कर ट्रेन की सभी बोगियाँ बेपटरी होकर पलट गईं। इस बीच बगल की पटरी पर हाबड़ा जा रही यशवंतपुर एक्सप्रेस भी इन्हीं बोगियों से टकरा कर दुर्घटनाग्रस्त हो गई।' विदीर्ण हो जाने वाली मानवता की व्यथा-कथा इन्हीं पंक्तियों से शुरू हुई। और पल भर में दिक्-दिगंत तक व्याप गई!

दुनिया के लिए यह एक सूचना भर थी, बाकी की सवारियों के लिए मतलब का संताप, घायलों के लिए मौत का अंदेशा, सगे-सम्बन्धियों के लिए झूठी प्रीत और रुखा नेह और मेरे लिए? मेरे लिए सूने मार्ग और अनचुने पथ पर मौत की जहरीली सच्चाइयों से साक्षात्कार का अवसर! अनदेखे ही अनजानी दिशाओं से अगणित कंठों को फोड़कर ऐसा अपरिमित शोर बरपा कि दुनिया का एक भी कान इस शोर को सुनने लायक नहीं रहा और तब यह कटती-तड़पती मछलियों के बाजार में कोलाहल जैसा बनकर रह गया!

रेल की पटरियों के बीच टूटे-फूटे बासन की तरह बिखरे पड़े लोग, जैसे, कुम्हार के आवा पर आकाश से बिजलियाँ गिर पड़ी हों। खिलोनों की फैक्ट्री के भीतर-सा दृश्य। किसी की बाँह धड़ से अलग, किसी की टाँग तन से छिटक कर दूर तड़पती हुई। कोई देवी की बलि पड़े छागड़ की तरह रुंड-मुंड। किसी की नाक नहीं, किसी के जबड़े भंग। कोई गुड़ी-मुड़ी घोंघा बना हुआ, तो कोई जल से उलीच दी गई। मछली की तरह फड़-फड़ाता!

इस बेड के साथ भी सब कुछ वैसा ही होता है और आदेश दिया जाता है, 'इसे भी। नोट तो कर रहे हो न? इसे भी एम्स ही रेफर करो।' यह क्रम सिलसिलेवार ढंग से आगे बढ़ता है और एक-एक करके किसी को इस हॉस्पिटल में ही रोक लिए जाने का, तो किसी को उसके आये परिजनों को सुपुर्द कर दिए जाने का और किसी में प्राण शेष नहीं होने के कारण उसे मोर्चरी में रखवा देने का फैसला ले लिया जा रहा है। इस तरह ही बेड नं. दो की बत्ती भी जलती है, रोगी और बही को खोजी निगाहों से परखा-देखा जाता है। फिर आदेश नोट किया जाता है, 'इनके पति और बेटा आए हुए हैं, अपने साथ ले जाकर इलाज कराना चाहते हैं, डिस्चार्ज करके सुपर्द कर दो।

मेरा क्या हुआ? मुझे पता नहीं। क्षण भर के लिए पूरे बदन में दर्द का ऐसा सैलाब उमड़ा कि इस सैलाब में ही हमारी सारी पीड़ा दफ्न हो गयी और मानिए तो एक समाधि में उतर आया मैं। व्यावहारिक भाषा में लोग इसे मूर्छा या बेहोशी कहते हैं, डॉक्टरी भाषा में इसे 'कॉमा' कहा जाता है। मेरे शरीर की हलचल का तो यह 'फुलस्टाप' ही था। पता नहीं, मेरी वह सहयात्री कहाँ हैं? पल भर के लिए उन्हें देख लेने की इच्छा हो रही है, परन्तु मेरी पलकें किसी विशाल शिला-खंड के नीचे दब गई-सी हैं। यदि कुछ कह सकने की स्थिति में वे होंगी तो जरूर कह रही होंगी, 'आप तो साधक हैं, अष्टांगयोग साधना में प्रवृत! है न? फिर तो आप सूक्ष्म से सूक्ष्मतर को भी पूर्णता में रेखांकित कर ही रहे होंगे? तो फिर क्या छुपा रह गया आपसे कि मेरी सुध ले ही नहीं रहे? कहीं बड़बोले ढोंगी ही तो आप भी नहीं?'

सच्चाई यह है कि मैं उनका हाल जानने के लिए भीतर तक मथ गया हूँ। समझ सकता हूँ कि वे भी मेरी ही तरह कहीं बेहोश-बेसुध पड़ी होंगी, भंग अंग बनीं। या क्या पता, कहीं पूर्ण स्वस्थ-सुरक्षित ही हों? ऐसा हो, तो बहुत अच्छा। अरूप की सत्ता को कौन जाने, कैसे समझे? परन्तु, आस्था प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा नहीं करती। उनके लिए मेरे मन में पल रही आस्था उन्हें ढूँढ़ निकालना चाहती है। चित्त हिलोर रहा है। विचार विकल हैं। विचार के अनुरूप व्यवहार तत्वनिष्ठा कहलाता है। व्यवहार के लिए क्रियाएँ घटित होती हैं। इनके घटित होने के लिए इन्द्रियों का सक्रिय होना जरूरी होता है। मेरी तो इन्द्रियाँ ही शिथिल हैं, अत: मेरी तत्वनिष्ठा अब किसी काम की नहीं। मैं हारा हुआ हूँ, हरिनाम ही बस सहारा है।

विकल-विद्रूप पसरा हुआ मैं यूँ ही न जाने कब तक सोचता ही रहता कि तब ही दो-तीन जनें मेरे पास आते हैं और तीन तरफ से मेरे ऊपर झुक जाते हैं। 'इसकी नाक पर हाथ धरो और देखो साँसें चल भी रहीं हैं या नहीं।'

'नहीं, बिलकुल ही नहीं।'

'फिर इसे यहाँ से अभी उठाने का कोई फायदा नहीं। बोल दो जमादार को, इसे उठा के मुर्दों की ढेर पर डाल दे।' जो बोल रहा है उसने ही जूता समेत अपने पैर का चौआ मेरे कमर के नीचे डाल दिया है और इसे गैंता की तरह प्रयोग करके तजबीज

लेना चाहता है कि मैं सच में मरा हुआ ही तो हूँ।

उसकी इस हरकत से मैं असहज हो जाता हूँ। मेरी चेतना अतल से उठकर उपस्थ पर आ जाती है और चीखने के प्रयास में मेरा जबड़ा थोड़ा-सा हिल जाता है।

इस प्रकंप को लख लेता है वह, 'मार्फिया लगाओ इसे, जिन्दा है यह। एम्बुलेंस में डालो और जल्दी से हॉस्पिटल भिजवाओ।'

मार्फिया से राहत मिली तो जूते की नोंक से उपजा दर्द भी जाता रहा। भीतर तक शांत बना मैं फिर से अपने चहुँओर की आहट गुनने लग जाता हूँ। यहाँ का पूरा माहौल ही मछली बाजार वाला है। बाजार सजा हुआ है। मछलियाँ या तो शांत हो चुकी है या फिर पानी की फुहार और सरसती बयार पाकर हौले-हौले धड़क रहीं हैं। कोई उसकी ताजगी टटोल रहा है तो कोई अपने स्पर्श देकर उसमें प्राण तजबीज रहा है। कुछ तमाशबीन भी है जो जम आए खून के ठीकरों पर अपने आँसू टपका कर मनुष्य होने की अपनी पहिचान जता रहे हैं। कुछ वो भी है जिनके लिए यह बाजार किसी थ्रिल फिल्म का लाइव शाट्स परोस रहा है!

मौत की महफिल जब-जब सजती है, यह जश्न ऐसा ही आकर्षक और रहस्यमय होता है। रक्तवसना मौत के ताण्डव में सभी सह-कलाकार औपचारिक रहकर सिर्फ अपने ध्येय भंजन की रक्षा भर करते हैं, मुख्य लीला तो मौत की देवी के अधिकार-क्षेत्र में होती है।

मैं 'एस.एस.बी.' मेडिकल कॉलेज, कटक के सर्जिकल वार्ड में पहुँचा दिया गया हूँ। वार्ड कुलीनेस्ट्रेचर पर से उठाकर मुझे जिस बेड पर रक्खा है, वह बेड नं.1 है। यह 'बेड नं 1' ही अब मेरी संज्ञा है। रास्ते की झकझोर से मेरी स्थिरता भंग हो गई है, फिर भी मेरी प्राण-वायु सधी है और अपनी उत्तेजनाओं, विचारों और भावों पर काबू किए हूँ। मुझे बेड पर लिटाकर कुलियों ने राहत पा ली है और एक ने अपने ब्लू शर्ट के पॉकेट से एक बीड़ी और माचिस निकाल कर दूसरे को साथ लिए बहार निकल गए हैं। वार्ड में बीड़ी पीना तो मना ही होगा।

भला हो उनका जिनकी आज्ञा से मुझे यह बेड नसीब हुआ। मैं हैरान हूँ कि मेरे बगल बाले बेड पर जो महिला पड़ी हैं, वे कोई दूसरी नहीं बल्कि मेरी सहयात्री ही हैं। यह एक निरा संयोग है, परन्तु मेरे लिए सुखद है यह। बहुत प्रयासों के बाद मैं समझ पा रहा हूँ कि उनका शरीर पूरी तरह टूट-फूट चुका है। शरीर पर पट्टियाँ बँधी हैं। उनकी तड़ित-विनिंदक आभा इतनी म्लान हो गई है कि वे बिल्कुल भी नहीं पहिचानी जा सकतीं। उनके बेड के साथ लोहे के एक स्टैंड से एक सलाइन की बोतल उल्टा लटका दी जा चुकी है, ऐसे जैसे हमारे थानेदार जालिम सिंह छोटे-मोटे अपराधियों को भी किसी पेड़ से लटकाकर अपना अफरा उतार लेते हैं। एक और भी बोतल तैयार की जा रही है जिसमें गहरे लाल रंग का खून या प्लाज्मा है शायद। नर्सें अब दवा डालने के लिए सिरिंज लिए उनकी नसें ढूँढ़ रहीं हैं।

'नोस टा सम्पुर्नों भेंगे गाछे, कि भाबे सिरिंज प्रोयोग कोरबेन?' छरहरी, कम उम्र वाली नर्स अधेड़ उम्र वाली थुलथुली नर्स से मुँह बिचकाती-सी पूछ रही है।

'केहुनी पलटकर खोजो, जल्दी करो, किसी भी नस में डाल दो डॉक्टर राउंड पर है और झल्ला रहा है। मरने वाली मर रही है, हमें भी मार कर मरेगी! आफत!' अपना माथा अपनी ही हथेली से पीट कर गुस्सा रोगी पर उतार रही है।

'क्या, सचमुच ही मर जाएँगीं? या, मर ही तो नहीं चुकीं?' मेरा मर्म चीत्कार उठता है, 'प्रभो यह क्या हो रहा है! रक्षा करो, रक्षा करो।'

'सलाइन की स्पीड कम करो, बुलबुले कितनी तेज हैं, सूझता नहीं? थुलथुली नर्स अब भी गुस्से में हैं, स्वाभाविक है, झंझावातों से लड़ना आसान कहाँ होता। फिर आदेश दे रही है, 'उस काली हड़ियल को बुलाओ, वहाँ दस नं. के पास घुसी बैठी है। सूझता ही नहीं कि आज हॉस्पिटल में मरी-मुआरियों की बरखा हुई है और चुड़ैल काम के डर से छमकते फिर रही है। सूरत मत देखो, भाग के जाओ और घसीट के लाओ।'

आ गयी हरियल! काली-कलूटी। बरगद के पेड़ से लटकते जड़ों जैसे काले-मोटे-लम्बे चूलों वाली, ऊपर से लाल-लाल गेंदा फूल गूँथे हुए। सिन्दूर पुते होंठ, पीले चकते सने दांत। आँखे काजल की डिबिया। माँ काली की डोलती-डालती प्रतिमा!

उसके आते ही थुलथुली ने कहा, 'बेड नं.1 की अच्छी तरह जल्दी से सफाई कर। पानी चढ़ाना है।'

'ऐक नोमर बेड़े ए खाने पोरुष आचे। आमि एटा पोरुषोक क्लिनिंग कोरबो ना। वार्ड बोय ते डाको।' हाथ चमकाती हड़ियल वहीं थूसड़ गई।

नर्स हड़ियल को चबा जाने वाली नजरों से देखती है, 'यह आज भी नहीं मानेगी। अभी आ जाए इसका यार तो देख लो रासलीला, कमबख्त।'

'अदीदीके, गालिदेओ ना। बोय्लो, गालि दिउ छो केनोड़ काँन यार आमि जानी ना? आमि सबाय के चीनीं। आमि कि आपनाप्क

बलाउछे?' सहम गई दीदी। 'आज उलझना ठीक नहीं। सब खोल के रख देगी डायन।' हाथ जोड़कर बोली, 'आज सबकी नौकरी खतरे में है। अच्छे-बुरे का तो ख्याल रख। बेड नं.1 के कपड़े ठीक कर दे। बेड पैन, कैथेड्रल सेट, सलाइन सब काउन्टर से उठा के टूल-बॉक्स पर लगा दे, डॉक्टर आ रहे हैं। करके बेड न. पाँच पर लग जा।'

'ऐक दोंम एका?'

'हाँ, आज अकेला ही। कोई खाली नहीं है।'

सिस्टर की बातें महसूसते ही कलेजा मुँह को आ गया। 'इतनी दारुण स्थिति है! संघार! सर्वनाश!!' जबसे मैं मूर्छित हुआ हूँ तबसे पहली बार मैं इस तरह प्रकंपित हो रहा हूँ। टाँगें फड़-फड़ाने लगीं हैं, हिचकियाँ बँध आईं हैं।

'डॉक्टर, डॉक्टर!' चिल्ला उठी सिस्टर, 'हिकप हिकपनाँजिया, नाँजिया बेड नं. एक जल्दी जल्दी!'

डॉक्टर भागा-भागा आया। पीछे-पीछे कोई घसीटता-सा एक ऑक्सीजन सिलेंडर लिए आया और मेरा उपचार शुरू हो गया। थोड़ी ही देर में कुछ और डॉक्टर भी मेरे बेड के पास आए और अलग-अलग मेरे अंगों की जाँच करने लग गए। फिर उन्होंने एक गोल चक्कर बना लिया, क्रिकेट के खिलाड़ियों की तरह और मंत्रणा में लग गए। उनमें से एक ने कुछ कहा तो सबके सब एकबारगी ही वहाँ से आगे निकल लिए। मैं समझ गया कि अब मेरी घंटी ही बजने वाली है।

सोचते ही भीतर तक संज्ञा शून्य हो जाता हूँ मैं। मेरा शरीर पहली बार प्राण-शून्य हो रहा है। मैं खुद को दिलासा दिलाता हूँ, 'मरना तब होता है, जब हृदय दुर्बल होकर क्लीव हो जाता है। तुम्हें मरने की क्या जरूरत? तुम तो नचिकेता की संतान हो, मृत्यु को उसके घर में घुसकर ललकार आनेवाला! तुम्हें जीना ही होगा।' और अगले ही क्षण से मेरी चेतना फिर से मेरे शरीर में लौटने लग जाती है। उस वार्ड में घटित हो रहे कलापों के अक्स फिर से मेरे सूक्ष्म-सफेद पटल पर प्रक्षेपित होने लगे हैं।

मैंने लक्ष्य किया कि इस समय वार्ड के भीतर घायलों के चीत्कार-सीत्कार से ज्यादा शोर बाहर से आ रहे लोगों के पदाघात का है। घायलों की सुरक्षा के बहाने उनके तीमारदारों या स्वजनों-परिजनों को तो पूरी सख्ती से बाहर ही रोक रखा गया है। आने वाले लोग वे चाँद-सूरज हैं जिनका प्रवेश निषेधित हो ही नहीं सकता। किसकी शामत आई कि इनको रोक ले, गाज़ गिरने में देर नहीं लगने का!

ऐसी आमद-रफ्त आधी रात तक बनी रही, उसके बाद यह वार्ड शांत होकर मसान ही हो गया!

इस मसान के मुर्दों की रखवाली के लिए दो-तीन नर्सें, इतनी ही दाइयाँ, कुछ वार्ड बॉय और एक जूनियर डॉक्टर, जो खुद ही दिन भर काम करते-करते अधमरा-सा था, बैठा दिए गए हैं।

रौशनी मद्धिम हो रही है। कर्मियों का आलस्य सिर चढ़कर बोल रहा है। जो जहाँ है वहीं या तो घोलट गया है या घोलट जाने की तरकीब सोच रहा है।

'ऐ खाने न। ए खाने जाबे न, से खाने जान। आज के भालो नाई।'

'कैनो न? चोलो। ताड़ाताड़ी चोलो।

'कोथाय?'

'उई दिक्के, सीढ़ी नीचे स्टोर रुमे।'

यही जीवन की लौकिकता है। जहाँ संताप डसता है वहीं पर आनंद भी मचलता है। मौत के आगे जीवन ही जीवन होता है। लोग तो मसान में ही असली फाग खेलते हैं!

वार्ड के अंधकार को हौले-हौले छेड़ती रौशनी में इसके दूसरे छोर से घुसतीं कुछ छायाएँ धीरे-धीरे उस दरवाजे से सटे बेड के पास आती नजर आतीं हैं। नाइट बल्ब जलता है। स्पष्ट हो रहा है कि छायाओं के झुण्ड में डाक्टर, पुलिस वाले, शासनिक अधिकारी और कुछ सहायक हैं।

एक बही थामे व्यक्ति अपनी बही अपनी बाईं हथेली पर खोल लेता है। दो-तीन जनें बही पर झुक आते हैं। वे एक साथ बही और रोगी को देखते हैं और दोनों में ही कुछ पढ़ते हैं। 'इसे भुवनेश्वर एम्स रेफर कर दो।' एक हुक्म देता है, बाकी के सब 'हाँ' में सिर हिलाते हैं, बही थामे व्यक्ति बही पर कुछ नोट करता है। नाइट बल्ब बुझा दिया जाता है और सभी आगे के बेड के पास आ जाते हैं।

इस बेड के साथ भी सब कुछ वैसा ही होता है और आदेश दिया जाता है, 'इसे भी। नोट तो कर रहे हो न? इसे भी एम्स ही रेफर करो।'

यह क्रम सिलसिलेवार ढंग से आगे बढ़ता है और एक-एक करके किसी को इस हॉस्पिटल में ही रोक लिए जाने का, तो किसी को उसके आये परिजनों को सुपुर्द कर दिए जाने का और किसी में प्राण शेष नहीं होने के कारण उसे मोर्चरी में रखवा देने का फैसला ले लिया जा रहा है। इस तरह ही बेड नं. दो की बत्ती भी जलती है, रोगी और बही को खोजी निगाहों से

परखा-देखा जाता है। फिर आदेश नोट किया जाता है, 'इनके पति और बेटा आए हुए हैं, अपने साथ ले जाकर इलाज कराना चाहते हैं, डिस्चार्ज करके सुपर्द कर दो।' मैं खुश हो जाता हूँ, 'मैडम को उनका परिवार मिल गया!'

अबकी बारी बेड नं.1, यानी मेरी है। 'यह जबसे भरती हुआ है क्रिटिकल ही पड़ा है। कोमा में है लेकिन बॉडी-सिस्टम दुरुस्त है। रेलवे के रिकार्ड में यह कोलकाता से है। खबर कर दी गई है फिर भी परिवार का कोई आया नहीं है। हेडेक है यह, कब अचानक मुसीबत बन जाए, कहा नहीं जा सकता। अच्छा है कि इसे भी रेफर ही कर दो।'

यही मोल है इस अनमोल जिन्दगी का! सब्जियों की तरह लोग अलग-अलग खाँचों में बाँटे जा रहे हैं, कहीं भी खपा दिए जाने के लिए कि, चलती रहे अपनी नौकरी, आबाद रहे अपना घर-परिवार, जिंदाबाद रहे इंसानी फितरत!

सुबह होते न होते वार्ड लगभग खाली हो गया है। खाली करने में यहाँ के कर्मी खूब पसीना बहा रहे हैं, डॉक्टर, नर्स, कुली, दाई, सबके सब। पूरी सावधानी और गोपनीयता बरती जा रही है। घायल रोगी स्ट्रेचर पर उठाए जा रहे हैं। ऑक्सीजन मास्क, खून, प्लाज्मा, सलाइन बोतल उनके साथ उनके असबाब की तरह जोड़े जा रहे हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो बचते-बचाते सबकी नजरों से छुपकर सही-सलामत बची रह गईं दवाइयाँ, सिरिंज, सलाइन, रुई के बण्डल उठाकर दोनों हाथों से सहेज रहें हैं, बाजार इनके बदले जो दे दे, वही बहुत!

मेरी सह-यात्री का स्ट्रेचर भी अब उठने वाला है। अच्छा है, लावारिस से वारिस होने जा रहीं हैं। मैं साफ महसूस कर रहा हूँ कि उनकी वर्फजाद धवल बत्तीसी होंठों के परदे हटाकर मुझसे विदा माँगना चाह रहीं हैं। मेरी भी नियति आहत पुतलियाँ बरबस खुल जाना चाहती हैं, 'जिन्दगी की बेशुमार मेहर तुम्हारे नसीब हो मेरे अल्पकालिक दोस्त!' दिल हौले-हौले धड़क रहा है। मन 'निराला' के शब्द बोलना चाहता है, 'स्नेह निर्झर बह गया है, रेत-सा तन रह गया है।'

अगले दिन जिस समय चतुर्दशी का असहाय-निरुपाय चाँद आठ-आठ आँसू रोते हुए लाल रंग की झाड़ू से सारा आकाश धो-पोंछ देना चाह रहा है, ठीक उस समय ही हमारी सवारी भुवनेश्वर एम्स में दाखिल होती है। डॉक्टर की तरह कहना चाहूँ तो कहना होगा कि भर रास्ते मैं कोमा में ही रहा परन्तु रहस्य की बात यह है कि दो दिनों से दरकती मानवता और काइयाँ फितूर को सहते-सहते मेरी चेतना मेरे शरीर की गहराई में उब-डूब होने लगी है। सच्चाई यह भी है कि कुछ ऐसे भी जरूर थे जो इस मानवता की रक्षा के लिए कुछ भी छोड़ना नहीं चाहते थे। और यही वह शै है जिस कारण यह दुनिया दिलचस्पियों से भरी पड़ी है। मेरी दिलचस्पी अब अपने अतल को छोड़कर दुनियादारी की ताबेदारी के लिए मचल उठी है। यहाँ, इस अस्पताल में आँखें सैकड़ों हैं, कुछ जार-बेजार, कुछ पथराई सी बेजान। सैकड़ों पैर भी हैं, कुछ बदहवास भागते हुए, कुछ घर-परिवार की चक्की में बँधकर घसीटते हुए। कंठ भी बेशुमार, कुछ चिंघाड़ते हुए, कुछ सूखकर उल्लुओं की तरह हूत्कार भरते हुए।

अब इसे योग कहिए, संयोग कहिए या फिर मेरे भग्य का भोग ही कह लीजिए कि इस अस्पताल में आकर भी मैं बेड नं. एक ही हूँ! यानी, यहाँ भी मुझे वार्ड का बेड नं. एक ही मिला है।

मेरे बेड के बगल की दीवार शीशे की है लेकिन उसके पार का न तो मैं आकाश झाँक सकता हूँ न ही बाहर की कोई हल-चल। इससे सटा एक कम्युनिटी हॉल है जिसकी कुछ गतिविधियाँ यहाँ से देखीं-समझीं जा सकती हैं।

रात ढलने लगी है। लोगों के खाने का वक्त निकल रहा है इसलिए काम पर तैनात लोग हॉल के भीतर जुट आए हैं। अधिकारी, डॉक्टर, पुलिस वाले और कुछ अन्य भी। अपनी हस्ती और ओहदे के मुताबिक अपनी-अपनी पाँत पकड़ कर सभी खाना खा रहे हैं। खाना खतम होते ही हॉल के अंदर एक अजब-सी हल-चल तारी हो जाती है और कुछ लोग एक मशीन उठाए वार्ड के अंदर दाखिल होने लगते हैं।

'बेड नं. एक'। एक चंचल-सा नौजवान हाथ में रजिस्टर थामे एक स्टूल खींचकर मेरे पास आ बैठता है। बेड पर ही रजिस्टर फैलाता है और कलम खोल कर कुछ लिखना चाहता है, 'सल्ला, रिफिल टा शेष हुई गाछे!' कूड़ेदान को लक्ष्य करके कलम फेंकता है और अपने साथी से कलम लेकर कुछ ऊटपटाँग हरकतों पर उतर आता है।

मेरी कलाई बासी मूली की तरह थोड़ी मोड़ ली जाती है और एक-एक कर पाँचों अँगुलियाँ एक मशीन पर बैठाई जाती हैं। फिर यह खेल दूसरी हथेली के साथ भी खेला जाता है।

'ओंगली छाप लिवा होय छे। इरीसे स्कैनिंग कोरते होवे तो?'

'कोरिये नीन'।

जिबह किये हुए बकरे की खाल उधेड़ने की तरह मेरी पुतलियाँ उधेड़ ली जाती हैं।

मेरा भोला-भाला मन मनुष्य की बनाई हुई नूतन व्यवस्था पर हँसना चाहता है। किसी व्यक्ति की पहिचान के लिए कैसी-कैसी तरकीबें निकल आई हैं! अब इन्होंने मेरी आँखों की छवि उतार ली है तो क्या मालूम इन आँखों में पूर्व की संचित कितनी छवियाँ इनके साथ चली गई हों? परन्तु विज्ञान है यह, तो अच्छा ही होगा।

इस बीच ही दो-तीन जनों की एक दूसरी टोली भी आ गई। यह डॉक्टरों की टोली है।

'बायोमेट्रिक्स पूरी हो गई आपकी?'

'हो तो गई, परन्तु इनका मिलान भी हो जाए तब तोड़ लाखों की संख्या में डाटा पड़े होते हैं सर।'

'हाँ, ठीक है। अब आप जाकर आराम से डाटा मैच कर लीजिए, तब तक हम इनका न्यूरो डाटा तैयार कर लेते हैं।'

डॉक्टरों ने मेरी खोपड़ी, नसें, जाँघ-बाँहों की मछलियाँ और न जाने क्या-क्या देखा-परखा।

'सर! देअर इज नथिंग सो एबनोरमल, बट द मैन इज इन कोमा फ्रॉम वेरी बिगनिंग?'

'होता है, कभी-कभी ऐसा भी होता है। इसमें ज्यादा सोचने की जरूरत नहीं है। यह एक एक्सिडेंटल केस है, सो, वी हैव टू डू आवर फार्मलिटिज ओनली। ओ.के. इनका कोई आ जाए तो उन्हें सुपुर्द कर दो अदरवाइज़ मार्चुरी इज देअर।'

वे चले गए। परन्तु उनके पीछे-पीछे आई एक सिस्टर वहीं ठिठक कर अपनी भरी-भरी आँखों से मुझे निहारती रही। उसने फिर से मेरे पंजों में दास्ताने डाले, ऑक्सीजन मास्क को नाकों पर ठीक से बैठाया, वेंटिलेशन के सभी डिवाइसों को देख-परख ली और मुझ पर झुक कर मर्सिया पड़ने की तरह बुदबुदाई, 'ओ गॉड! कैसा छैल-छविला जवान। दया करो इस पर।'

सिस्टर की प्रार्थना से मुझे शांति मिली। अब तक रात का सन्नाटा वार्ड में पूरी तरह तारी हो चुका है। कम्युनिटी हॉल भी अब लगभग खाली है। कोलाहल थम गया है। कोलाहल विहीनता भी किसी-न-किसी अतिरेक को इंगित करती है। इस इंगित अतिरेक में ही मैं बिना सोचे-समझे तैरने-उतराने लगा हूँ। 'आप कोई कथावाचक या संन्यासी या विरक्त तो नहीं? खाए-अघाए पशु अब अपने घर जाने के लिए झुण्ड बना रहे हैं, शहरों में ऐसी न्यारी मर्यादाएँ कहाँ दिखतीं, जीवन तो इन ग्राम-जंगलों में ही प्राणवंत है ऐसे एहसास बिना भाव-विभूति के पैदा कहाँ होते सुना है, अष्टांगयोग साधना बहुत बड़ी सिद्धि देती है। इसका सिद्ध अपने अंतर्मन से सूक्ष्म से सूक्ष्मतर को भी पूर्णता में अंकित करने का फन हासिल कर लेता है।'

अगले दिन मुझे झक्क सफेद चादर से अपाद-मस्तक ढाँक दिया गया है। वार्ड कूली एक स्ट्रेचर पर मुझे उठाकर निकलनेवाले ही हैं। सिस्टर आँख पोंछते, नाक झाड़ते भारी मन से मेरे पीछे लग गई हैं, किसी से पूछते हुए कि, 'इस बेचारे का अब तक कोई आया नहीं न?'

ठीक तभी वायुवेग से भागता-हाँफता कोई दूत आता है और सबको रोकते हुए फुस-फुसाता है, 'रुक जाओ। इसके परिवार वाले आ गए हैं। सहायक साहेब के कमरे में हैं, खानापूर्ति चल रही है।'

हो गई खानापूर्ती! बाहर मेरी माँ, पत्नी और बेटी पछाड़ खाते हुए छाती पर दोहत्थड़ पीट रहीं हैं। कुछ है जो उन्हें ढाढस बँधा रहे हैं। मेरा स्ट्रेचर उनके पास पहुँचा दिया गया है। वे मुझ पर लद गए हैं। माँ मेरी छाती टटोलती हैं। पत्नी मेरे मुँह पर से चादर हटा कर मुझे बेतहाशा चूमे जा रही है। बेटी काठ बन कर उन्हें ऐसा करते चुपचाप देखे जा रही है। उनके स्पर्श, उनकी चुभन, उनकी चीत्कार से मेरा मर्म बुरी तरह उद्विग्न हो रहा है। मौत, जो अबतक मेरी जिन्दगी पर हावी हो रही है, को मैं अब किसी सूरत में बर्दाश्त नहीं कर सकता। मेरे भीतर एक लहर-सी उठती है और आँखें मिट-मिटाकर पूरी तरह खुल जातीं हैं।

'पापा जाग गए।'

'बेटा जिन्दा है।'

'सुहाग सलामत है।'

रोते-रोते सब नाच रहे हैं। पास खड़े डॉक्टर को काठ मार गया है। वार्ड कुली ठगमुर्की मारे अपलक देखे जा रहे हैं। पास खड़े लोगों में कानाफूसी शुरू हो गई है। सिस्टर विगलित आँखों से अश्रुधार बहाते, दोनों हथेलियाँ एक साथ खोलकर आसमान की टेक लगा दी है, 'गॉड! यू अर ग्रेट!'

'कहानी खत्म हुई और ऐसी खत्म हुई। कि लोग रोने लगे तालियाँ बजाते हुए। (रहमान फ़ारिश)

फ्लैट न. 6, मे फेयर अपार्टमेंट,
सहस्त्रधारा रोड, मन्दाकिनी विहार के पास,
देहारादून-248001(उ. खं.)
मो.-9717022082

पुत्रेष्टि

– तपेश भौमिक

जन्म – 2 अप्रैल 1954।
शिक्षा – एम.ए.।
रचनाएँ – पत्र–पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।
सम्मान – बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा शताब्दी सम्मान।

घर पर जबसे नई बहू अनन्या आई है, आस–पड़ोस में उसकी तूती बोलने लगी है जब कि अपने ही घर पर वह बेगानी–सी रहने लगी। कहीं किसी काम में उसकी हिस्सेदारी नहीं। कुछ पूछे सासु माँ से तो जवाब नहीं। देवर का घूरना उसे डराता कभी। जब तक पति या ससुर जी घर में हैं तब तक सासु माँ की नौटंकी चलती रहती और वे घर से निकले नहीं कि वही बेगानी हरकत।

इसका अर्थ यह कतई नहीं कि अनन्या झगड़ालू या अन्य कुछ रही हो। नाप–तौल कर बोलने में तो मानो उसने महारत हासिल कर रखी हो। कोई उसकी नजरों के आगे अशिष्ट आचरण करे और वह चुप्पी साध ले, ऐसी भी नहीं है वह। इतने कायदे से कहे कि कड़े से कड़े की भी बोलती बंद हो जाए। कुछ लोग ऐसे होते ही हैं जो जहाँ जाते हैं, वहीं छा जाते हैं और यह बहू भी उसी बिरादरी की है। बहू की बातों में जो अपनापन झलकता उसकी बदौलत ही लोग खिंचे चले आते। आस–पड़ोस एवं यहाँ तक कि ससुर जी और उनके बिरादरीवालों का भी यही मानना है जब कि सासु माँ को यह बात गले नहीं उतरती। लोग जैसे ही बहू की प्रशंसा करते वैसे ही उन्हें मिर्ची लग जाती।

कहते हैं न कि तकदीर और तकलीफ का एक अदृश्य नाता भी होता है। किसी की ऐसी तकदीर नहीं जिसे तकलीफ न हो। इसलिए यह कहना जरूरी है कि बात यहाँ तक होती तो वह शायद अपने आप को एडजस्ट कर लेती। आस–पड़ोस में इन माँ–बेटे की जोड़ी की लगती बातें खूब चलतीं। जहाँ कोई पारिवारिक कलह हो तो लोग इन्हीं को बुलाते। अब नई बहू आई तो नई या पुरानी सारी बहुएँ और युवती लड़कियाँ अनन्या के आगे–पीछे मँडराने लगीं। क्या सुई–धागे की उलझन, क्या ननद–भौजाई की अनबन, यहाँ तक कि पति–पत्नी की अनबन आदि सारी बातों की पेचीदगी भरी उलझनों में एक निष्पक्ष सलाहकर के रूप में उभरने लगी थी वह। यही कारण था कि दो–चार सप्ताह बीतते–न–बीतते अनन्या एक अदृश्य प्रतियोगिता के भँवर में फँसती चली गई। समाज–बिरादरी में सासु–माँ और देवर जी की साख घटने लगी। अब जो आए वही अनन्या के बारे में पूछा करे। अब इस माँ–बेटे की जोड़ी को यहाँ तक शिकायत होने लगी कि आस–पड़ोस की औरतों और बड़े–बूढ़ों पर तो मानो बहू ने जादू चला रखा है, सब उसी की तारीफ करें! जलन क्यों न हो जहाँ किसी की नेतागिरी का परचम नीचे की ओर खिसकने लगे और उसकी जगह किसी दूसरे नेता का परचम लहरना चाहता हो तो पहला नेता हाथ पर हाथ धरे कैसे बैठा रह सकता है।

अब आस–पड़ोस में इस माँ–बेटे की जोड़ी के दब–दबे का पारा नीचे खिसकने लगा क्यों कि कूट चाल में पारंगत इन दोनों में से किसी की अब किसी पर कुछ जम नहीं रही थी। पड़ोस से गीतू की माँ को छोड़ कर औरतों ने बहू जी को उनकी सासु और देवर जी के बारे में एक–एक समाचार देकर अपने को परितृप्त समझने लगी थीं क्योंकि उनके भी पुराने घाव अब तक भरे नहीं थे। इन बातों में गीतू की माँ और देवर जी के बारे में भी मसालेदार बातें होतीं। नतीजतन माँ–बेटे और गीतू की माँ की तिकड़ी की मिलीजुली कारगुजारी भी अनन्या के लिए नींद हराम करनेवाली बात हो गई। पतिदेव तो देव ही निकले जिन्हें सांसारिक बंधनों से कोई लेना–देना न था। स्कूल मास्टरी और ट्यूशन से जो समय बचता वह भगवान को अर्पित हो जाता। अपने ही घर के आँगन में एक छोटा–सा मंदिर जहाँ बैठ कर गीता का पाठ करना एवं बाकी समय को गाँव के चौपाल में बिता देते। किसी भी धार्मिक कर्मकांड में भागीदारी होना इनका शगल शुरू से ही रहा है।

दरअसल लोग सासु माँ और देवर जी की हेकड़ी के कायल थे न कि उनके गुणों के। पहली बात यह थी कि औरतें अपनी

समस्या इन सासु माँ से कहतीं और मर्द छोटू भैया से। लेकिन छोटू भैया नि:स्वार्थ सेवा किसी को न देते। वे हर काम का कमीशन जरा-सा घुमाकर तथा बहाने बना कर जरूर ले लेते। लोगों को भी यह पता था कि वे अपने दम पर सुलह करवाते हैं। डरा-धमका कर सुलह करवाने में तो वे उस्ताद ही हैं। एक पक्ष उनसे खुश हो जाता तो दूसरा पक्ष नाखुश। लेकिन कोई खुल कर विरोध करे इतना साहस इलाके भर में किसी में शायद ही रहा हो!

अनन्या की बातों और विचारों का जादू ऐसा चला कि औरतें अपनी शारीरिक समस्या को लेकर तो आने ही लगीं, साथ ही बच्चे की उल्टी-दस्त या नज़ला-बुखार के लिए या बच्चा केवल रो रहा हो तब भी उसके पास निदान पाने के लिए आने लगीं थीं। वह अब तक बच्चे की माँ न होते हुए भी अनुभवी माँ जैसी सलाह-मशविरा देने लगी थीं जब कि ससुराल आए हुए अभी गिनती के चार महीने भी पूरे नहीं हुए थे। इसी बीच उसने होम्योपैथी के द्वारा कितनों को ही, विशेष कर बच्चों को कई बीमारियों से राहत दिला चुकी थी। वह अपने पूर्व तजुर्बे को बखूबी आजमाने लगी थी जिसका सीधा असर उसकी लोकप्रियता दिखने लगी। जब तक शादी नहीं हुई थी तब तक अपने पिता जी की होम्योपैथी डिस्पेन्सरी में बतौर सहायक का काम सँभाल देती थी। कभी-कभी तो केस-स्टडी में पिता जी उससे मशविरा करके ही अंतिम निर्णय लेते थे कि फलाने पेशेंट को कौन-सी दवा दी जाए। तजुर्बा तो था ही, अब सासु माँ के तानों ने उसे और आगे बढ़ा दिया था। भीतर से एक जिद्द उस पर हावी होने लगी थी। कोई मेहमान घर आते तो घर के माहौल से उन्हें यह समझते देर न लगती कि इस घर में सास-बहू में एक अदृश्य प्रतियोगिता चल रही है। सासु माँ तो आजकल यह भी कहने लगी थीं कि वह तो बेटे को व्याह करवा कर घर में बहू नहीं बल्कि चेरिटेबल डिस्पेन्सरी की डॉक्टरनी ले आई हैं। शाम को जब दो-चार लोगों की भीड़ लग जाती तो फिर ताने सुनने पड़ते।

'बहू, मिलने का समय वाला एक साइन-बोर्ड टाँग देना। अरे! मेरे ही कारण इस बहू को इतना प्रचार मिल गया है। जब कोई हमसे बात करने आए तो यह बीच में टपक पड़ती है।'

'टोटके वाला निदान कोई हमसे ज्यादा क्या दे सकेगा।' सासु माँ बात-बात पर उन्हें कहतीं जो बहू के पास आया करतीं। पिता जी की डॉक्टरी और दादी माँ के टोटके, सब कुछ मिला-जुला कर नई बहू को राज-वैद्य नहीं तो रानी-वैद्य जरूर बना दिया है। चिकित्सा से संबन्धित सलाह देने में दवा की जगह अब तक वह परामर्श ही अधिक दे रही थी। वह बात-बात पर सतर्क करती कि जमाना 'माँ-मौसी' का न रहा। अब तो 'जितनी दवा उतनी बीमारी' वाली बात आ गई। हमें डॉक्टर की सलाह जरूर ले लेनी चाहिए। इस बीच 'आँगन-बाड़ी' की सेविकाओं को भी बहू की भनक लग गई थी। उन्होंने अपने हेल्थ सुपरवाइजर तक बात की जानकारी दे दी थीं। थोड़े ही दिनों में नई-बहू नामक प्राणी बहू जी में तब्दील हो गई थी।

अब तक ग्रामीण स्वास्थ्य केंद्र क्या, ब्लॉक स्वास्थ्य-केंद्र तक भी बहू जी की खबर जा चुकी थी। किस बीमारी के लिए किस डॉक्टर के पास जाना चाहिए, भला बहू जी से ज्यादा कौन जाने! एक दिन छोटू दादा कुछ ज्यादा ही पीकर घर लौटे तो उनकी आँखों की खुमारी देख कर ही बहू जी समझ गईं कि उनसे दूर खिसक जाना चाहिए। वह खिसकना ही चाह रही थी कि... 'भाभी! सिर दुख रहा है, सिर दबा दो न।' छोटू ने धूर्तता भरे स्वर में विनती की। 'देवर जी! मैं अपने पति के सिर दबाने के लिए आई हूँ। आप अपने दिल में कोई-सा लड्डू पका रहे हो तो उससे बाज आइए। भाभी का दर्जा दीजिए। यही हमारा संस्कार भी है।' इतना कहकर वह अपने कमरे में जा ही रही थी कि सासु माँ ने जरा ऊँचे स्वर में छोटू भैया के आगे खाना परोसने को कहा। इस पर बहूजी ने साफ शब्दों में कह दिया कि उनकी हालत ठीक नहीं है, वे स्वयं आकर खाना परोसें। इतना कह कर वह अपने पति से मोबाइल पर बातें करने लगी। सासु माँ के दिमाग का पारा इतना चढ़ा कि पहले का जमाना होता तो बहू की खबर ले लेती। लेकिन वह भी कम सयानी नहीं थी! उन्होंने जुबान पर आई गाली को निगल कर इतना भर कहा, 'इससे घर का काम-काज न सँभलेगा।' बुदबुदाती हुई खुद ही खाना परोसने चली गई। उनके समर्थन में लाड़ला छोटू बेटा आज तो एक कदम आगे बढ़कर कहने लगा, 'माँ! अपनी बहू के लिए दवाखाना खोल देना, इनसे रसोई न सँभलेगी। हम दवा पीकर रह लेंगे।' साथ ही उसने भाभी की बातों का जवाब इतनी सारी लड़खड़ाती आवाज में दिया कि बहू जी की जुबान तक यह बात चली आई कि-'तो दारू कौन पीएगा?' लेकिन उनकी समझदारी ने उन्हें रोक दिया। बात बढ़ने ही वाली थी कि टल गई।

इस नए जमाने में छोटू भैया बड़े सँभल कर चलते हैं लेकिन प्राय: कोई न कोई जहमत आड़े आ ही जाती है। गीतू की माँ कई दिनों से छोटू भैया को चेता रही थी कि उसका अबॉर्शन करा दे। वह उसके ही कारण पेट से रह गई है। पति कोई डेढ़-

दो साल से बाहर है तो कैसे कुछ गोल-मोल बात की जा सकती है! छोटू भैया कई दिनों से उसकी बातों को नजर-अंदाज करते जा रहे थे। लेकिन आज तो उसने आखिरी चेतावनी दे रखी है कि अबार्शन न कराए तो वह आत्म-हत्या कर लेगी। उससे पहले पत्र लिख कर उसके पेट से रहने का खुलासा भी कर देगी ताकि गुनहगार को अपने किए की सजा मिले।

इसलिए उस दिन शाम को छोटू भैया ने कुछ ज्यादा ही पी ली थी। वे जब खाना खा कर उल्टी करने लगे तब तक बड़ी बहू दौड़ कर अपने कमरे से बाहर आ गई थी। इससे पहले कि सासु माँ बाहर आतीं। अब सासु माँ एक तरफ छोटू को जहाँ झिड़कने लगीं वहीं दूसरी तरफ बहूजी को कोई दवा देने की बात कहने लगीं। 'नहीं माँ, कोई दवा की आवश्यकता नहीं है, अभी सो जाएँगे तो आराम मिलेगा।' इतना कह कर दुर्गंध के कारण नाक पर साड़ी का पल्लू बाँध कर वह सफाई करने लगीं। तभी उल्टी की आवाज सुनकर भीतर कमरे से ससुर जी चिल्लाने लगे कि क्या हुआ। इस पर सासु माँ जब तक कुछ कहतीं तब तक अनन्या ने उन्हें इशारे से चुप रहने को कह कर अपनी आवाज को कुछ कराहने जैसी बनाकर कहा, 'कुछ नहीं पिता जी, थोड़ा अम्ल का प्रकोप है। मैंने थोड़ी-सी उल्टी कर दी है। कोई बात नहीं, अभी दवा ले लेती हूँ।' सासु माँ ने धीरे से केवल इतना कहा, 'झूठी कहीं की!' आज शायद पहली बार उन्होंने बहू की ओर प्यार से देखा था। उनकी आँखों में खुशियों के आँसू छलक आए थे।

ऊधर ससुर जी तो दिन भर अपने चाय-चौपाल में चमचों के साथ चकल्लस करते तथा मुकरियाँ भाँजते; अपने देह पर मूक्कियाँ लगवाते। फौज के दिनों की कितनी ही मनगढ़ंत कहानियाँ उनकी झोली से निकलतीं जिससे निखट्टुओं का मन बहलता रहता। साथ ही अपनी गाँठ की कौड़ी से कभी-कभी उन्हें चाय भी पिला देते। पेट में चूहों की हरकत होने लगती तो घर आते। खाना खाते हुए भी हरेक आइटम पर छींटा-कशी करते रहते —दाल में नमक कुछ ज्यादा ही पड़ा है, सब्जी में तेल-मसालों की बाढ़ आ गई है, आदि-आदि। इनके अलावा जब कराहने की नौबत आती तो बहू की मुफ्त सेवाओं के लिए आ धमकते। कभी-कभी सासुजी से कुछ खुसर-फुसर भी करते। एक दिन पर्दे की ओट से अनन्या ने सुना कि ससुरजी पूछ रहे हैं कि क्या कुछ काम बना?

बात बहुत बड़ी हो जाती अगर ससुर जी उठकर आ जाते और छोटू का नजारा देख लेते; कोहराम मच जाता। सीधे बेल्ट से पिटाई कर देते। इस तरह की वारदात दो-चार बार हो चुकी थी। एक बार तो ऐसा हुआ कि छोटू बाप को पीटने के लिए उद्यत हो गया था। तब इस बहू ने ही हाथ-पाँव जोड़कर उस कलंक से छोटू को बचाया था। एक तरफ बाप 'बब्बर-शेर' तो दूसरी ओर छोटा बेटा 'बिगड़ैल-सांड!' और क्यों न हों? आर्मी में कई बरस तक सूबेदार के पद पर रह कर कई पदक हासिल कर अब रिटायर हुए थे। बड़े बेटे ने आर्मी ज्वाइन नहीं की। बदले में मास्टरी की नौकरी में जम गए। फिर छोटे को भी आर्मी की नौकरी के लिए तैयार होने को कहते, लेकिन गाँव में लीडरी करने से इनको फुरसत कहाँ!

पहले सासु जी के दिमाग में एक बात बार-बार आने लगी थी कि इस बहू की बच्ची को छोटू की बहू लाकर नीचा दिखाऊँगी तो इसके होश ठिकाने लग जाएँगे। लेकिन छोटू की बदनामी इतनी फैल चुकी थी कि कोई बेटी क्यों दे। लेकिन कल रात जो हुआ उस घटना ने सासु जी का दिल पसीज गया था। फिर भी वह इतनी आसानी से नरम पड़ने वाली भी नहीं थीं। वह सोच रही थीं कि बहू बहुत ही सयानी है। इसके साथ तो बहुत ही सोच-समझ कर पेश आना चाहिए। बार-बार सोचती कि वह बहू के आगे हथियार नहीं डालेगी। वह चाहती कि बहू लोक-समाज में इतना भर कहती रहे कि आज मैं जो कुछ भी हूँ वह अपनी परम पूज्य सासु माँ की बदौलत ही हूँ। लेकिन बहू भी इतनी घाघ कि सासु के आगे जरा भी घास डालने को तैयार नहीं। यहाँ गाँव-समाज में औरतें जैसे-जैसे बहू के पीछे डोलने लगीं वैसे-वैसे सासु माँ का मन सौतिया डाह के कारण जलने लगा। वह मौके-बेमौके बहू को नीचा दिखाने में तुल जाती।

कोई दो-ढाई साल तो बीत ही गए होंगे, अब तक सासु माँ की गोद में एक अदद पोता उपहार स्वरूप देना था लेकिन यह क्या! न बहू कुछ कहे और न बेटा। अत: सासु माँ एक नया उपद्रव मचाने लगीं। एक दिन जब यह समाचार मिला की पड़ोसन के यहाँ लाल की पत्नी के गोद हरे हो गए तो इन सासु माँ का चेहरा अचानक मुरझा गया और अनन्या के प्रति जहर उगलने को तैयार हो गईं।

'बहू! तेरी शादी के तो तीन वर्ष हो गए, पोते का मुँह कब दिखाएगी? लाल की बहुरिया ने तो तेरे से पीछे आकर बेटा न दे कर सबका दिल जीत लिया। तू तो केवल डॉक्टरनी बनी फिरा करती और तेरा पति मास्टरी। अपने घर के अँधेरे को दूर करने की कोई सुध है तुम दोनों को?' कहते हुए सासु माँ के चेहरे पर कई प्रश्न चिह्न उभर आए थे। ललाट पर उभर आई आड़ी-तिरछी रेखाएँ साफ पढ़ी जा सकती थीं। 'माँजी मैं कुछ समझी नहीं।' अनन्या बात की गाँठ को समझ कर भी सासु की जुबान की ऐंठ का कुछ और खुलासा करवाना चाहती थी। 'तू तो खुद ही इतनी समझदार है कि तुझे समझाना सासु के बस की बात नहीं।' सासु माँ ने कहा। 'धीरज धरिए।' अनन्या ने बेहद समझदारी

से प्रत्युत्तर में कहा। 'आजकल की लड़कियाँ तो फैशन की दीवानी हैं। तू भी उन्हीं की बिरादरी की है। बच्चे का झंझट मोल लेकर जोखिम उठाना नहीं चाहती, और क्या, कोई कमी है तो दवा-दारू कर।' सासु माँ ने उत्तेजित होकर कहा। इस बात से अनन्या बिफर गई। 'माँजी अभी आप शांत हो जाइए। हमें भी दुनियादारी मालूम है। अन्य दस-पाँच से मुझे न जोड़ें तो अच्छा है। इतना कह कर उसने वहाँ से हट जाना ही ठीक समझा।

छोटी ननद ने भी यही बात छेड़ी तो उसने इतना भर कहा, 'आपके भैया भी तो कुछ रुचि नहीं दिखाते, वे तो सारा समय स्कूल और ट्यूशन में ही व्यस्त रहते हैं। उन्हें कहाँ फुर्सत कि अपना भी कोई है जिसके साथ कुछ समय बिताना चाहिए!'

ननद ने केवल यह कहा था कि कोई तो तरकीब निकालो कि तुम माँ बन सको। खुद समझदार हो और सहज समाधान का रास्ता तुम्हारे आस-पास हो तो उसे अपनी भलाई के लिए काम में लगाओ, तुम्हें कौन रोकेगा। प्रयोग में लाने भर की देरी है, बस। इस बात को सुनकर वह भीतर-ही भीतर तिलमिला कर रह गई थी। एक बार मन हुआ कि वह इस बात का खुलासा कर दे कि तुम्हारे भैया तो एकदम निष्पंद हैं। उन्हें तो शादी ही नहीं करनी चाहिए थी। अनन्या क्या कहना चाह रही थी, यह शायद ननद भाँप गई थी जिसके कारण उसने तत्काल बात को विराम दे दिया।

अनन्या अब तक यह समझ चुकी थी कि उसे कुछ ठोस निर्णय लेने से पहले प्लान बना कर चलना चाहिए। साथ ही यह भी सोचने लगी कि उसकी जगह कोई दूसरी लड़की होती तो कबकी इन चेहरों पर कालिख पोत कर चली जाती। अब उसे वे कुछ पुरानी बातें याद आ गईं जब सासु माँ जान बूझ कर छोटू के घर आने के बाद उसे अकेली छोड़ कर घंटों घर से खिसक जाया करती थीं। उसने कई दफा इस बात की शिकायत भी की थी कि उसे इस प्रकार अकेली छोड़ कर न जाया करें क्योंकि उसे अकेले में डर लगता है। इस पर सासु माँ कहतीं कि घर पर देवर तो था ही, फिर तू अकेली कैसे रह गई थी?

उधर ससुर जी तो दिन भर अपने चाय-चौपाल में चमचों के साथ चकल्लस करते तथा मुकरियाँ भाँजते; अपने देह पर मूक्कियाँ लगवाते। फौज के दिनों की कितनी ही मनगढ़ंत कहानियाँ उनकी झोली से निकलतीं जिससे निखट्टुओं का मन बहलता रहता। साथ ही अपनी गाँठ की कौड़ी से कभी-कभी उन्हें चाय भी पिला देते। पेट में चूहों की हरकत होने लगती तो घर आते। खाना खाते हुए भी हरेक आइटम पर छींटा-कशी करते रहते — दाल में नमक कुछ ज्यादा ही पड़ा है, सब्जी में तेल-मसालों की बाढ़ आ गई है, आदि-आदि। इनके अलावा जब कराहने की नौबत आती तो बहू की मुफ्त सेवाओं के लिए आ धमकते। कभी-कभी सासुजी से कुछ खुसर-फुसर भी करते। एक दिन पर्दे की ओट से अनन्या ने सुना कि ससुर जी पूछ रहे हैं कि क्या कुछ काम बना? जवाब में सासु ने जो कुछ भी कहा था उसे सुन कर तो उसके कान गरम हो गए थे। वह पूरी बात सुन पाई थी कि नहीं रसोई में बिल्ली ने कटोरी गिरा दी जिसकी आवाज से सभी चौकन्ने हो गए थे। उसे भी रसोई की ओर भागना पड़ा था।

पति महाराज स्कूल और ट्यूशन को लेकर जितना व्यस्त रहते, उससे कहीं ज्यादा व्यस्तता दिखाते। अनन्या जब भी कुछ कहती तो वे यह कहकर किनारा कर लेते कि अभी नहीं कमाएँगे तो कब कमाएँगे? तुम्हारी नामजदगी पर चार लाख की बीमा पॉलिसी ली है मैंने। उनकी किस्त भरना है कि नहीं? अनन्या कुछ गुफ्तगू करे कि सासु माँ हाजिर हो जातीं, आज भी हो गईं। वह मन में यह सोचने लगी कि यह कैसी सास है जो बेटे और पतोहू के बीच आढ़े आ जाती है! अब बिस्तर पर भी वह जब जाए तब किसी न किसी बहाने सासु माँ भी कमरे में आ धमकती और जब तक बेटा बिस्तर पर निढाल होकर पड़ न जाता तब तक इधर-उधर की बातें एक पर एक जड़ती रहतीं। इस क्रम में कभी बाधा नहीं पड़ती।

पड़ोस में महेश की बीबी के भी पाँव भारी हो गए जो अनन्या से एक साल बाद ब्याह कर आई थी। और तो और गीतू की माँ भी अवैध पुत्र-सुख में बीती बातें भूल गई थी। गीतू के बाप ने भी पुत्र-प्राप्ति को अपना अहो-भाग्य समझ लिया था। इधर सासु माँ पुरानी कहा-सुनी भूल कर गीतू के भाई की देख-रेख को अपना कर्तव्य बताने लगीं। अपने को पाक-साफ सिद्ध करने हेतु यह कहने लगी कि अरे पड़ोस के घर चाँद निकला तो उसकी रौशनी हमारे आँगन में भी पड़ेगी ही। हमें भी खुशी है, हम उन जलसखट्टियों में से नहीं हैं कि दूसरों से डाह करें। इधर छोटू ने भी इत्मीनान की साँस ली कि बात बिगड़ते-बिगड़ते टल गई। सासु माँ मन में यह सोचने लगीं कि तकदीर फूटी हो तो ऐसा ही होता है, अपने घर का चाँद पड़ोस के आँगन को रौशन करे। अनन्या केवल इस गुत्थी को सुलझाने में लगी कि इन कूट-चाल कारस्तानियों के बीच वह अपना जीवन कैसे बिताएगी।

उस रात पहली बार पति-पत्नी में कुछ गुफ्तगू हुई, दोनों एक-दूसरे के साथ घंटों बतियाते रहे। अंतरंगता बढ़ी और निर्णय लिया गया कि दोनों ही संबन्धित डॉक्टर से सलाह मशविरा

करेंगे। दूसरी सुबह अनन्या और उसके पति के चेहरों पर आशा-निराशा के बादल आते-जाते रहे। पतिदेव बात को कल पर टालने ही वाले थे कि अनन्या ने ही जोर देकर कहा कि चलो आज ही क्यों न हम डॉक्टर के पास चलें। किन्तु इस बार भी वे कर्तब्योत करने लगे तो अनन्या का साफ जवाब था कि डर किस बात का? कुछ तो रिजल्ट निकलकर आएगा। एक बार तो पतिदेव ने यह कह कर किनारा कर लेना चाहा कि पहले तुम जाकर दिखा आओ, फिर अगर जरूरत पड़ी तो देखा जाएगा।

पहले तो वे स्त्री-रोग विशेषज्ञ के पास गए लेकिन वहाँ से डॉक्टरनी साहिबा ने शुक्राणु विशेषज्ञ के पास रेफर कर दिया। शुक्राणु देने के तरीकों से पतिदेव आनाकानी करने लगे। फिर राजी हुए भी तो अनन्या को उल्टी-सीधी धमकियाँ देने लगे। तब डॉक्टर साहब ने उन्हें इतना भर कहा कि डरने की कोई बात नहीं है। विज्ञान बहुत आगे बढ़ चुका है, कोई न कोई रास्ता तो जरूर निकल आएगा। तब कहीं वे आश्वस्त हो सके। शुक्राणुओं के सेंपल दोनों के जब लिए गए तो पति कुछ और आश्वस्त हुए कि सरासर संदेह उन पर नहीं है। अब जब रिपोर्ट लाने की बात हुई तो पति फिर से 'आज नहीं कल' करने लगे। वे बहाने बनाते रहे और अनन्या मिन्नत करती रही। वह कहने लगी कि वह अकेली वहाँ नहीं जा सकती क्योंकि ऐसी जगहों पर पति-पत्नी दोनों साथ जाते हैं। ऐसी जगहों पर अकेली औरत का जाना तौहिनी है।

अंत में हार कर वह अकेली ही जाने लगी तो सासु माँ ने पड़ोस की गीतू की माँ को साथ ले जाने को कहा। वह इस बात पर राजी नहीं हुई। सासु माँ को ही साथ चलने को कहा। हार कर वह अकेली ही गई। जाने पर उस क्लीनिकल लैब के एक नर्स ने बताया कि कोई औरत आई थी नाम बता कर क्लीनिकल रिपोर्ट के बारे में पूछ रही थी लेकिन उसे साफ मना कर दिया गया कि ऐसी रिपोर्ट केवल पति-पत्नी के साथ आने पर ही दिए जाते हैं। नर्स ने जब उस औरत के नाक-नक्श के बारे में बताया तो अनन्या को यह समझते देर न लगी कि वह औरत और कोई नहीं, वह गीतू की माँ ही रही होगी। उसने जब रसीद दिखा कर रिपोर्ट माँगी तो डॉक्टर साहब ने साफ-साफ कहा कि उसे अपने पति के साथ आना चाहिए। समस्या कहाँ है शायद इतना तो उन्हें भी पता हो। उन्होंने यह भी कहा कि इस जटिल समस्या पर आपके पति को कोई चिंता नहीं है? आप पति के साथ ही आइए।

यह बात सुनते ही वह एकदम-सी मुरझा गई थी। बहुत कहने पर भी रिपोर्ट नहीं दी। उसे वहाँ से अपने आपको बाहर निकाल कर ऑटो में बिठाना परेशानी का सबब था। उसके पाँव मन-मन भर भारी हो रहे थे।

पति रात को घर आए तो उसने कुछ भी नहीं पूछा। अनन्या भी स्वयं कुछ बोलने से कतरा रही थी। उस जैसी बुद्धिमति लड़की को भी यह समझ में नहीं आ रहा था कि बात को कहाँ से शुरू करे। उसने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि वह पहले इस प्रसंग पर कुछ भी नहीं बोलेगी। पति महोदय को कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह भी अपनी ईगो के कारण कुछ भी कहने से कतराती रही जबकि पति बचता रहा।

दूसरी सुबह सासु माँ ने जब बात छेड़ी तो उसने कुछ भी नहीं कहा और फफक कर रो पड़ी। सासु ने यह समझ लिया कि हो न हो बहू में ही खोट है, और नासमझ-सा आम सासों की तरह बहू को बुरा-भला कहने लगी। अनन्या अब भी चुप थी। उसने केवल इतना भर कहा कि डॉक्टर साहब ने उसे पति को साथ लेकर जाने को कहा था। अब सासु माँ ने आखिरकार धमाका कर ही दिया, 'मैं सीधी-सी बात कहे देती हूँ कि तेरा मुँह देख कर रहनेवाली नहीं हूँ। पोते का मुँह कब दिखाएगी, यह साफ-साफ कह देना नहीं तो अपना रास्ता आप देख लेना। हमने तो यह सोच कर तुझे घर लाया था कि कोई अड़चन हो तो सँभाल लेगी।

उस रात बहुत अनुनय-विनय करने पर पति ने कहा कि वह शादी नहीं करना चाहता था। माँ-बाप ने जबरन शादी करवा दी, यह कह कर कि उन्हें किसी भी सूरत पर वंश को आगे बढ़ाना है। उसने आगे और जो कुछ भी कहा उसे सुनकर अनन्या का कलेजा मुँह को आ गया। उसने कुछ देर के लिए चुप्पी साध ली। फिर सँभाल कर कहा, 'हमें हाथ पर हाथ धरे बैठे नहीं रहना चाहिए।' पति का चेहरा अब तक निर्विकार था। अचानक कुछ पसीने की बूँदें छलकने लगीं। वह कुछ कहना चाह रहा था पर हकला कर रह गया।

'आप घबराइए नहीं, डॉक्टर के पास चलिए तो सही। उन्होंने कहा है कि समस्या है तो समाधान भी है। हम तो इसी काम के लिए बैठे हैं। थोड़ी-सी लंबी ट्रीटमेंट की आवश्यकता हो सकती है।' अनन्या ने पूरे आत्मविश्वास के साथ कहा।

'सच?' पतिदेव ने उसकी आँखों में आँखें डालकर आज पहली बार देखा था। उस दृष्टि में प्यार का अतिरेक इतना था कि उन दोनों के बीच संशय की दीवार ढह गई। आज दरवाजा भीतर से बंद था। सासु माँ ने बाहर से आज भी दस्तक दिया था पर किसी ने भी दरवाजा खोलने की ताकीद नहीं की।

आनंदलोक मॉडल स्कूल
पो- गुडियाहाटी
कूचबिहार -736170 (प.बंगाल)
मो.- 8918546935

गाँव की ओर

– महावीर रवांल्टा

जन्म – 10 मई 1966।
शिक्षा – डी.फार्मा. एम.ए.।
रचनाएँ – अड़तीस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – पचास से अधिक सम्मान।

'अरे, घर क्यों नहीं लौट आते, हमें तुम्हारी बहुत याद आ रही है।' जिस दिन से माँ का संदेश आया था वह बस यही सोच रहा था कि अब उसे घर जाना चाहिए लेकिन क्या करे यहाँ तो– सुबह उठकर पहले टहलने जाना फिर कुछ देर योग करना उसके बाद नहा–धोकर अपने दफ्तर के लिए निकल पड़ना। वहाँ दिनभर अपने काम में जुटे रहना फिर सायं को वापसी। घर आकर पत्नी व बच्चों के साथ चाय पीते हुए कुछ देर बातें करना। उसके बाद बच्चे ट्यूशन पढ़ने चले जाते हैं और वे पति–पत्नी रात के खाने की जुगत में लग जाते हैं। पत्नी की इच्छा बाजार जाने की होती है तो वहीं साग–सब्जी और जरूरी सामान ले आती है नहीं तो वही थैला उठाकर बाजार के लिए चल पड़ता है।

बच्चों को पढ़ाने–लिखाने और उनके भविष्य संवरण की चिंता के चलते समय का पता ही नहीं रहता। 'फिर किसी दिन' कहते हुए कई साल गुजर चुके हैं। गाँव में माँ बीमार पड़ी थी तो भी चिट्ठी आई थी। फिर भी जाना नहीं हुआ। सोचा था कुछ ठीक हो जाएगी तभी जाऊँगा लेकिन माँ ठीक नहीं हुई और एक दिन फोन आया था कि माँ! सुनते ही वह दहाड़ मारकर रो पड़ा था और उसके साथ सुमित्रा भी और जोर से रोने लगी थी।

'मम्मी, व्हाट हैपन्ड?' उसी समय कॉलेज से लौटी रश्मि ने अपने मम्मी–पापा के चेहरे देखते हुए पूछा तो पहले माँ ने कुछ नहीं कहा फिर कुछ देर में बताने लगी कि 'बेटी, तेरी बूढ़ी नहीं रही!'

'बूढ़ी नहीं रही मीन्स?' वह अब भी उनके चेहरे ताक रही थी। 'बूढ़ी नहीं, नहीं, मतलब तुम्हारी दादी इस दुनिया में नहीं रहीं' सुमित्रा ने उसे समझाने की कोशिश की थी–'बूढ़ी–दादी मीन्स ग्रांड मदर!' उसने उसे और अच्छी तरह समझाया था।

'व्हाट? वेरी सैड!' उसके मुँह से बस इतना फूटा और फिर वह एक ओर बैठकर उनकी ओर देखने लगी।

थोड़ी देर रोना–धोना हुआ। मोहल्ले के स्त्री–पुरुष उनके पास आए। उन्हें सांत्वना दी और फिर अपने–अपने घर को लौट गए। रात का खाना लेकर उनके पड़ोस में रहने वाला तोमर परिवार आया और उन्हें अपने सामने खाना खिलाने के बाद बहुत देर तक बैठे रहे।

'अब आगे का क्या विचार है?' तोमर की पत्नी ने उनसे पूछा।

'विचार क्या, कल गाँव जाएँगे और तेरहवीं तक वहीं रहना पड़ेगा।'

'और बच्चे?'

'ये भी साथ चलेंगे' सुमित्रा ने कहा तो वे उसकी ओर देखने लगे।

'तुम ऐसे क्या देख रहे हो? हमें गाँव चलना पड़ेगा।'

'बस ऐसे ही देख रहे हैं। हमें गाँव चलना पड़ेगा?' रश्मि पूछने लगी थी।

'आगे क्या विचार है?' सुमित्रा ने पति से पूछा।

'विचार क्या, कल सुबह की गाड़ी से गाँव चलेंगे। हमारे पहुँचने पर ही माँ का अंतिम संस्कार होगा।' पति ने आगे कहा।

'ठीक है। मैं कपड़े और जरूरी सामान बाँध देती हूँ' उसने पति की ओर देखकर कहा। उनकी बातचीत हो रही थी इस बीच पड़ोस की नीरा एक केतली में चाय लेकर पहुँची।

'भाभी जी आप लोग चाय–'

'हम लोगों ने तो बस अभी खाना खाया है।' उसने बताया।

'वहाँ, बस अभी ही खाना खाया।' सुमित्रा कहने लगी।

'मैं खाना लाई थी लेकिन इन्होंने खाया कहाँ, बस एक एक रोटी खाई।'

'तो क्या हुआ, जितनी जरूरत थी खा लिया।'

'तो अब चाय पी लीजिए' कहती हुई वह रसोई की ओर जाने लगी तो सुंदला ने उसे टोका-'तुम बैठो, मैं कप लाती हूँ।'

'कहा न, मैं लाती हूँ तुम बैठो' उसने केतली वहाँ रखी और स्वयं कप लेने रसोई की ओर गई। वहाँ से कप लाए। उनमें चाय उड़ेली और सभी को एक-एक कप दी। सबने चाय पी। उसने जूठे कप उठाए और उन्हें धोकर रसोई में रखे और केतली उठाकर घर की ओर चलने लगी।

'अभी मैं चलती हूँ, घर मेहमान आए हैं। उनके लिए खाना बनाना पड़ेगा। तुम्हारे लिए भी वहीं से एक-एक रोटी बनाकर लाऊँगी।'

'नहीं, तुम्हें पता ही है हमने अभी खाया है। अब कुछ नहीं चाहिए।'

'तो ठीक है, मैं चलती हूँ।'

'अच्छा।'

वह चल पड़ी। कुछ देर सुलक्षणा उनके साथ बैठी। इधर-उधर उन्हें समझाने की बातें की फिर वह भी चलने की तैयारी करने लगी।

'अभी मैं चलती हूँ। घर में बच्चे आपस में लड़-झगड़ रहे होंगे। हम घर पर नहीं रहते तो घर पर उधम मचाते रहते हैं। नेहा के पापा भी अभी बाजार गए हैं। अच्छा!' उसने भी चलते हुए इजाजत माँगी।

इसके बाद उन्होंने आपस में सलाह कर कल सुबह गाँव चलने का तय किया।

'मैं नहीं चलूँगी, मैं यहीं रहूँगी!' रश्मि ने कहा तो मम्मी-पापा एक-दूसरे की ओर देखने लगे।

'इस लड़की को हुआ क्या, गाँव इसकी दादी की मौत हुई है और यह कहती है कि मैं नहीं चलूँगी। हम सभी गाँव जा रहे हैं और यह।' मम्मी को बहुत गुस्सा आ रहा था। उसने एक बार उसकी ओर देखा और फिर अपने आप में ही बड़बड़ाने लगी-'इस लड़की को न जाने क्या हो गया है। जितनी बड़ी हो रही है उतनी ही बिगड़ने लगी है। हम सभी गाँव जा रहे हैं और यह यहाँ अकेली किसके साथ रहेगी। गाँव नहीं आएगी तो बिरादरी और गाँव के लोग क्या कहेंगे।' मम्मी उसे समझाने की कोशिश कर रही थी लेकिन उस पर कोई असर नहीं हो रहा था।

'मैं यहाँ अकेली रह सकती हूँ।' वह जैसे पत्थर बनी हुई थी।

'यहाँ अकेली क्या करेगी? घर चल। वहाँ सबसे मुलाकात हो जाएगी। तेरे चाचा-चाची, ताऊ-ताई हमारे लिए क्या कहेंगे। तू दूध पीती बच्ची तो नहीं है कि कुछ भी नहीं जानती। उठकर अपनी तैयारी कर और हमारे साथ गाँव चल! 'मम्मी ने आखिरकार अपना फरमान सुना दिया था। रश्मि ने उदास चेहरे से पापा की ओर देखा पर वे चुप थे। वे जानते थे कि सुमित्रा ठीक कह रही है। घर में मौत हुई है और नातिन शहर से गाँव नहीं आ सकती। लोग क्या कहेंगे और यहाँ भी अकेले रहने का क्या औचित्य? कई बातें हैं। पापा ने कुछ नहीं कहा तो उसे चलने का मन बनाना ही पड़ा।

प्रात: उठकर सभी गाँव के लिए चल पड़े। ग्यारह बजे तक वे गाँव पहुँच गए थे। वहाँ दादी की अर्थी तैयार थी। अपने-पराए, गाँव व बाहर के सभी लोग जमा थे। उनके पहुँचते ही सभी रोने लगे। बेटे-बहू ने अर्थी को प्रणाम किया और बिलख-बिलखकर रोने लगे। रश्मि जैसे पत्थर बनी एक कोने में बैठकर इधर-उधर लोगों को देख रही थी। लोग भी उसे देखकर सोच रहे थे कि यह कैसी नातिन है जिसे अपनी दादी की मौत का जरा भी दु:ख नहीं हुआ। वही दादी जो उसके लिए घी, दूध, शहद, दाणेबुकाणे, साकुली, बीड़े, अर्से, ढिंढके, दाणी जैसी चीजें वहीं शहर में पहुँचाती थी। दादी उसे हमेशा याद करती रहती थी कि मेरी रश्मि कितनी बड़ी हो गई होगी लेकिन रश्मि को दादी से कभी भी लगाव नहीं रहा। अब उसके मरने पर क्या फर्क पड़ना था। आँगन में बढ़इयों ने 'डोली'(अर्थी) बना रखी थी जो लाल, पीले, सफेद कपड़ों से सजी हुई थी। 'अब मुर्दा उठाओ!' किसी ने कहा और उन्होंने दादी का मुर्दा उठाया तब सभी उस पर झपट पड़े। उसे बाँहों में भरने लगे। उस समय बड़ी मुश्किल से वह नीचे उतारा गया। आँगन में ढोल, दहाड़े और रणसिहें बजने लगे और जिसके कभी भी आँसू नहीं निकलते थे वह भी आज बुरी तरह रो रहा था। मुर्दा को अर्थी में रखा गया। इसके बाद सारे परिवार ने उसकी परिक्रमा की। पंडित जी ने पिंडदान कराया। अर्थी उठी तो बाजे बजने लगे। चार व्यक्तियों ने अर्थी

को काँधा दिया और चलने लगे। आगे बाजे बजाते हुए जुमरिया चल रहे थे उनके पीछे अर्थी और फिर लकड़ी लेकर लोग चल रहे थे। एक व्यक्ति रास्ते में मिर्च और अनाज की 'छुरकी' बिखेर रहा था। अंतिम संस्कार के लिए लकड़ी की व्यवस्था पहले ही दिन कर दी गई थी।

रास्ते में एक स्थान पर अर्थी को बिठाया गया। वहाँ जुमरिया 'पैंसारा' खेलने लगे तो लोग अर्थी के ऊपर कुछ रुपए घुमाकर जमीन पर बिछे कपड़े पर डालने लगे। जिन्हें उन्होंने बाद में आपस में बाँटा।

अंतिम संस्कार होने के बाद घर व बिरादरी के पुरुषों ने अपने सिर मुँड़वाए और फिर रिश्तेदारों के साथ घर आए। घर पर बहू-बेटियों ने साफ-सफाई, कपड़े धोने के साथ ही सभी के नहाने के लिए पानी गर्म करने रख दिया था। नहाने के बाद सभी ने एक साथ ही भोजन 'कौड़ी बेल' किया-दाल-भात, रोटी और सब्जी।

'ओह मम्मी, ये क्या?' कौड़ी बेल खाते समय रश्मि से नहीं रहा तो सभी उसकी ओर देखने लगे। उस समय मम्मी ने उसकी ओर गुस्से से देखा तो वह चुप हो गई। इधर-उधर सारी बिरादरी के बच्चे, महिलाएँ और पुरुष सभी भोजन कर रहे थे। महिलाएँ बर्तन माँज रही थी।

'अब हम यहाँ रहकर क्या करेंगे, पहाड़ में अपने गाँव जाएँगे तुम क्या कहती हो?' एक दिन कुलवीर ने सुमित्रा से पूछा था तो उसका कहना था कि 'सचमुच यहाँ भी बहुत बुरा लग रहा है।' आस-पड़ोस के सभी किराएदार अपने-अपने गाँव चले गए थे। अकेली मकान मालकिन वहाँ रह गई थी। उसका पति फौज में था और बेटा-बहू और नाती पहले ही गाँव चले गए थे।

'कहना क्या, हमारे इलाके के भी सारे लोग गाँव जा चुके हैं। हम भी यहाँ बेकार रहकर क्या करेंगे।' सुमित्रा ने उसकी बात सुनकर ज़वाब दिया था। कुछ दिन आपस में सलाह-मशविरा करने के बाद आखिर उन्होंने गाँव चलने का निर्णय लिया।

खाना खाते समय उसने नाक-भौं सिकोड़े और भीतर की ओर चल दी तो सभी उसे देख रहे थे कि यह कैसी लड़की है। उसकी उम्र की दूसरी लड़कियाँ दूसरों को भी खाना खिला रही थी। एक वही थी जिसे महिलाएँ देख रही थीं और मम्मी सब समझ रही थीं पर करतीं भी क्या। 'बच्चियाँ ऐसी ही होती हैं!' उसकी चाची ने महिलाओं की ओर देखते हुए कहा।

तेरहवीं के दिन गाँव के प्रत्येक परिवार से एक जने को भी भोजन कराया गया। 'मम्मी, हम घर कब चलेंगे?' शाम को वह मम्मी से पूछने लगी तो गुस्से में मम्मी उसे कहने लगी-'अरी, यह क्या? हमारा घर तो यही है। वहाँ तो शहर की बात है। तुम कहो तो हम यहीं रह सकते हैं। 'लेकिन उसने एक कान से सुनकर दूसरे से जैसे बात बाहर निकाल दी थी।

अगली सुबह वे चलने की तैयारी करने लगे। रश्मि सज-धजकर तैयार थी। राहुल भी तैयार था लेकिन आज उसकी चलने की इच्छा नहीं थी। उसे गाँव में अच्छा लग रहा था। कमला, नेहा, पवन, पिंटू, सतेन्द्र के साथ उसका मन लग रहा था। वह उनके साथ घुल-मिल गया था। अपनी भाषा में जैसे वे कुछ कहते वैसा ही वह भी बोलने की कोशिश करता। वह कहीं अटक जाता तब वे खूब हँसते और उससे भी हिन्दी और अंग्रेजी में की गई बात का अर्थ पूछने लगते।

'हम आज यहीं नहीं रुक सकते थे?' उसने धीमे स्वर में मम्मी से पूछा तब उन्होंने अगली बार फिर आकर कुछ दिन रुकने की बात कही।

'कब?'

'जब तुम्हारी दादी की छमासी होगी।'

'अच्छा, तो ठीक है!' राहुल अब बहुत खुश था। रश्मि गाँव रहकर न किसी से घुली मिली और न ही किसी से बातचीत की। आलस के कारण एक ही स्थान पर बैठी रहती थी। कोई उसके साथ बात करता तो नाक चढ़ाती। इसी कारण उसके साथ कोई घुला मिला नहीं। इन दिनों वह सिर्फ हँसी का पात्र बनी रही।

'अब हम चलते हैं' उन्होंने विदा माँगी तो दाई-भाई उन्हें विदा करने आए। उनके थैले उठाकर उन्हें बस स्टैंड तक पहुँचाया। उन्हें बस में बिठाया। दोनों बच्चों के मुँह चूमे। उनके पैर छुए। रश्मि नकचढ़ी बन पत्थर ही बनी बैठी थी। हार्न बजाती बस चल पड़ी और वे विदा लेकर घर की लौट गए।

अब बस ढलान की ओर चल रही थी। उनका गाँव पीछे छूटता जा रहा था। दूसरे गाँव आ रहे थे। आज अपना गाँव पीछे छूटता देख सुमित्रा और कुलवीर के चेहरे बुझे हुए थे। राहुल की भी वही स्थिति थी। लेकिन रश्मि पर कोई फर्क नहीं पड़ा था। वह तो बस यही सोच रही थी कि कब वह अपने घर पहुँचे और सफर कट गया और फिर अपना घर तो आना ही था।

शहर आने पर समय पहले की तरह आगे खिसकने लगा। बच्चे अपनी पढ़ाई पर और मम्मी-पापा उनके लिए साधन जुटाने में

लगे रहे। दादी की छमासी आई तब भी रश्मि गाँव आने के लिए राजी नहीं थी। मम्मी-पापा ने उसे वहीं छोड़ा और राहुल को लेकर गाँव पहुँचे। छमासी हुई। गाँव के प्रत्येक परिवार से एक-एक व्यक्ति के लिए खाना बना। कन्या और ध्यानठुड़ियों को भोजन कराने के बाद पंडित जी को चारपाई, बिस्तर, जाता, जूता, कपड़े, राशन-पानी के साथ उन्हें उचित दान-दक्षिणा देकर विदा किया गया। तीसरे दिन वे शहर के लिए चल पड़े। दाई-भाई सहित कुछ लोग उन्हें बस स्टैंड तक छोड़ने आए और बस के चलते ही वे वापस लौटे।

शहर रहते हुए उनके दिन पहले जैसे बहुत अच्छे कट रहे थे लेकिन जब कोरोना की जानलेवा बीमारी ने अपने पैर पसारे तो सबके बुरे हाल हुए। लोग गाँव की ओर भागने लगे। तब उन्होंने भी सोचा कि वे भी वहाँ रहकर क्या करेंगे जब न कोई काम-धाम और न ही कहीं आना-जाना है। कोरोना का देखो तो डर ही डर था। अस्पतालों में बीमारों के लिए जगह ही नहीं मिल रही थी। इंसान पशुओं के जैसे बेमौत मर रहे थे। अपने पराए न उनके पास जा सकते थे और न ही देखरेख कर सकते थे। और तो और उनका अंतिम संस्कार भी नहीं कर पा रहे थे।

'अब हम यहाँ रहकर क्या करेंगे, पहाड़ में अपने गाँव जाएँगे तुम क्या कहती हो?' एक दिन कुलवीर ने सुमित्रा से पूछा था तो उसका कहना था कि 'सचमुच यहाँ भी बहुत बुरा लग रहा है।' आस-पड़ोस के सभी किराएदार अपने-अपने गाँव चले गए थे। अकेली मकान मालकिन वहाँ रह गई थी। उसका पति फौज में था और बेटा-बहू और नाती पहले ही गाँव चले गए थे।

'कहना क्या, हमारे इलाके के भी सारे लोग गाँव जा चुके हैं। हम भी यहाँ बेकार रहकर क्या करेंगे।' सुमित्रा ने उसकी बात सुनकर ज़वाब दिया था। कुछ दिन आपस में सलाह-मशविरा करने के बाद आखिर उन्होंने गाँव चलने का निर्णय लिया।

इस बार गाँव जाना भी आसान नहीं था। सरकारी अनुमति पत्र बन रहे थे। गाँव की ओर जाने के लिए सीमित वाहन चल रहे थे। वहाँ भी खूब मारामारी थी। पहले पुलिस चौकी में नाम दर्ज कराना फिर वहाँ से बुलावा आने का इंतजार कि कब कहाँ के लिए कहाँ गाड़ी मिलेगी। सरकारी अनुमति पत्र बनाकर गाड़ी बुक कर भी चला जा सकता था। ऐसा ही किया गया और एक दिन सुबह ही गाँव के लिए चल पड़े। आधी रात उठकर सुमित्रा ने रास्ते के लिए रोटी-सब्जी बनाकर साथ रख ली थी। आधे रास्ते बीच में गाड़ी रोककर उन्होंने खाना खाया और फिर आगे चल पड़े। बीच में उनकी गाड़ी रोककर उनकी कोरोना की जाँच की गई और फिर आगे बढ़ने की अनुमति मिली।

शाम तक वे गाँव पहुँच गए थे। यहाँ भी घर पर रहने की अनुमति नहीं मिली। गाँव के बाहर स्थित प्राथमिक विद्यालय में उनका पड़ाव पड़ा। घर से बिस्तर का बंदोबस्त करना पड़ा। हर रोज आशा, आँगनबाड़ी और गाँव का प्रधान आकर उनकी खबर रखते। स्वास्थ्य और प्रशासन के लोग उन पर नजर रखते। उनसे पूछताछ करते। चौदह दिनों के लिए कोरेंटाइन मतलब एकांतवास पर रहना। वहाँ कई स्थानों से लौटने वाले लोग समय बिता रहे थे जिनकी छुट्टी जेल की तरह किसी की आज होती तो किसी की कल। वहाँ रहना भी कहाँ आसान था। सारे लोगों के लिए सिर्फ एक शौचालय था, एक स्नानघर और एक ही पानी का नल। खाना अपने-अपने घर से ही आ रहा था। बच्चे, युवा, बुजुर्ग सभी उम्र के लोग वहाँ पर थे। कोई हँसमुख, कोई नाचने का शौकीन तो कोई गाने-बजाने का। कोई आलसी और कोई खूब मेहनती। विद्यालय की क्यारियों को खोदकर हरा-भरा करने की शुरुआत हुई तो कुछ ही दिनों में विद्यालय का कायाकल्प हो गया था। 'हम बुजुर्गों ने विद्यालय कहाँ आना था। इस कोरोना के बहाने अपने गाँव का विद्यालय तो देख लिया!' वहाँ रह रहे मोहन सिंह के मुँह से निकला तो उसकी बात पर सभी खिलखिलाकर हँसने लगे।

'ओह मम्मी!' रश्मि बार-बार खीझ उठती। उसकी हम उम्र और भी बच्चे वहाँ थे जो हँसी-खुशी अपना समय काट रहे थे। 'बहुत तुनकमिजाज लड़की है' किसी दिन सुशीला अपनी बेटी से उसके बारे में कह रही थी। मम्मी को सुनकर बुरा लगा पर क्या करती। अपना सिक्का खोटा हो तो ऐसा ही होता है। वह अपने आप में ही सोचने लगी थी।

पन्द्रहवें दिन सुबह वे अपने घर में थे। वैसे तो कोई चिंता की बात नहीं थी फिर भी उन्होंने अपने दाई-भाईयों से साफ कह दिया था कि कुछ दिन वे उनसे दूर ही रहें। सभी ने उनका कहा माना था और उनके लिए जरूरी सामान वहीं पहुँचाते रहे।

'ओह मम्मी!' अब भी रश्मि के मुँह से बस यही निकलता। उसे जरा भी काम करना पड़ता तो हाँफने लगती। पानी का लोटा उठाते हुए भी दिखाती जैसे पहाड़ ही उठा लिया हो। आस-पड़ोस की लड़कियाँ घास, लकड़ी और सोतर के बोझ लाती। अपनी गाय-भैंस चराती। उन्हें दुहती। घर के लिए पानी लाती, सुबह-शाम का खाना पकाती और बातें करने लगती तो

हँसते गुदगुदाते हुए सभी को लोट-पोट कर देती। हँस-हँसकर पेट दुखने लगता।

कुछ दिन ऐसा ही चलता रहा। गाँव की लड़कियाँ घर के कामधाम करती, आपस में हँसी-मजाक करती और रश्मि-वह तो बस सजने-सँवरने में लगी रहती। 'ऐसा कब तक चलेगा?' एक दिन मम्मी अपने आप में ही सोच रही थी-'इस लड़की के आगे के दिन कैसे कटेंगे' मम्मी की चिंता लाजमी थी। माँ-बाप के लिए उनकी संतान ही सबकुछ होती है। वह अच्छी रहे तो उनका मन प्रसन्न रहता है वरना वह जीते-जी उनके लिए असहनीय दु:ख बन जाता है। 'अरी तू दूसरों के बच्चों को क्यों नहीं देखती। वे कैसे रहते हैं और तू' एक दिन मम्मी को उसे टोकना ही पड़ा।

'व्हाट डू यू मीन मम्मी? सुनने व समझने से पहले वह उल्टी मम्मी पर ही बरस पड़ी थी।

'कुछ नहीं मैं सिर्फ इतना ही कह रही हूँ कि अपने दाई-भाईयों के बच्चों को देख। वे भी तो कालेज पढ़ रहे हैं लेकिन देख न, वे कितना काम-धाम करते हैं। कितने सलीके से रहते हैं। जब जरूरत होती है अपने घर के काम-धाम करते हैं वरना अपनी पढ़ाई लिखाई में लगे रहते हैं। उधर उस सिमली को देख! अपने काम में कैसी लगी है। इतना बड़ा बरांडा धो-माँज रही है। देख तो सारा बरांडा कितना साफ-सुथरा लग रहा है। खंभे और आलमारियाँ देख! साफ करने के बाद कितनी चमक रही हैं जैसे अभी भी बनी होंगी।

मम्मी का कहा उसे बुरा लगा था लेकिन मन में न जाने क्या आया कि दूसरी ओर देखने लगी जिधर सिमली कपड़ा लेकर बरांडा धो रही थी। उसने चारों ओर नजर दौड़ाई सारा बरांडा, खंभे और आलमारियाँ एकदम चमक रही थी। उसने देखा तो बस देखते ही रह गए। वह सुबह आठ बजे जगती है जबकि सिमली, मधु, रंजू मुँह अँधेरे ही जग जाती हैं। पहले घर की साफ-सफाई उसके बाद खेत पर जाकर काम करना और फिर घर की सारी जिम्मेदारी-खाना पकाना, मवेशी को चराना। उनके लिए न्यार-पात का बंदोबस्त। जितने काम माँ-बाप करते हैं उन्हें उससे भी ज्यादा काम करने पड़ते हैं।

शाम को सभी बरांडे में बैठकर अपनी-अपनी किताबें खोलकर पढ़ने लगते।' आओ दीदी, तुम भी हमारे साथ बैठकर पढ़ो! 'सिमली ने उससे कहा तो उसे कुछ बुरा लगा।' ये क्या पढ़ती होगी! 'लेकिन सिमली ने उसे अपना पढ़ा हुआ बताया तो जैसे उसकी आँखें ही खुल गई थीं। वरना वह सोचती थी कि गाँव की लड़कियाँ एकदम बुद्धू होती हैं और सिर्फ घर गाँव का ही काम करना जानती हैं। खेत जाना, घास, लकड़ी ढोती हैं। गाय-भैंस चराती हैं लेकिन जब उसने देखा कि ये लड़कियाँ तो सारे काम करती हैं। घर में किताबें पढ़ती हैं। आपस में खेलती कूदती हैं। गाँव में जिस किसी के घर कोई काम होता है तो वे चींटियों की तरह जुटकर उससे पार लगा देती हैं।

घर पर बच्चों के साथ वह बैठना नहीं चाहती थी। वह सोचती थी कि वे गाँव के सरकारी कालेज में पढ़ती हैं तो कुछ नहीं जानती। अंग्रेजी क्या उन्हें हिन्दी में भी बातें करना नहीं आता। वे टूटी-फूटी हिन्दी में बातें करतीं तब भी वह उन पर हँसती थीं और उनका मखौल उड़ाती थीं कि ऐसी भी हिन्दी बोली जाती है। कभी वह इस तरह हँस पड़ती कि वे उसका चेहरा देखती रह जाती। एक दिन उन्होंने वह अपने साथ बिठाया। पढ़ने-लिखने की बात होने लगी तो सुनकर उसकी तो आँखें ही खुल गई थीं। उनमें से कुछ थी जिनका प्रतिशत उससे कुछ कम था वरना अधिकांश के सामने वह नहीं टिकती थी। यही स्थिति लड़कों की भी थी। जब वे हिन्दी में पाठ सुनाने लगे तब पता चला कि वे आपस में अपनी गाँव की भाषा में ही बातें करती हैं। उनकी अंग्रेजी भी अच्छी थी। अब रश्मि को अहसास हो चुका था कि वह कितने पानी में है। वह खुद पर शर्मिंदा हो रही थी कि वह न गाँव की लड़कियों की तरह घर के कामकाज में आगे थी, न ही पढ़ने-लिखने में और न ही व्यवहार-विचार में। कहाँ वह सुबह आठ-नौ बजे जगने वाली और कहाँ वे एकदम सुबह उठने वाली।

'देखा तुमने, गाँव की लड़कियाँ कैसे रहती हैं। उन्हें अपने काम-धाम और घर-बाहर की कितनी चिंता रहती है।' मम्मी उसे समझाने लगीं। सुनकर उसने दूसरे दिनों की तरह कुछ नहीं कहा। और तो और अपना मुँह भी नहीं खोला। 'पहले अपने घर का काम-धाम करती हैं फिर कॉलेज जाती हैं। वहाँ से लौटकर खेत में काम करती हैं फिर शाम को कॉलेज का होमवर्क करती हैं। रात को तुमने देखा सभी लड़के-लड़कियों ने मन्दिर जाकर खूब गीत लगाए। 'रश्मि के मुँह से अब भी कुछ नहीं फूटा था।' नीरू को देखा, वे चार बहिनें हैं। चारों कॉलेज भी जाती हैं और घर का काम-धाम भी करती हैं। उनके पिता को गुजरे सात वर्ष हो गए हैं और वे खुद ही अपना घर चला रही हैं। एक बहिन पिछले वर्ष प्रवक्ता में निकल गई और दूसरी तैयारी कर रही है। अपनी माँ के साथ सभी बहिनें खूब

काम करती हैं। यहाँ तक कि हल भी वे ही लगाती हैं। पढ़ने में भी सभी होशियार हैं। गाँव की दूसरी लड़कियाँ भी तुमने देखी होंगी। वे अपने घर और पढ़ाई की कितनी चिंता करती हैं।' मम्मी उसे समझा रही थी और वह गर्दन झुकाए बस सुनती जा रही थी।

'आज हम तुम्हारे पीछे कितनी परेशानी झेल रहे हैं तब भी तुम अपना भविष्य नहीं बना सकते तो फिर कल हम पर क्या गुजरेगी! वैसे भी तुम्हारे पापा की इतनी बड़ी नौकरी भी नहीं है कि सारी उम्र हम ठाट-बाट से गुजार सकें। आजकल ही देखो कितनी परेशानी झेल रहे हैं फिर भी अपने बच्चों को अच्छे से देखना और पढ़ाना चाहते हैं।' मम्मी उसे समझाने लगी तो इस बार उस पर जैसे कुछ असर हो रहा था वरना दूसरे दिनों तो वह उसे मुँह खोलने का भी मौका नहीं देती थी।

'मम्मी आपने सच ही कहा। अब आप भी क्या करोगे। गलती हमारी ही है जो अपने मम्मी-पापा के कहे का मान नहीं रखते। अब तक मैंने न आपकी बात मानी और न ही पापा की इसीलिए मैं आज कहीं की न रही। मुझसे तो अच्छी गाँव की लड़कियाँ हैं जो अपने घर बाहर का सभी काम भी करती हैं और अपनी पढ़ाई भी कर रही हैं। और मैं-मैंने तो इतनी बड़ी होकर यह भी नहीं जाना कि-' रश्मि ने किसी बड़े-बूढ़े की तरह बोलना शुरू किया तो फिर बोलती ही गई। उसकी बात सुनकर मम्मी को पलभर विश्वास ही नहीं हो रहा था लेकिन अन्तर्मन यह भी कह रहा था कि इंसान का कोई भरोसा नहीं कि कब किसके जीवन में न जाने कैसा समय आ जाए कि वह बदलने लगता है। जब वाल्मीकि 'रामायण', कालीदास 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' लिख सकते हैं तो फिर इस दुनिया में क्या नहीं हो सकता है। सुमित्रा के मन में उठा -पटक होने लगी थी।

'अच्छा है बेटी, तुम्हारी बात सुनकर मन को ठंडक मिली। जब तुम अपने और हमारे बारे में इतना सोच सकती हो तो फिर हमारी मति मारी गई है जो व्यर्थ ही रोना-धोना करें।'

'अब तक जो हुआ सो हुआ। अब हम आपके साथ अच्छी तरह से रहने की कोशिश करेंगे। गाँव आकर हमारी आँखें खुल गईं हैं। पहले हम सोचते थे कि अच्छा खाना और रहना हम शहरी लोग ही जानते हैं लेकिन अब पता चला कि गाँव जैसा कहीं कुछ नहीं है। न अच्छा खाना-रहना और न ही उठना-बैठना। हमें यहाँ आए हुए कितने दिन हो गए हैं लेकिन समय गुजरने का पता ही नहीं चला।

'हाँ, गाँव की यही निराली बातें है जो बिना खर्च किए हमें बहुत कुछ सिखा देती हैं। गाँव में बेशक शहर जैसी सुविधाएँ नहीं हैं लेकिन जब संकट की कोई स्थिति आती है तो सारे गाँव को एक होने में देर नहीं लगती। शहर जैसे यहाँ के लोग रूखे भी नहीं हैं। हमें ही देख लो हम न किसी के ब्याह-बरात, कथा-पाट में आ सके और न ही जीने-मरने में। गाँव के लोगों को देखें तो वे हमें सिर माथे बिठा रहे हैं। किसी ने कभी शिकायत नहीं की कि तुम हमारे दु:ख-सुख में शामिल नहीं हुए तो हम भी तुम्हारे साथ नहीं हैं।' उसे समझाते हुए मम्मी के भीतर का सच बाहर उबल पड़ा था।

'अब हम यहीं अपने गाँव में ही रहेंगे। शहर जाकर क्या करना। हमें यहीं अच्छा लग रहा है।' रश्मि ने जैसे अपना निर्णय सुनाया था।

'अच्छा ही तो है। यहाँ भी क्या बुरा है? अपना मकान, क्यारी, खेत, बगीचा, जंगल सभी कुछ तो है। उधर क्या है? तुम क्या कहते हो?' मम्मी ने राहुल की ओर देखते हुए पूछा जो ध्यान से उनकी बातें सुन रहा था।

'मुझे तो यहाँ बहुत अच्छा लग रहा है। उधर मेरे कॉलेज की छुट्टी है। जब कॉलेज खुलेगा तभी देखा जाएगा।'

'सही कहा, अभी तो वैसे भी वहाँ जाने का कोई औचित्य नहीं है। यह कम्बख़्त कोरोना न जाने कब तक रहे। तब तक तो यहाँ रहना ही होगा।' मम्मी ने कहा तो रश्मि, राहुल की ओर देखने लगी। वह बहुत खुश था।

'तुझे यहाँ कैसा लग रहा है?' रश्मि ने राहुल के मन की थाह ली थी।

'बहुत अच्छा, खूब खेल-कूद रहे हैं। जब जहाँ मर्जी चले जाते हैं। कभी चाचा के साथ छानी, कभी चाची के साथ खेत पर और कभी बुआ के साथ मवेशी चराने जंगल की ओर। हर तरफ आनंद। न ही ठंडे पानी की चिंता और न ही खाने की। जब इच्छा सभी चीजें हाजिर। आजकल पेड़-पौधे फलों से कैसे लदे हुए हैं। जो मर्जी खाओ कोई रोक-टोक नहीं।'

'हाँ, वहाँ तो हम भीतर ही भीतर उकता गए थे। हमारे हाल ओबरे में बँधी मवेशी जैसे हो गए थे। लेकिन यहाँ तो मवेशी भी पूरे दिन ओबरे में नहीं रहती है। कभी बाहर बाँधे जाते हैं, जंगल चराने के लिए ले जाते हैं। पानी पिलाने के लिए बाहर निकाले जाते हैं।'

'हाँ मम्मी, अब पापा से भी यही कह देना कि हम अपने गाँव ही रहेंगे। यहीं पढ़ाई करते हुए अच्छे नंबर लाएँगे। राहुल, मैंने सही कहा न?' उसने राहुल की ओर देखकर पूछा।

'आपने सही कहा। मुझे भी अपने गाँव अच्छा लग रहा है। शहर जाकर अब क्या करना है। यहाँ रहकर भी अच्छी पढ़ाई-लिखाई की जा सकती है।' उसने भी अपने मन की बात कह दी थी।

अपने बगीचे को देखने गए कुलवीर सूर्यास्त तक घर पहुँचे तो सुमित्रा ने सारी बात उन्हें बता दी थी। तब वह कहने लगे-'अच्छा ही तो है। बाहर रहने से तो अपने गाँव रहना लाख गुना अच्छा है। वैसे भी यहीं मेरा जन्म हुआ है। माता-पिता ने अपना पेट काटकर, उछ-पैंछ लेकर मुझे पढ़ा-लिखाकर इतना काबिल बनाया कि मैं शहर जाकर कुछ कमाने लगा। कुछ कमाने के चक्कर में मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गई। मैं अपने माता-पिता को भूल गया था। वे हमेशा हमें याद करते रहे और हम-विवाह, तुम्हारा जन्म सब होता रहा। हमसे घर और अपना गाँव छूट गया। पिता जी बीमार थे तभी मुश्किल से एक बार उन्हें मिलने जा सका था। माँ बीमार हुई तो नहीं आ सका और आज पूरी तरह अपने गाँव आ गए हैं।' वह कहता जा रहा था और आँखों से पानी की धारा अविरल बह रही थी-'हे पितरौ! तुम्हारे जीते जी हम तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं कर सके। और तो और तुम्हारे बीमार होने पर भी कोई सेवा नहीं कर पाए। हमारे लिए धिक्कार है। माता-पिता संतान को इसलिए पालते हैं कि बुढ़ापे में वह उनका सहारा बनेगी लेकिन हम तुम्हारा कहाँ साथ दे पाए। हे पितरौ! तुम हमारी इस भूल के लिए हमें क्षमा करना। हमारे ऊपर अपनी छत्रछाया बनाए रखना।' फिर से उसकी आँखों से आँसुओं की धारा अविरल बहने लगी तो रश्मि और राहुल के साथ सुमित्रा भी उसे देखने लगी थी।

'अब चुप भी कीजिए। रो-धोकर कुछ नहीं होना है। उन्हीं पितरों की इच्छा से शायद हम गाँव लौट आए हैं।'

'हाँ, बिल्कुल सही कहा' वह अपने आँसू पोंछता हुआ बोलने लगा-'सब उन्हीं की कृपा है जो हम आज हम अपने गाँव पहुँच गए हैं वरना हम तो वर्षों से जैसे अपने गाँव का रास्ता भूल गए थे। आज उन्हीं के आशीर्वाद से हम अपने गाँव की ओर लौट पाए। हे पितरो! तुम्हारी और हमारे इष्ट देवता की कृपा सदैव बनी रहे। तुम्हारी नज़र सीधी तो सब ठीक ही ठीक और टेढ़ी तो फिर कुछ नहीं हो सकता।' वह कहता जा रहा था और वे तीनों बस उसी की ओर देखे जा रहे थे।

'अब यह रोना-धोना बंद करो और आगे की सोचो। ऐसा समझो कि अब मुझे इन बच्चों के साथ गाँव में रहना है और आप शहर में रहकर अपनी नौकरी करो। वहीं रहो, खाओ।' उसने हँसते हुए कहा तो बच्चों के साथ वह भी मंद-मंद मुस्कुराने लगा।

'अरे भले मानसो, भीतर ही भीतर क्या कर रहे हो? बाहर तो निकलो!' बाहर से भरतू काका ने पुकारा तो उनका ध्यान उस ओर गया।

'हाँ, बैठे हैं, और करना भी क्या है। भीतर आ जाओ न!' कुलवीर ने वहीं से कहा तो कुछ ही देर में बदन पर ऊन का कोट और सिर पर टोपी पहने भरतू भीतर आ गया था।

'आप लोग बातें करो। मैं आपके लिए चाय बनाती हूँ।' सुमित्रा ने कहा और स्वयं चाय बनाने के लिए उठने लगी।

'मम्मी, आप रहने दीजिए। मैं बनाती हूँ।' उसी समय रश्मि ने कहा तो वह उसकी ओर देखने लगी। देखकर उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा था।

'तू रहने दे, मैं बना लेती हूँ।'

'अब चुप भी करो। कहा न, मैं बनाती हूँ।' रश्मि ने मम्मी से कहा और उठकर रसोई की ओर चली गई। एक बर्तन में चाय के लिए पानी रखा और चाय बनाने लगी। इधर बातें चल रही थी और उधर चाय तैयार थी। उसने गिलासों में चाय उड़ेलकर सभी को चाय दी।

अब सभी लोग चाय पी रहे थे और बातें भी चल रही थी। मन्दिर से ढोल बजने की आवाज आ रही थी। 'देवनल' हो चुकी थी। 'आज किसकी' देगाण (बारी) थी?'

'सुकू की और कल तुम्हारी। मैं यही बताने आया था।' ताऊ ने उनसे कहा।

'अच्छा!' उसके मुँह से फूटा और वह कल की 'देगाण' के लिए जुमरियों और पंडित जी के खाने-पीने की व्यवस्था के बारे में सोचने लगी थी। बाहर अँधेरा काली चाय की तरह गाढ़ा होता जा रहा था।

संभावना-महरगाँव,
पत्रालय-मोल्टाड़ी, पुरोला,
उत्तरकाशी -249185 (उत्तराखंड)
मो.-8894215441

किस्त्र

– आर. एस. खरे

जन्म – 15 अप्रैल 1951।
जन्मस्थान – टीकमगढ़ (म.प्र.)।
शिक्षा – एम.एस.सी., एम.एड., पीएच.डी.।
रचनाएँ – दो पुस्तकें प्रकाशित।

लगभग 30 वर्षों बाद इस कस्बे में फिर से आना हुआ है। इस बार साथ में मेरा पोता सत्यार्थ भी है। सत्यार्थ कक्षा आठवीं में मुंबई के कान्वेंट स्कूल में पढ़ता है। उसे स्कूल से जो प्रोजेक्ट मिला है उसी के सिलसिले में उसे लेकर इस कस्बे में आया हूँ। कस्बाई संस्कृति पर उसे प्रोजेक्ट तैयार कर प्रस्तुत करना है। वह पहली बार किसी कस्बे में आया है। महानगरों के अलावा और हवाई सफर के अतिरिक्त इस तरह की लंबी यात्रा उसने पहली बार की है। वह कस्बे को करीब से देखने और वहाँ रहने वाले लोगों की जीवन संस्कृति को नजदीक से समझने के लिए बेहद उत्सुक है।

सत्यार्थ को जब उसकी शिक्षिका ने कस्बाई संस्कृति पर प्रोजेक्ट तैयार करने के लिए दिया था तब वह बेहद उदास था–'दादू! मुझे सबसे खराब प्रोजेक्ट मिला है। आप मेरी टीचर से बात करके इसे बदलवा दीजिए।' सत्यार्थ अपनी मम्मी और पापा की बजाए अपने स्कूल की सारी बातें मुझे ही आकर बताता है। उसके रुआँसे चेहरे को देखकर मैंने उसे समझाया–'सत्यार्थ! यह टॉपिक तो बहुत इंटरेस्टिंग है। मैंने तो अपनी उम्र का अधिकांश भाग कस्बों में ही बिताया है। रिटायरमेंट के पहले तो मैं रोज ही कस्बों में दौरे किया करता था। असली भारत तो गाँवों और कस्बों में ही बसता है। तुम्हें परेशान होने की कोई वजह नहीं है। मैं ले चलूँगा तुम्हें अपने सबसे प्रिय कस्बे में, जिसकी यादें अभी भी मेरे मन मे बसी हैं।

30 वर्ष पूर्व जब सरकार के एक अधिकारी की हैसियत से मेरा पहली बार इस कस्बे में आना हुआ था, तो मातहतों ने यहाँ के विश्राम गृह में एक कमरा मेरे लिए आरक्षित करा दिया था। पर जब मैं शाम को वहाँ पहुँचा तो मुझे बताया गया कि मेरे लिए आरक्षित कमरे में स्थानीय विधायक ने कब्जा जमा लिया है। दो कमरे वाले विश्रामगृह के एक कमरे में पहले से ही कोई न्यायाधीश ठहरे हुए थे। तब मेरे विभाग के कर्मचारी खेद व्यक्त करते हुए मुझे 'होटल राज निवास' लेकर आए थे।

होटल में पहुँचने पर एक 14–15 साल के लड़के ने जीप से मेरा सामान उताकर कमरे में रखा था। खाकी पेंट और सफेद कमीज में उसे देखकर मैं समझ गया था कि वह सरकारी स्कूल का विद्यार्थी होगा। उस समय लगभग सभी सरकारी स्कूलों का यही गणवेश निर्धारित था। गहरा साँवला रंग, चौड़ी नाक एवं चेहरे की बनावट से मैं यह अनुमान लगा ही रहा था कि यह आदिवासी बालक होगा, तभी उसने धीमी आवाज में पूछा था–'सर! चाय ले आऊँ?'

मैंने सीधे उत्तर देने की बजाय उससे पूछा था–'तुम्हारा नाम क्या है?'

'महीप सिंह भूरिया।'

मेरे यह पूछने पर कि किस कक्षा मे पढ़ते हो?

थोड़ा सकुचाते हुए वह बोला था–'सर! कक्षा दसवीं में।'

'होटल में काम करते हो तो स्कूल कब जाते होगे? पढ़ाई में मन कैसे लगता होगा?'

'सर! स्कूल तो सुबह जाता हूँ 7 से 1 बजे तक। होटल में तो शाम 6से रात 11 तक ड्यूटी करता हूँ।'

'यहाँ होटल में क्या–क्या काम करना पड़ते हैं?'

'सभी कमरों की साफ-सफाई, बाथरूम की सफाई, चादर-तकिया बदलना और गेस्ट जो भी दूसरे काम बताएँ।'

उसने फिर धीमी आवाज में पूछा था-'सर! चाय ले आऊँ?'

'हाँ, ले आओ। दो कप लाना। तुम भी पी लेना।'

'सर! मैं चाय नहीं पीता। अबकी बार उसके चेहरे पर मुस्कान आ गई थी।'

रात में देर तक ऐसे भोले-भाले आदिवासी विद्यार्थियों के बारे में सोचता रहा था। यह तो अभी बाल श्रमिक की श्रेणी में है, किंतु मजबूरी के कारण पढ़ाई के साथ-साथ मजदूरी करने को विवश है। सोचते-सोचते कब नींद आ गई थी कुछ पता नहीं चला था।

'मुझे ऐसा क्यों लग रहा है कि कुछ वर्षों में इस कस्बे में बहुत कुछ बदल सा गया है। कई वर्षों पहले मैं जब यहाँ आया था तो मस्जिद से आती अजान और तालाब किनारे के मंदिर की घंटियों की आवाज सुबह-सुबह मन को प्रफुल्लित कर देती थी। अब क्या हो गया है?'

'बाबू जी! पता नहीं आप कितनी पुरानी बात कर रहे हैं? अब तो यहाँ हर त्यौहार पर तनाव हो जाता है। जुलूस पर पत्थरबाजी हो जाती है। दो बार दंगों में मस्जिद और मंदिर जलाए जा चुके हैं। एक-दूसरे का विश्वास जाता रहा। चुनावी राजनीति ने इस कस्बे की गंगा-जमुनी संस्कृति का सत्यानाश कर दिया है।'

सुबह तड़के जब नींद खुली तो घड़ी में सुबह के 4 बज रहे थे। तभी कानों में बाहर की गली से आती संगीत की धुन सुनाई पड़ी थी। हारमोनियम, ढोलक और झाँझ बजाते हुए गुरबाणी- शबद-कीर्तन गाते कोई टोली गुजर रही थी। खिड़की से झाँककर देखा तो 5-6 सरदार-सरदारनी गाते बजाते आगे बढ़ते जा रहे थे। इतना सुंदर मधुर वाणी में संगीतमय शब्द कीर्तन सुनकर मन प्रफुल्लित हो उठा था। बाद में पता चला था कि पूरे कार्तिक के महीने में ऐसे ही यह मंडली विभिन्न गलियों से गुजरती हुई गुरुद्वारे तक जाती है। वाणी की मिठास कानों में घुली हुई थी कि तभी एक और भजन मंडली 'हरे-रामा-हरे-कृष्णा' गाते हुए होटल के सामने से गुजरी थी। यह इस्कॉन वाले थे जो गाते बजाते नृत्य करते हुए ढोलक पर थाप देते आगे बढ़ते जा रहे थे। सभी अपने में मस्त, श्वेत वस्त्र धारण किए और श्वेत चंदन का टीका मस्तिष्क पर लगाए हुए। फिर थोड़े अंतराल में समीप की मस्जिद से लाउडस्पीकर 'अल्लाह-हू-अकबर' की अजान सुनाई देने लगी थी। अजान के समाप्त होते ही दूर किसी मंदिर के घंटे बजने लगे थे और प्रात: कालीन आरती गाई जा रही थी। विभिन्न धर्मों में एकता का यहाँ अद्भुत दृश्य था। मैं इस कस्बाई संस्कृति का मुरीद हो गया था। विभिन्नता में एकता का अनूठा संगम था यहाँ।

अगले दिन महीप सिंह फिर से कमरे में आया था-'सर! बिस्तर का चादर बदल दूँ।'

'हाँ, बदल दो।'

चादर बदलने के बाद मैंने उसे स्टूल पर बैठ जाने को कहा।

'महीप सिंह, तुम्हारे परिवार में और कौन-कौन हैं?'

'सर! माँ और एक छोटी बहन है। बापू की पिछले साल एक्सीडेंट में डेथ हो गई। बापू की याद करते हुए उसकी आँखों में आँसू आ गए थे।'

'एक्सीडेंट? कहाँ-कैसे?'

'बापू गुजरात मे वड़ोदरा में एक फैक्ट्री में काम करते थे, फैक्ट्री में ब्लास्ट हो गया, जिसमें हमारे गाँव के 5 लोग बुरी तरह झुलस गए थे। बाद में अस्पताल में सभी की मृत्यु हो गई। उसी में हमारे बापू भी थे।'

'ओह! अत्यंत दुखद। फैक्ट्री वालों ने इन सभी की कुछ मदद की?'

'सर! पचास-पचास हजार देने का वादा किया था, पर अभी तक पच्चीस-पच्चीस हजार ही दिए हैं। हर बार आश्वासन देते हैं कि शीघ्र शेष राशि दे देंगे।'

'कुछ खेती-बाड़ी भी है?'

'दो एकड़ जमीन है। सिंचाई की सुविधा नहीं होने से वर्षा पर निर्भर रहते हैं। पास से नहर गुजर रही है, अभी काम चल रहा है, अगले साल तक सिंचाई होने लगेगी।'

अगले दिन वह मुझे अपने गाँव ले गया था। घर क्या एक झोपड़ी थी। उसकी माँ ने बेहद स्वादिष्ट 'पानया' बनाए थे।

मैंने होटल छोड़ने के पहले उसे अपना पता लिखकर दिया था कि कभी आगे पढ़ाई करने में किसी मदद की जरूरत पड़े तो चिट्ठी लिखना। चलते समय उसके हाथ पर कुछ रुपए भी रख

दिए थे।

जिला मुख्यालय के सरकारी महाविद्यालय में जब उसने बी. एस-सी. प्रथम वर्ष में प्रवेश लिया था तब एक बार पता पूछते हुए मेरे बँगले पर आया था। सरकारी छात्रावास में रहते हुए वह खुश था। जब तक उसने अपना ग्रेजुएशन पूरा किया तब तक मैं सेवानिवृत्त होकर बेटे के पास मुंबई आ गया था।

फिर लंबे अंतराल में उससे कभी न तो भेंट हो सकी और न उसका कोई समाचार मिला।

सत्यार्थ को मैं उसके प्रोजेक्ट के सिलसिले में इतनी दूर लेकर आया हूँ उसे बता रहा हूँ कि अगले दिन उसे महीप भूरिया के गाँव भी ले जाऊँगा। उसे समझ तो आना चाहिए कि लोग गाँवों में कैसे रहते हैं? इसी बहाने महीप के बारे में भी पता चल जाएगा कि वह अब कहाँ है और क्या कर रहा है?

सुबह 4 बजे मैंने सत्यार्थ को उठा दिया है।

'अभी देखना गुरुवाणी गाती हुई सिखों की प्रभात फेरी निकलेगी और उसके बाद इसकान की टोली।' खिड़की खोल कर वह मुझसे सट कर खड़ा हुआ है। उसने अपना मोबाइल वीडियो रिकॉर्डिंग के लिए तैयार कर लिया है। वह जब वीडियो रिकॉर्डिंग साथियों को दिखाएगा तो वे भी आश्चर्यचकित रह जाएँगे।

पर घड़ी आगे बढ़ती जा रही है 4.20... 4.30... 4.40... सड़कों पर सन्नाटा पसरा हुआ है। कहीं कोई हलचल नहीं है।

'दादू! कब आएगी प्रभात फेरी?' मेरे पास कोई जवाब नहीं है।

तभी एक मोटर साइकिल पर दो नकाब पोश फुर्ती से आते हैं। उनमें से एक लड़का तेजी से उतरकर दो पत्थर फेंकता है फिर बाइक पर बैठ कर दोनों गायब हो जाते हैं।

एक पत्थर होटल के शीशे से टकराता है और दूसरा मेरी खिड़की से।

खिड़की का काँच टूट कर बिखर जाता है। काँच की एक किरच मुझे भी लहू-लुहान कर देती है। खून देखकर सत्यार्थ बुरी तरह डर जाता है।

थोड़ी ही देर में सायरन बजाती हुई पुलिस की गाड़ी आ जाती है। होटल का एक बुजुर्ग कर्मचारी मेरे कमरे में आकर बिखरे हुए काँच को बटोरते हुए समय को कोसता है।

मैं उससे पूछता हूँ कि-'मुझे ऐसा क्यों लग रहा है कि कुछ वर्षों में इस कस्बे में बहुत कुछ बदल सा गया है। कई वर्षों पहले मैं जब यहाँ आया था तो मस्जिद से आती अजान और तालाब किनारे के मंदिर की घंटियों की आवाज सुबह-सुबह मन को प्रफुल्लित कर देती थी। अब क्या हो गया है?'

'बाबू जी! पता नहीं आप कितनी पुरानी बात कर रहे हैं? अब तो यहाँ हर त्यौहार पर तनाव हो जाता है। जुलूस पर पत्थरबाजी हो जाती है। दो बार दंगों में मस्जिद और मंदिर जलाए जा चुके हैं। एक-दूसरे का विश्वास जाता रहा। चुनावी राजनीति ने इस कस्बे की गंगा-जमुनी संस्कृति का सत्यानाश कर दिया है।'

तभी इंटरकाम पर मैनेजर संदेश सुनाता है कि पुलिस इंस्पेक्टर मुझे नीचे बुला रहे हैं।

मैं सत्यार्थ के साथ नीचे पहुँचता हूँ तो देखकर अचंभित रह जाता हूँ। इंस्पेक्टर की वर्दी पर लगी नेमप्लेट पर 'महीप सिंह भूरिया' अंकित है।

इंस्पेक्टर कुछ देर तक मुझे घूरता रहता है फिर कुर्सी से उठ कर मेरे पैर छूते हुए बोलता है-'सर! आप।'

मैं महीप सिंह को सत्यार्थ के प्रोजेक्ट और इस कस्बे में आने का प्रयोजन समझाता हूँ तो वह बदली हुई परिस्थितयों और आतंकी संगठनों की साजिशों का ब्यौरा देने लगता है।

'सर! आप सत्यार्थ को गलत कस्बे में ले आए। भारत की 'कस्बाई-गंगा-जमुनी' संस्कृति को समझने के लिए अब यह कस्बा उपयुक्त नहीं रहा।'

महीप सिंह का वह कथन किरच की तरह आज भी मुझे पीड़ा देता है।

11 सियाराम परिसर,
सौम्या इन्क्लेव, चूना भट्ठी,
भोपाल-462016 (म.प्र.)
मो.- 9827267006

रंग मंडप

– दीपक शर्मा

जन्म – 30 नवंबर 1946।
जन्म स्थान – लाहौर अविभाजित भारत।
शिक्षा – स्नातकोत्तर।
रचनाएँ – अठारह कथा-संग्रह प्रकाशित।

झगड़े के बाद माँ अक्सर इस मंदिर आया करतीं। घंटे, दो घंटे में जब मेरा गुस्सा उतर कर चिन्ता का रूप धारण करने लगता तो उन्हें घर लिवाने मैं यहीं इसी मंदिर आती।

एक-एक कर मैं प्रत्येक रुकाव एवं ठहराव पर जाती। प्रसाद की परची कटवा रहीं, प्रसाद का दोना सम्भाल रही, माथा टेक रही, चरणामृत ले रही, बँट रहे प्रसाद के लिए हाथ बढ़ा रही, सरोवर की मछलियों को प्रसाद खिला रही, स्नान-घर में स्नान कर रही सभी अधेड़ स्त्रियों को मैं ध्यान से देखती-जोहती और दो-अढ़ाई घंटों में माँ का पता लगाने में सफल हो ही जाती।

मगर उस दिन मंदिर के मुख्य द्वार की ड्योढ़ी पर पाँव धरते ही मैं ने जान लिया सरोवर के जिस परिसर पर भीड़ जमा रही, माँ वहीं थीं।

'क्या कोई हादसा हो गया?' परिक्रमा से लौट रही एक दर्शनार्थी से मैंने पूछा।

'हाँ, बेचारी एक बुढ़िया यहाँ मरने आई थी। स्नान के बहाने डूब जाना चाहती थी मगर लोगबाग ने समय रहते शोर मचा दिया और यहाँ के सेवादारों ने उसे गहरे में जाने से रोक लिया।'

लोगों की भीड़ को चीरना मेरे लिए कठिन न रहा। अवश्य ही मेरी चाल व ताक कूतना उनके लिए सुगम रहा होगा।

'यह मेरी माँ हैं,' संगमरमर के चकमक फर्श पर माँ पेट के बल लेटी थीं। उनकी सलवार कमीज उनकी देह के संग चिपकी थी।

'जब यह दूसरे जोड़े के बिना हमारे स्नानघर में दाखिल हुईं, मैंने तभी जान लिया था, जरूर कुछ गड़बड़ है।' सम्भ्रान्त एक अधेड़ महिला ने मेरा कन्धा थाम लिया।

'घर में क्या बहू से झगड़ा हुआ?' एक वृद्धा की आँखों से आँसू ढुलक लिए।

'आपके पिता कहाँ हैं?' एक युवक ने उत्साह दिखाया, 'मैं उन्हें खबर करता हूँ। आप अकेली इन्हें कहाँ सँभाल पाएँगी?'

'गुड आफ्टर नून, मैम,' भीड़ के एक परिचित चेहरे ने मेरी ओर हाथ हिलाया, 'मैं अपनी कार से आई हूँ। आप दोनों को आपके घर पहुँचा आऊँगी।'

'थैन्क यू', मैंने उसका सहयोग स्वीकारा।

'क्या किसी कॉलेज में पढ़ाती हो?' पहली वाली सम्भ्रान्त महिला ने मुझ से पूछा।

'हाँ,' मैंने सिर हिलाया, 'यह लड़की मेरी छात्रा है।'

'नौकरी-पेशा हो कर इतनी नासमझी दिखाई,' सम्भ्रान्त महिला ने मुझे फटकारा, 'और माँ के लिए यह नौबत ले आई।'

'तुम्हारा पागलपन बढ़ रहा है, माँ,' शाम को जब माँ मुझे बात सहने लायक दिखाई दीं तो मैंने उनकी खबर ली, 'आज फिर डॉक्टर के पास तुम्हें ले कर जाना पड़ेगा।'

'मैं पागल नहीं हूँ,' माँ रोने लगीं, 'बस, अब और जीना नहीं चाहती।'

'इसीलिए तो डॉक्टर के पास जाना जरूरी है,' मैं कठोर हो ली।

'मैं वहाँ न जाऊँगी,' माँ व्यग्र हुईं। बिजली के संघात उस डॉक्टर की चिकित्सा-प्रक्रिया के अभिन्न अंग रहे और माँ वहाँ जाने से बहुत घबरातीं।

'आप ऐसे नहीं मानेंगी तो फिर मजबूर हो कर मुझे आपको वहाँ दाखिल करवाना पड़ेगा।' मुझे माँ पर बहुत गुस्सा आया।

'यह दुख तो नहीं ही झेला जाएगा।' माँ गहरे उन्माद में चली गईं; कभी अपने बाल नोचतीं तो कभी अपने कपड़े फाड़ने का

प्रयास करतीं, 'पुराने दुख कट गए थे कि आगे सुख मिलने वाला है, मगर इस बार तो कहीं उम्मीद की लकीर भी दिखाई नहीं दे रही।'

'यह दवा खा लो, माँ।' मैंने डॉक्टर की बताई दवा माँ के मुँह में जबरन ठूँस देनी चाही।

माँ ने दवा मेरे मुँह पर थूक दी और मेरा हाथ इतने जोर से दबाया कि न चाहते हुए भी मेरी चीख निकल ली।

चीख सुन कर मकान मालकिन दौड़ी आईं।

अस्पताल से एम्बुलेंस उन्हीं ने मँगवायी।

माँ और मेरे बीच रिश्ता तब तक ही ठीक रहा, जब तक मैं अपने पिता के घर पर अपनी पढ़ाई पूरी करती रही।

'तेरी नौकरी की उम्मीद पर जी रही हूँ।' उन पन्द्रह वर्षों के दौरान माँ मुझे जब-जब मिलीं, मुझे अपने सीने से लगा कर अपना एक ही सपना मेरी आँखों में उतारती रहीं, 'तेरी नौकरी लगते ही हम दोनों अपने-अपने नरक से निकल लेंगी।'

हमारे साथ अजीब बीती थी। असहाय अपनी विधवा माँ तथा स्वार्थी अपने तीन भाइयों के हाथों कच्ची उम्र में ही माँ जब तंगहाल मेरे पिता के संग ब्याह दी गई थीं तो उधर अपनी महत्वाकांक्षा के अन्तर्गत मेरे पिता बीस वर्ष की अपनी उस उम्र में मिली अपनी स्कूल क्लर्की से असन्तुष्ट रहने की वजह से अपने लिए कॉलेज लेक्चरर की नौकरी जुटाने में प्रयासरत थे।

घोर संघर्ष व विकट कृपणता का वह तेरह-वर्षीय परख-काल माँ के लिए किसी बल-परीक्षा से कम न रहा था। किन्तु सीढ़ी हाथ लगते ही मेरे पिता को माँ बेमेल लगने लगी थीं।

माँ को उन्होंने फिर ज्यादा देर भ्रम में न रखा। उसी वर्ष अपने कॉलेज में पढ़ाने आई एक नई लेक्चरर से अपनी शादी रचा ली और माँ को अपनी विपत्ति काटने के लिए नानी के पास भेज दिया। बढ़ रही माँ की बड़बड़ाहटों का हवाला दे कर।

हरजाने की एवज में माँ ने मेरे पिता से मेरी पढ़ाई का बीड़ा उठाने की माँग रखी थी। जानती रही थीं उनके गरीब मायके पर मेरी पढ़ाई अधूरी रह जाती जब कि मेरे पिता के घर पर एक साथ दो बड़ी तनख्वाहों के आने से मेरी पढ़ाई सही ही नहीं, बल्कि उत्तम दिशा में आगे बढ़ने की सम्भावना थी।

किन्तु माँ का और मेरा सपना पूरा क्या हुआ, हम दोनों पर मानो एक साथ फिर पहाड़ टूटा।

शुरू के तीन-चार महीने जरूर चुटकी में निकल लिए थे। तैंतालीस वर्ष में बुढ़ा आई माँ को ब्यूटी पार्लर, हेल्थ सेन्टर व बुटीक के बल पर स्वरूप देने में सफल रही थी और माँ स्वयं भी अति प्रसन्न थीं।

हमारी भावसमाधि टूटी राखी के दिन।

'अपने भाइयों को राखी नहीं बाँधोगी?' मेरे पिता अपने दूसरे परिवार के साथ उस दिन हमारे घर पर आ टपके।

'क्यों नहीं?' मैं खिसिया गई।

जब से नौकरी के सिलसिले में मैंने अपना शहर बदला था, अपने पिता के साथ मेरा सम्पर्क टूट गया था। मेरे कॉलेज के पते पर उन्होंने मेरे नाम दो पत्र भेजे भी थे, किन्तु मैंने उन्हें निरुत्तर रहने दिया था।

'आप हमें बहुत याद आती हो, जीजी,' बड़े ने मेरा दुपट्टा खींचा। वह बहुत नटखट था, अपने उस चौदहवें वर्ष में।

'हाँ, बेटी,' मेरे पिता की आँखों के कोर भीगे।

जब तक मैं उधर रही, मेरे पिता ने अपने स्नेह-वृत्त के भीतर अपने दूसरे परिवार ही को रखा था, मुझे कभी नहीं। मैं सदैव एक स्पर्श-रेखा सी वृत्त के बाहर ही रहती रही थी, किन्तु उस दिन पिता की भर आई आँखें देख कर मेरा दिल पसीज गया और मैं रोने लगी।

'चल, बस कर।' मेरी सौतेली माँ मेरे साथ सदैव औपचारिक व संयत व्यवहार ही प्रयोग में लाती थी। 'ले, तेरे लिए यह कपड़े और मिठाई लाए हैं।'

'आप भी हमें कुछ दोगी, जीजी?' दस-वर्षीय छोटा लाड़ से मेरी बाँह पर झूल गया।

'हाँ, हाँ, क्यों नहीं?' उस दिन महीने की दो तारीख थी और मेरी एक पूरी तनख्वाह मेरे पर्स में ज्यों की त्यों धरी थी, 'तुम जो कहोगे मैं सब ले दूँगी।'

तीसरी बार सौतेली माँ अकेली आईं, 'बहन की शादी के इस कार्ड के साथ त्रिलोक ने तेरे लिए यह मिठाई भी भेजी है। बोला, उसे शादी में जरूर आना है, वरना मेरा दिल टूट जाएगा।'

मगर जैसे ही सौतेली माँ गेट से बाहर हुईं माँ ने कार्ड फाड़ कर कूड़ेदान में फेंक दिया और मिठाई का डिब्बा खोले बगैर मकान-मालकिन को सौंप दिया, 'उस शहर से तेरे जाने का मकसद अब खत्म हो चुका है। उस शहर से अब हमें कोई वास्ता नहीं रखना।' उन्हें सौतेली माँ की मंशा की भनक लग चुकी थी और वह किसी भी सूरत में मेरी शादी के लिए राजी होने के लिए तैयार न थी।

'इन्हें बाजार कहाँ ले जाती फिरोगी?' सौतेली माँ ने मुझे टोक दिया, 'आज हमें लौटना भी तो है। तुम मुझे कैश दे देना। इन्हें मैं उधर से इनका मनपसन्द सामान दिला दूँगी।'

अपने पर्स से मैं पाँच हजार रुपए तत्काल निकाल लाई।

'तुम्हें एक महीने में कितने रुपए मिलते हैं जीजी?' बड़े ने फिर मेरा दुपट्टा खींचा।

तभी अपने कमरे में छिपी बैठी माँ की बड़बड़ाहट बाहर चली आई, 'इधर मैंने सुख चखा नहीं कि ये अपना हक जताने चले आए। तेरी पढ़ाई की खातिर भूख काटी मैंने, बेआरामी सही मैंने, और मलाई चाटने आ धमके ये सौतेले!'

'अपनी माँ को तू अपने पास रखे है क्या?' मेरे पिता ने चौंक कर पूछा।

'जी,' मैं हड़बड़ा गयी।

'उसे पास रखे हो तो पागलखाने के किसी डॉक्टर का टेलीफोन नम्बर भी पास रखे रहो। न मालूम कब वह पगलैट बेकाबू हो कर तुम्हें ही कोई नुकसान पहुँचा दे!' मेरे पिता ने चिन्ता जतलाई।

'नहीं, नहीं, वह ठीक हैं।' जब से माँ मेरे पास आन ठहरी थीं, मुझे उनसे कोई शिकायत नहीं रही थी।

'वह छोड़िए।' सौतेली माँ बाथरूम के बहाने मुझे अकेले में ले गयीं, 'मुझे जरा उधर जाना है।'

'पीले बँगले वाला त्रिलोक अक्सर घर पर आता है।' वह मेरे कान में फुसफुसाई– 'लगता है तुम से शादी करने पर ही दम लेगा।'

'ऐसी तो कोई बात न रही।' त्रिलोक एम. ए. में मेरा सहपाठी रह चुका था और उसकी धनाढ्यता के चर्चे सुनने में आते रहते थे।

'पर शादी तो तू करेगी ही न! और फिर हम तेरी शादी की न सोचेंगे तो कौन सोचेगा? त्रिलोक में बुराई तो कोई है नहीं। अपनी जात-बिरादरी का है, पैसे वाला है, रौबदार है, और हमें क्या चाहिए? तू कहे तो तेरे पापा जी से कह कर बात चलाऊँ?'

'ठीक है।' मैंने अपनी सहमति दे दी।

'बढ़िया।' सौतेली माँ ने ताली बजा दी। जब भी वह उल्लासित होतीं, अपनी हीं-हीं के साथ ताली जरूर बजातीं।

'वे पाँच हजार तू मंदिर चढ़ा आती, उन्हें क्यों दिए?' उन लोगों के जाते ही माँ चीख पड़ीं, 'वे तेरे सगे कभी नहीं हो सकते। मैं उन्हें जानती हूँ, तुम नहीं।'

'वे इतने बुरे नहीं हैं।' मैं माँ पर पहली बार बरसी। 'आखिर मेरी पढ़ाई पर पैसा तो उन्हीं का लगा। बदले में अगर थोड़ा-बहुत उनके बच्चों को दे भी दिया तो क्या हुआ? रोज तो वह आएँगे नहीं.....'

'मुँह में खून लग जाए तो आदमी दोबारा शिकार करने जरूर आता है। देख लेना तुझे चूना लगाने वे जल्दी ही आएँगे।'

माँ का अनुमान सही निकला। अगले महीने की चार तारीख को मेरी सौतेली माँ अपने दोनों लड़कों के साथ फिर मेरे घर आ पहुँची।

'इस बार त्रिलोक तुझे पूछने आया तो तेरे पापा जी ने उसे अन्दर बुला लिया। उम्दा चाय-नाश्ता कराया। लगता है दो-तीन मुलाकातें और हुईं नहीं कि बात पक्की बनी नहीं।' सौतेली माँ ने मेरी पीठ थपथपायी।

दोनों लड़कों ने उस बार भी मेरे साथ बहुत लाड़-मनुहार दिखाया और मेरे पाँच हजार फिर उनकी भेंट चढ़ गए।

तीसरी बार सौतेली माँ अकेली आईं, 'बहन की शादी के इस कार्ड के साथ त्रिलोक ने तेरे लिए यह मिठाई भी भेजी है। बोला, उसे शादी में जरूर आना है, वरना मेरा दिल टूट जाएगा।'

मगर जैसे ही सौतेली माँ गेट से बाहर हुईं माँ ने कार्ड फाड़ कर कूड़ेदान में फेंक दिया और मिठाई का डिब्बा खोले बगैर मकान-मालकिन को सौंप दिया, 'उस शहर से तेरे जाने का मकसद अब खत्म हो चुका है। उस शहर से अब हमें कोई वास्ता नहीं रखना।' उन्हें सौतेली माँ की मंशा की भनक लग चुकी थी और वह किसी भी सूरत में मेरी शादी के लिए राजी होने के लिए तैयार न थीं।

'त्रिलोक को मैं जानती हूँ,' मैंने फटा हुआ कार्ड कूड़ेदान से उठा लिया, 'वह बहुत भला लड़का है.....'

माँ ने कार्ड मेरे हाथ से छीना और उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर डाले, 'जब मैंने कह दिया हमें उस शहर से वास्ता नहीं रखना तो बस नहीं रखना।'

'तुम्हें वास्ता नहीं रखना तो तुम वापस जा सकती हो।' मैं आपे से बाहर हो ली, 'मगर मुझे तो उस शहर से भी वास्ता रखना है और त्रिलोक से भी।'

'तो मैं काहे को यहाँ पड़ी हूँ? ऐसा ही है तो फिर मुझे भी तुझ से

वास्ता नहीं रखना।' और माँ अपनी चप्पल पहन कर इसी मंदिर की ओर लपक ली थीं।

तदनन्तर जब-जब माँ मंदिर में जा बैठतीं, माँ को मानसिक अस्पताल के डॉक्टर के पास मुझे ले जाना ही पड़ता।

'पहले मेरे भाइयों को सिखा-पढ़ा कर तेरे बाप ने पागलखाने में मेरी आवाजाही चालू रखी, अब तुझे भड़का कर मुझे हमेशा के लिए पागलखाने में फिंकवा देगा।' हर बार माँ काँप-काँप जातीं।

अस्पताल में माँ के दाखिले की सूचना मिलते ही मेरे पिता मेरी सौतेली माँ के साथ मेरे पास भागे आए।

'बहुत अच्छा किया, बेटी।' उन्होंने मुझे शाबाशी दी, 'समय रहते उसे ठिकाने पर पहुँचा दिया वरना यह पागल लोग तो खून-खराबे पर उतर आते हैं।'

सौतेली माँ को जब मैंने लगातार मुझसे अपनी आँखें चुराते हुए देखा तो मैं उन्हें ओट में ले गई।

'बात क्या है?' मैंने पूछा, 'इस बार आपने उधर का कोई समाचार नहीं दिया?'

'क्या बताऊँ?' सौतेली माँ मेरी पीठ थपथपाने लगीं। 'जब से त्रिलोक की माँ को तुम्हारी माँ के पागलपन की खबर लगी है, वह डर गई हैं। लगता है यह रिश्ता अब हाथ से निकल जाएगा।'

'मगर उन लोगों को माँ के बारे में बताने की क्या जरूरत थी?' मैंने अपना एतराज जतलाया। 'माँ हमेशा के लिए थोड़े न पागलखाने गई हैं। ठीक होकर जल्दी ही लौट आएँगी।'

'तू अभी बच्ची है। नहीं जानती, पागल कभी ठीक नहीं होते। जहाँ उन्हें किसी की बात मन-माफिक नहीं लगती, वहीं उनका पागलपन फिर अपना सिर उठा लेता है।'

'ऐसे में तो भेद बनाए रखना और भी जरूरी था।' मैं क्षुब्ध हो ली।

'क्या बताऊँ?' सौतेली माँ ने मेरी पीठ फिर थपथपा दी। 'ऐसे भेद छिपाए नहीं छिपते। पागलपन की बीमारी ही ऐसी कमबख्त बीमारी है। जब माँ को लगती है तो फिर यकीनन उसके बच्चों पर भी अपनी बारी बाँध लेती है। कल को उधर अपनी ससुराल में किसी बात के मन-माफिक न रहने पर कहीं यह बीमारी तुझे धर लेती तो वे लोग तो मुझी को दोष देते। कहते, मैंने उन्हें अँधेरे में रखा।'

उसी रात सौतेली माँ का वहम अमल में आया। हूबहू माँ की तरह मैंने पहले अपने बाल नोचे, फिर अपने कपड़े फाड़े और उसके बाद दीवार से सिर टकरा कर देर तक चिल्लाई- 'यह दुख सहना मुश्किल है। पिछले दुख इस उम्मीद पर कट गए थे कि आगे सुख आने वाले हैं, मगर इस बार कोई उम्मीद नहीं।'

मेरे लिए भी माँ के अस्पताल से एम्बुलेंस मेरी मकान-मालकिन ही ने मँगवाई।

बी-35, सेक्टर सी, अलीगंज,
लखनऊ - 226024 (उ.प्र.)

विशेष अनुरोध

सम्मानित सदस्यों से विनम्र अनुरोध है कि सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, आर.टी.जी.एस / एन.ई.एफ.टी, आदि ई-बैंकिंग माध्यमों से भेजने के पश्चात् एक पोस्ट-कार्ड पर अपना पूरा नाम-पता, पिन कोड नम्बर सहित लिखकर 'अक्षरा' कार्यालय को अवश्य सूचित करें। ताकि पत्रिका प्रेषित करने / मिलने में होने वाली असुविधा से बचा जा सके।

बैंक, खाता संख्या निम्नवत् है-

Ac/ No. 50413818696, IFSC- IDIB000T610

इंडियन बैंक, हिन्दी भवन शाखा, भोपाल

या में दो न समाय

– हरिप्रकाश राठी

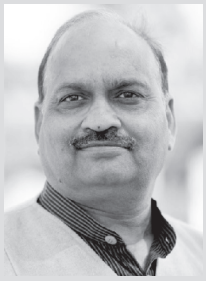

जन्म – 8 सितंबर 1955।
शिक्षा – एम.कॉम., सी.ए., आई.आई.बी।
रचनाएँ – पंद्रह पुस्तकें प्रकाशित
सम्मान – अखिल भारतीय सम्मान सहित अनेक संस्थाओं से सम्मानित।

दिसम्बर की कँपकँपाती ठण्ड में मावठ के दिन आते ही ठण्ड दूनी हो जाती है। हड्डियों के दर्द के चलते बूढ़े इन दिनों बहुत परेशान हो जाते हैं। बूढ़ी हड्डियों को चलने के लिए सूरज की गर्मी तो चाहिए ही, अहसासों की नमी भी उतनी ही आवश्यक है। इन्हीं दिनों अनेक बार लगता है बादल इकट्ठे होकर बर्फ की तरह जम गए हैं। क्या बादल स्वयमेव खुल जाएँगे? इसके लिए उन्हें मशक्कत तो करनी होगी। उनकी मशक्कत भी तब कारगर होगी जब पीछे ऊँघता सूरज उन्हें सहयोग करें। हाँ, दोनों ठान लें तो संभव है।

इन्हीं मावठ के दिनों में महेन्द्र भण्डारी को लकवा क्या हुआ उनका जीवन थम गया। जैसे किसी तेज गति से चलती हुई ट्रेन को एकाएक किसी ने जंजीर खींचकर रोक दिया हो, यही हालत महेन्द्र जी की थी। अभी उनकी उम्र अधिक तो नहीं थी, महज पचास वर्ष, अच्छे खासे दिखते थे, नित्य सुबह घूमने जाते, योगा करते पर समय किसका सगा है जो उनका होता। लकवा होने के पूर्व कैसे तीखे–बाँके दिखते। गोरा रंग, इस उम्र में भी काले बाल, आँखों में ललाई, अच्छी देहयष्टि एवं कद–काठी उनके व्यक्तित्व को एक अलग आयाम देती। दो वर्ष पूर्व पत्नी शांता का निधन हुआ तो उन पर मानो बिजली गिरी लेकिन कारोबारी व्यस्तताओं के चलते इस वज्र दु:ख को भी उन्होंने नीलकंठ की तरह गले से नीचे उतार लिया। हाथ–पाँव चलते आदमी स्वयं को व्यस्त भी रख ले पर यूँ लाचार हो जाए तो क्या करे? लकवा शरीर से अधिक मन को मारता है। वैसे तो उनके बड़े बेटे अनिल ने लकवा होने के कुछ दिन बाद ही चौबीस घण्टे का एक नौकर तीमारदारी के लिए रख लिया था पर किसी भी गैरतमंद, स्वाभिमानी, सक्षम व्यक्ति के लिए किसी के अधीन होकर जीना भी इतना सरल नहीं है।

महेन्द्र जी शहर के नामचीं उद्योगपति थे, पैसों की भरमार थी, पत्नी के रहते उन्होंने दोनों बेटों अनिल एवं सुनील के ब्याह निपटा दिए थे। बहुएँ सुलक्षणा, सेवा में थी, घर में नौकर भी थे लेकिन अपना दु:ख तो व्यक्ति को स्वयं ही उठाना पड़ता है। वस्तुत: कुछ दु:खों, कष्टों एवं तकलीफों की व्याख्या भी नहीं हो सकती, उन्हें वही जानता है जो भोगता है। सच ही कहा है व्यक्ति के पास धन–दौलत, कोठी–गाड़ी सब कुछ हो पर वह सुखी न हो तो अनेक बार पैसा उसे काटता तो है ही, चिढ़ाता भी है। इससे अच्छे तो वे लोग हैं जो छप्पर के नीचे चैन से सोते हैं।

अभी कुछ दिन पहले दोपहर चार बजे घर में घुसे तो बड़ी बहू उनका चेहरा देखकर घबरा गई। पापा तो हमेशा प्रसन्न मन आते थे लेकिन आज हालत ऐसी थी मानो किसी पेड़ पर बिजली गिर गई हो एवं वह बदरंग हो गया हो। वे चुपचाप आकर डाइनिंग टेबल के पास सिर पकड़कर बैठ गए, बड़ी बहू चाय बनाकर लाई एवं टेबल पर रखी ही थी कि महेन्द्र जी फफक पड़े। बहू ने झकझोरा तो बोले, 'बहू! आज मैंने जीवन में वह किया जो कभी नहीं किया। अक्ल फिर गई। सब को सट्टा न खेलने की राय देता था पर आज कोई पुराना मित्र मिल गया तो उसके साथ बाजार चला गया, उसके उकसाने पर एक बड़ा सौदा कर लिया, कुछ ही देर में भाव इस कदर गिरे कि मुझे समझ नहीं आया अब क्या करूँ? सिर्फ दो घंटे के अंतराल में मुझे एक करोड़ का घाटा हो गया।' कहते–कहते वे इस तरह विलाप करने लगे मानो कोई महापाप कर बैठे हो। फैक्ट्री में बच्चों को सूचना दी गई, वे दौड़े आए, सुनील ने स्थिति देखकर पिता को सांत्वना दी, 'पापा! आज हम उस मुकाम पर हैं कि इस हानि को पचा सकते हैं।' यह बात सच भी थी लेकिन थैली की चोट बनिया जाने। व्यक्ति अगर कठोर संघर्ष कर धन कमाता है तो उसका मूल्य भी वहीं जानता है। वे किसी के समझाए न समझे।

मावठ के मौसम में भी महेन्द्र जी के चेहरे पर पसीने की बूँदें उभर आईं, मुँह से झाग आने लगे, उठने का प्रयास किया तो लड़खड़ाकर गिर पड़े। घर से कुछ दूर ही अस्पताल था, आनन-फानन वहाँ ले जाया गया, सूचना मिलते ही स्नायुतंत्र विशेषज्ञ डॉ. अजय वहाँ आए। उन्हें देखा और पल भर में समझ गए कि वे किसी सदमे का शिकार हुए हैं एवं उसी सदमे से उन्हें कमर से नीचे लकवा हो गया है। इस लकवे से उनका बाँया हाथ भी निश्चेष्ट होकर लटक गया। पूरा इलाज किया गया, वे दस दिन अस्पताल भी रहे, लेकिन रोग जस का तस बना रहा। अंत में डॉ. अजय ने परिवार वालों को कह दिया कि हमें जो करना था, कर चुके, आप इन्हें घर ले जाएँ, दवाइयाँ मैंने लिख दी हैं, अब इनका जीवन आपकी सेवाओं एवं फिजियोथेरिपिस्ट पर ही निर्भर है।

घर आते ही उनके कमरे में चौबीस घण्टे नौकर की व्यवस्था की गई, सेवा कहना तो सरल है पर ऐसी तीमारदारी अब किसके बस में है। कसरत करवाने वाले फिजियोथेरिपिस्ट की भी व्यवस्था की गई जो नित्य सुबह-शाम आकर उन्हें एक्सरसाइज करवाता। कल तक चुस्त-दुरस्त दिखने वाले महेन्द्र अब थके-हारे दिखने लगे। फिक्र फाके से भी बुरी है। कई बार विलाप करते ओह, मैंने इतना दु:ख क्यों किया, करोड़ों में एक करोड़ चला जाता तो कौनसी लुटिया डूब जाती। मेहनत कर फिर कमा लेता लेकिन चिड़िया खेत चुग जाने के बाद क्या हो सकता है। गाँठ से पूँजी भी गई सो तो गई, शरीर भी खराब किया।

एक विचित्र अवसाद के चलते दीवारों को तकते रहते। जब भी उठते, डगमगा जाते, बोलते तो वाणी का संतुलन नहीं रहता। समय बीतने के साथ उनकी याददाश्त भी कम होने लगी, अक्सर भ्रांत रहते। दृष्टि कभी सामान्य होती, कभी कहते कम दिख रहा है। कभी अकारण सोते रहते तो कभी नींद नहीं आती, कुल मिलाकर इस रोग के चलते उनका शारीरिक-मानसिक सन्तुलन बिगड़ चुका था। घर में अकारण चिढ़ते रहते। प्रारंभ में बहू-बेटों ने सहा पर धीरे-धीरे सभी ने बाप से मिलना कम कर दिया, बस औपचारिकता भर मिलते। गाड़ी अब नौकरों के आसरे थी।

इस घटना को पूरे दो वर्ष होने को आए, इस दरम्यान दो फिजियोथेरिपिस्ट भी बदले पर उनका स्वास्थ्य जस का तस बना रहा। पहले दोनों फिजियोथेरिपिस्ट युवा थे, दोनों हृष्टपुष्ट पुरुष थे, महेन्द्र जी को सँभालना सरल नहीं था, इसी हेतु इनको रखा गया था लेकिन उनके स्वभाव के चलते उन्होंने भी पल्ला झाड़ दिया। महेन्द्र जी का चिड़चिड़ापन दिन-दिन बढ़ता जा रहा था, कभी-कभी तो चिल्लाने लगते पर बीवी होती तो शायद सुन लेती, अन्य कौन सहन करे? पुन: डॉ. अजय को नया फिजियोथेरिपिस्ट भेजने को कहा गया, इस बार फिजियोथेरिपिस्ट वीणा चोपड़ा थी। उम्र चालीस वर्ष, ऊँचा कद, चुस्त, भरा बदन, अच्छे नक्श, गहरी पानीदार, सम्मोहक आँखें जिसके किनारों पर नीली झाँई थी, बात-बात पर खिलखिलाकर हँसती, यह कार्य करते हुए उसे पन्द्रह वर्ष होने को आए। तीन वर्ष पूर्व दुर्घटना में पति का निधन हो गया, एक बेटा था वही उसका जीवन आसरा था। उसे देखकर जीवन के सारे दु:ख भुला लेती। अब वह भी बारह वर्ष से ऊपर का हो चुका था। वीणा वाक्पटु तो थी ही, उसका ड्रेससेंस भी काबिले तारीफ था। वह बहुधा सलवार-कुर्ते में होती, चेहरे पर हल्का मेकअप उसके रूप, व्यक्तित्व को और निखारता। माथे पर बिंदी लगाती एवं लोग अनेक बार कहते भी विधवा होकर बिंदी लगाती, बन-ठन कर रहती। बेबात हँसती तो वह इन बातों को यूँ दरकिनार करती जैसे सुना ही न हो। वह विदुषी थी, जानती थी दु:ख सबके जीवन का हिस्सा है, सुख वस्तुत: इस दु:ख को शिकस्त देने की कला ही है। अपने व्यवहार से उसने अब तक अनेक रोगी ठीक किए थे, उनके विभाग वाले तो यहाँ तक कहते कि जो किसी से ठीक नहीं होते, वीणा से ठीक हो जाते हैं।

वीणा जब पहली बार महेन्द्र जी से मिली तब वे अपने कमरे में खिड़की के पास व्हील चेयर पर बैठे बाहर बगीचे में झाँक रहे थे। सुबह के नौ बजे होंगे। वीणा चलकर उन तक गई, कुर्सी पर रखा उनका निश्चेष्ट बाँया हाथ धीरे से दबाया और बोली, 'आज से मैं आपकी नई थेरेपिस्ट हूँ।' यह कहकर वह मुस्कुराई तो उसकी धवल दंतपंक्ति मोतियों-सी बिखर पड़ी। बाहर बगीचे के आगे दीवार पर कुछ पौधे रखे थे जिसमें मौसम के अनुरूप गुलाब, जूही, डहेलिया आदि फूल खिल रहे थे। बगीचे की घास एवं पौधों पर अब भी ओस की बूँदे थीं जो यहाँ-वहाँ सवेरे की सूर्यकिरणों के संपर्क से चमक उठी थीं। वातावरण में ठण्डक थी। नवम्बर के प्रारम्भिक दिन थे। वीणा पुन: बोली, 'ओह! कितने सुंदर फूल हैं। गुलाब कितने ताजा हैं। क्या आप इन्हीं फूलों को देख रहे हैं?'

'जी, हाँ! कभी सुबह मैं स्वयं बागवानी करता था, तब बगीचा फूलों से भरा होता, सर्दी आने के दो माह पहले ही कलमें दुरस्त कर लेता, खाद-पानी का ध्यान भी मैं ही रखता, लेकिन अब

देखो गमले कैसे बेतरतीब पड़े हैं, मैं तो इन पर रंग भी करता था, अब यह रंग कितने फीके पड़ गए हैं!' कहते-कहते वे हाँफने लगे। ठीक से न बोलने एवं अनायास आए इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वे सकपका गए।'

'वो समय शीघ्र वापस आने वाला है। फूल फिर वैसे ही महकेंगे जैसे पहले। आप जो सोचते हैं, कुदरत एक दिन स्वयं उसे आपके हाथों में रख देती है। लगता है आपकी इच्छाशक्ति बहुत प्रबल है।' कहते-कहते वीणा बेबात खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसकी दूधिया बत्तीसी से मानो जूही के फूल झरने लगे थे। पौधे में खिले जूही के फूल मानो उसके मुँह में आ गए थे।

'चलिए! अब कसरत करते हैं। आप पुनः बागवानी करें इसके लिए यह जरूरी है।' वीणा मुस्कुराई फिर कुर्सी मोड़कर उन्हें पलँग तक लाई एवं सहारा देकर लिटाया।

महेन्द्र जी में क्षणभर के लिए ऊर्जा का संचरण हुआ।

कुछ ही देर में उनकी कसरत प्रारंभ हुई। वीणा कसरत करवाते हुए उन्हें गौर से देख रही थी। उसे समझ आ गया कि महेन्द्र जी एक ऐसे रोगी हैं जिनके भीतर जीवन की अनंत संभावनाएँ हैं पर वे जीने की आशा, उमंग एवं उन्माद खो बैठे हैं। इसी निराशा के चलते असहाय बार-बार चिढ़ते हैं। घर वाले उन्हें दरकिनार कर चुके हैं, पत्नी का कुछ वर्ष पूर्व निधन हो चुका है, मित्र अब देखने आते नहीं, फैक्ट्री जाते नहीं फिर जीवन को गति कैसे मिले? लकवे में तो वैसे भी मस्तिष्क को उत्साह देने वाले केमिकल्स कम हो जाते हैं, जीवन को फिर संतुलन, आनंद, उत्साह से कैसे भरा जाए?

प्रेम की गरमी एवं अहसासों की नमी से मनुष्य तो क्या पत्थर भी पिघल जाते हैं।

मावठ फिर आया। बादल फिर जम गए, लेकिन इस बार सूरज तन गया। सूरज ने ताप दिखाया तो बादल बिखरकर जाने कहाँ लुप्त हो गए।

एक अकल्पनीय आश्चर्य घटित हुआ एवं कुछ दिनों के अंतराल में महेन्द्र जी पहले की तरह स्वस्थ हो गए। उनके लिए ही नहीं पूरे परिवार के लिए यह घोर अचरज की बात थी।

कुछ लोग अपना कार्य ऐसे करते हैं मानो वे तपस्या, साधना कर रहे हो। उनका ध्यान आठ पहर चौंसठ घड़ी लक्ष्य पर होता है। कौशल से संयुक्त होकर श्रम अप्रत्याशित परिणाम भी देता है। साधना तब इबादत बन जाती है।

वीणा कुछ दिन इसी प्रकार आती रही। महेन्द्र जी में भी कुछ परिवर्तन आए, वे इन दिनों कम चिढ़ते एवं वीणा को वांछित सहयोग भी करते। सुर मिलने से ही कार्य गति पकड़ता है।

ठण्ड अब बढ़ने लगी थी। आज वीणा आई तो अन्य दिनों से भिन्न लग रही थी। वह नित्य सलवार-कुर्ता पहनती पर आज हल्के हरे रंग की सिल्क की साड़ी के ऊपर स्वेटर पहने खिल रही थी। साड़ी में उसका कद और ऊँचा लग रहा था। आँखों पर चमकती पलकें जिस पर आईशेडो लगी थी, आँखों की कोरों में हल्का काजल, कानों में मोती के बुंदे पहने वह गज़ब ढा रही थी।

'ओह, आज तो आप बहुत सुंदर लग रही हो।' कहते हुए महेन्द्र जी जाने किस लोक में खो गए। शायद उन्हें पत्नी की याद हो आई थी।

'जी, धन्यवाद। आज बहुत दिनों बाद साड़ी पहनने का दिल हो आया। जीवन में बदलाव न आए तो जीवन नीरस हो जाता है।' कहते हुए वीणा ने साड़ी का पल्लू अपनी कमर में खोंसा तो महेन्द्र जी की नजर उस ओर गई। मन ही मन सोचा, ओह! यह कितनी कमसिन है। झक दूधिया कमर, नख-शिख ऐसे दिखती है मानो हुस्नपरी हो। यही सोचते महेन्द्र जी की आँखों में एक विचित्र चमक उभर आई, एक ऐसी चमक जिसमें उगते सूर्य की लालिमा का हल्का प्रकाश था। उन्हें लगा जैसे बगीचे में यकायक एक नई कली चटकी हो।

वीणा ने गहराई से महेन्द्र जी की आँखों में देखा, आशा एवं उत्साह से भरी आँखें, यकायक उसे एक विचार कौंधा, यह एक अद्भुत नवीन प्रयोग था।

दूसरे दिन से कसरत के बाद वह हमेशा दस मिनट रुककर उनसे बतियाती, उन्हें उनके अच्छे दिनों की याद दिलाती, अनेक बार तो इतना सटकर बैठ जाती कि महेन्द्र जी भौंचक्के रह जाते। उसका सामीप्य, बिंदास हँसी एवं सम्मोहक व्यक्तित्व उनमें अजीब-सी स्फूर्ति भर देते। कुछ ही महिनों में वे वीणा से ऐसे बात करने लगे मानो वो उनकी अंतरंग सखी हो। धीरे-धीरे वह उनकी ऐसी विश्वासपात्र हो गई कि वे उसे अपने मन की वो बातें भी कहने लगे जो वे अपने परिवार वालों तक को नहीं कहते। बात करते हुए वे अनेक बार हकला जाते एवं उनके मुँह के कोने से लार गिरने लगती।

आज वीणा कमरे में आई तो बहुत खिली लग रही थी। वह नित्य दरवाजा बंद कर पलँग के पास खड़ी होकर कसरत करवाती लेकिन आज सीधे पलँग पर आकर बैठ गई। अब वो

अपने संकल्प को मूर्तरूप देने का सोचने लगी थी। यकायक उसने महेन्द्र जी के सिर पर हाथ रखा एवं धीरे-धीरे अपनी अँगुलियाँ उनके बालों में घुमाने लगी। अँगुलियाँ घुमाते हुए बोली, 'आपके बाल आज भी कितने घने, काले एवं रेशम जैसे कोमल हैं। इस उम्र में तो अच्छे-अच्छों के बाल सफेद हो जाते हैं। आप आज भी कितने रोमांटिक, युवा दिखते हैं। चलो! आज हम कोई कसरत नहीं करेंगे। आज कसरत की छुट्टी, आज बस बतियाएँगे।' कहते हुए उसने अपने हाथ महेन्द्र जी के दोनों गालों पर रखे एवं उन्हें इस तरह देखा जिस तरह देखने को मर्द प्रेम कहते हैं। यह एक अप्रत्याशित व्यवहार था। महेन्द्र जी के मस्तिष्क में मानो बिजली कौंधी, उन्होंने गौर से देखा, वीणा की आँखों में लाल डोरे तैर रहे थे। उस रात महेन्द्र जी की नींद उड़ गई। वीणा की आँखों, कोमल अँगुलियों एवं बेबाक हँसी का जादू उनके सर चढ़कर बोलने लगा। वे अनुभवी, पके चावल थे, उन्हें क्षणभर में समझ आ गया कि वीणा उन्हें मन ही मन चाहती है। ऐसी विद्वान, रूपसी एवं बिंदास स्त्री को प्रेम की पींगे बढ़ाते देख वे निहाल हो गए।

धीरे-धीरे महेन्द्र जी में आश्चर्यजनक परिवर्तन होने लगे। वे एक नए विश्वास, संकल्प एवं उत्साह से भर गए। वीणा नित्य आती, उनसे बतियाती, कुछ कसरत करवाती एवं जाते हुए ऐसी लजाई आँखों से देखती कि महेन्द्र जी का रोम-रोम खिल जाता। वे दिन-रात उसी की कल्पनाओं में खोए रहते। मन ही मन सोचते वीणा के रूप में सौभाग्य ने उनके द्वार पर दस्तक दी है, क्या ही अच्छा हो वे ठीक हो जाएँ एवं आगे बढ़कर वीणा को विवाह का प्रस्ताव दें। अब तो जमाना बदल गया है। ऐसे रिश्तों को परिवार भी अनुमत करने लगे हैं। इन्हीं हसीन कल्पनाओं के बीच उन्होंने अपनी टाँगों की ओर देखा जो निश्चेष्ट पड़ी थी। लेकिन यह क्या! आज उनकी टाँगें हिलने लगीं, उनका निश्चेष्ट हाथ भी यंत्रचालित-सा उनकी टाँगों तक जा पहुँचा। यह एक हिमखण्ड पिघलने जैसी बात थी।

प्रेम की गरमी एवं अहसासों की नमी से मनुष्य तो क्या पत्थर भी पिघल जाते हैं।

मावठ फिर आया। बादल फिर जम गए, लेकिन इस बार सूरज तन गया। सूरज ने ताप दिखाया तो बादल बिखरकर जाने कहाँ लुप्त हो गए।

एक अकल्पनीय आश्चर्य घटित हुआ एवं कुछ दिनों के अंतराल में महेन्द्र जी पहले की तरह स्वस्थ हो गए। उनके लिए ही नहीं पूरे परिवार के लिए यह घोर अचरज की बात थी।

आज वीणा कमरे में आई तो महेन्द्र जी ने उठकर उसका अभिवादन किया। उसे पलँग के किनारे पर बिठाकर बोले, 'वीणा! तुमने मेरा जीवन बदल दिया है। तुमने असंभव संभव कर दिखाया है। मैं हृदय से तुम्हारा कृतज्ञ हूँ, समझ नहीं आता इस अहसान का मूल्य कैसे चुकाऊँ?' इतना कहते हुए वे वीणा से लिपट गए, आँखों से भावनाओं का सैलाब उमड़ पड़ा। उनके कपोलों पर बहते आँसू उनकी मनोदशा का बयान कर रहे थे।

थोड़ी देर में संयत हुए तो बोले, 'वीणा! प्रेम की ताकत असीम है। प्रेम गूँगे को वाचाल एवं अपंग को भी अपूर्व शक्ति से भर देता है। तुमने यह सिद्ध कर दिखाया है।' यह कहते हुए उन्होंने मन की आखिरी गिरह भी खोल दी, 'वीणा! मैं तुम्हें मन ही मन चाहने लगा हूँ। आज मैं मेरे परिवार के आगे तुमसे विवाह का प्रस्ताव रखना चाहता हूँ।' महेन्द्र जी जानते थे वीणा इस प्रस्ताव पर कभी मना नहीं करेगी। उसके कठोर हालात, वैधव्य की पीड़ा अब उनसे छुपी नहीं थी।

लेकिन यह क्या! देखते ही देखते वीणा की आँखों से गंगा-जमुना बह निकली। महेन्द्र जी की ओर देखकर बोली, 'महेन्द्र जी! ऐसा तो मैं कभी सोच भी नहीं सकती। मि. चोपड़ा आज भी मेरे रोम-रोम में बसते हैं। वे इतने अच्छे, प्रेमिल पुरुष थे कि कोई अन्य मेरे जीवन में हो, यह कल्पना भी मेरे लिए असंभव है। प्रेम और कर्तव्य के लिए सर्वस्व त्याग का भाव मैंने उन्हीं से सीखा है। उनका प्रेम पल-पल मेरी साँसों में महकता है। मेरे हृदय-मंदिर में उसी देवता की मूरत है, मैं आज भी नित्य भाव-पुष्पों से उनकी पूजा करती हूँ।' फिर कुछ रुककर बोली', मि. महेन्द्र! आप बहुत जिंदादिल इंसान हैं। मुझे पूरा विश्वास है आप मेरी मजबूरी समझेंगे। मुझे यह भी भरोसा है कि अब से आप पीछे मुड़कर नहीं देखेंगे। मन में आशा, सकारात्मकता एवं स्थितियाँ बदलने का उत्कट भाव हो तो असंभव भी संभव बन जाता है। आपसे विदा चाहती हूँ, अब मैं यहाँ नहीं आ सकूँगी, मेरा कार्य पूर्ण हो गया है।'

इतना कहकर वह सर्र से कमरे से निकल गई।

आश्चर्यचकित महेन्द्र जी ने सामने लगी पत्नी की तस्वीर की ओर देखा और नजरें नीची कर लीं।

सी-136, प्रथम विस्तार,
कमला नेहरू नगर,
जोधपुर-342008 (राज.)

संजीवनी

- शीला मिश्रा

जन्म - 1 नवंबर 1959।
शिक्षा - स्नातकोत्तर।
रचनाएँ - एक कहानी संग्रह प्रकाशित।
सम्मान - साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, दुष्यंत कुमार पुरस्कार सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

घर में कदम रखते ही एक अजीब सी अनुभूति हुई। मातम सा पसरा हुआ था उस घर में। हालाँकि एक महीना बीत चुका था, किंतु वैसा ही गमगीन माहौल। गुड्डी मौसी आ कर बैठीं। हम-दोनों के मुख से शब्द नहीं निकल रहे थे। इतना बड़ा दुख अचानक इन लोगों पर टूट पड़ा, क्या पूछें, कैसे पूछें! कुछ देर यहाँ-वहाँ देखने के बाद इन्होंने ही पूछा-'मौसा जी कहाँ हैं।'

'तुम लोगों का इंतजार करते-करते अभी सोने के लिए गए हैं। घंटा भर सो लें फिर उठा दूँगी।'

'नहीं, नहीं ठीक है, सोने दीजिए।' शैलेश ने गंभीरता के साथ कहा।

मौसी ने मेरी तरफ देखते हुए धीरे से पूछा-'तुम लोग खाना खाओगे या फिर चाय बनवाऊँ?

शैलेश ने मेरी तरफ देखकर 'न' करने का इशारा किया। मैंने कहा 'मौसी कुछ नहीं, हम लोग खाना खाकर आ रहे हैं, हाँ थोड़ी-थोड़ी चाय पी लेंगे।' सफर की थकान थी, इसलिए चाय की तलब स्वाभाविक थी।

मौसी ने आवाज दी-'माया, इधर आओ। नेहा को मुझे दे दो और दो कप चाय बना लाओ।'

मौसी ने नेहा को गोदी में लिया, साल भर की मासूम टुकुर-टुकुर हमारी तरफ तकने लगी, मैंने मुस्कुराते हुए उसकी हथेलियों को स्पर्श किया तो वह हाथ छुड़ाकर मौसी से चिपक गई। वेदना के बादलों से आच्छादित मौसी उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगीं। बेचारी मासूम नहीं जानती अब वह बिन माँ की हो गई है और कितना बड़ा दुख है मौसी के लिए अपने को सँभालें, कि अपने बेटे को, या फिर अपनी पोती को। वह बच्ची तो अभी ठीक से जानती भी नहीं है कि हुआ क्या है! उसने फिर चेहरा घुमाया और अजनबी भाव से हमारी तरफ देखने लगी। मैंने बड़े प्यार से दोनों हाथ फैलाकर उससे कहा-'आ जा बेटा।'

यह सुनते ही उसने मुँह फेर लिया और ठुनकती हुई मौसी से चिपक गई। एक अनजाना सा भय व्याप्त था उसके चेहरे पर। मौसी उसको प्यार से अपने कंधे से लगाती हुई बोलीं-'कुछ डरी-डरी सी रहती है, हर समय माँ को ढूँढ़ती रहती है और नए लोगों को देखकर घबरा जाती है। क्या करें।'

मौसी के वेदनासिक्त स्वर के साथ ही बहुत समय से रोके गए अश्रु भी मानो बगावत कर बैठे और नैनों से अश्रु धारा बह निकली। तभी माया चाय की ट्रे लेकर कमरे में आई, टेबिल पर चाय-नाश्ता रख, मौसी की गोदी से नेहा को लेकर बाहर चली गई। कमरे में छाई उदासी भरी चुप्पी में सिर्फ चाय की सिप की आवाज शोर मचा रही थी।

चाय खत्म होते ही मौसी ने कहा-'तुम दोनों पीछे वाले कमरे में चले जाओ, थोड़ा आराम कर लो तब तक मौसा जी भी उठ जाएँगे।'

जब मेरी नींद खुली तो साढ़े पाँच बज रहे थे, मैं हड़बड़ाकर उठी, मुँह धो कर बाहर आई तो देखा सब चाय पी रहे हैं। मैं मौसा जी के चरण स्पर्श करके वहीं बैठ गई।

थोड़ी देर वहाँ सन्नाटा पसरा रहा फिर मौसा जी ने इनके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा-'चलो शैलेश, थोड़ा बाहर टहलकर आते हैं।'

मैं समझ गई, मेरे आने से उन दोनों की बातों में कुछ व्यवधान पड़ गया होगा। मौसा जी वैसे भी अपने दिल की बात इनसे

बहुत खुलकर करते हैं। रिश्ते में इनके मौसा जी जरूर हैं पर दोस्त से बढ़कर हैं। वे इनके पक्के दोस्त अनुज के बड़े भाई हैं। इन लोगों का बचपन साथ में गुजरा है, इसलिए रिश्ते से अधिक दोस्तों जैसे संबंध हैं।

'समझ में नहीं आ रहा है अच्छी खासी खुशहाल गृहस्थी थी नवीन व नमिता की। पता नहीं किसकी नजर लग गई। नमिता के आने के बाद तो नवीन का व्यापार भी बढ़ गया था और स्वयं नमिता अकाउंट का काम भी सँभालने लगी थी फिर पता नहीं अचानक क्या हुआ? लड़ाई तो हर पति-पत्नी में होती है पर ऐसे थोड़ी न कोई आत्महत्या कर लेता है।' मौसी ने रुँधे स्वर में कहा।

मैंने उनकी पीठ पर हाथ फेरते हुए उनको दिलासा दी, फिर धीमे में पूछा-'नवीन दिखाई नहीं दे रहा?'

मौसी ने अजीब सी नजरों से मेरी ओर देखा फिर नजरें झुकाकर अवरुद्ध कंठ से कहा-'बेचारे का तो जीवन ही बर्बाद हो गया।'

'थोड़ा समय तो लगेगा उसे सँभलने में आपको ही उसे सँभालना होगा।' मैंने मौसी से कहा अवश्य पर मेरी आँखें नवीन को ही खोज रहीं थीं। तभी माया आई और नेहा को मौसी की गोदी में देती हुए बोली-'इसकी खिचड़ी बन गई है, मैं लाकर देती हूँ, आप खिला दीजिएगा।' थोड़ी देर में वह कटोरी में खिचड़ी लाकर मौसी को दे गई। मौसी उसे बड़े प्यार से खिलाने लगीं।

जिज्ञासावश मैं भी अनुगामिनी बन चल पड़ी। एक घर के दरवाजे पर इनका मित्र अनुज खड़ा हुआ था। उसके साथ शैलेश घर के अंदर चले गए और उन दोनों के अंदर जाते ही दरवाजा बंद हो गया। अंदर से बात करने व खिलखिलाने की आवाजें आने लगीं। अनुज पंडित और ये, मेरा मन तुरन्त शंका के बादलों से घिर गया तभी एक विचार ने सिर उठाया कहीं यह पंडित नवीन तो नहीं! यह विचार आते ही मेरे दिल की धड़कनें बढ़ गईं। विचार को पुख्ता करनी के लिए दिमाग उसी तरफ दौड़ने लगा ओह तभी तो यह सामान लेकर। यहाँ पर, और और मौसी के यहाँ इनको लेकर जाना विचारों की कड़ी जुड़ते ही मेरा सिर चकराने लगा।

कुछ देर बाद शैलेश व मौसा जी वापिस लौटे। तनाव की रेखाओं से लिपटे दोनों के मुख चिंताग्रस्त थे। नेहा की खुशी से भरी किलकारी से वे दोनों कुछ सामान्य हुए।

कुछ देर बाद माया ने हम सब को खाना खाने बुलाया, सादा व स्वादिष्ट खाना हम सभी बिना एक शब्द बोले चुपचाप खाते रहे मानो डायनिंग हॉल में व्याप्त उदासी हम सबको खाने की प्रशंसा करने से भी रोक रही थी।

खाना खाकर मैं तो अपने कमरे में आ गई। सफर की थकान थी तो शीघ्र ही मेरी नींद लग गई। बहुत देर बाद कमरे में कुछ खटपट हुई तो बिना आँख खोले ही मैं समझ गई कि शैलेश अब सोने आए हैं।

सुबह बहुत जल्दी उठकर हम लोगों ने चाय-नाश्ता किया और वापिस घर के लिए निकल पड़े। पूरे रास्ते शैलेश मौन ही रहे पर उस मौन के अंदर छुपी जो छटपटाहट थी, पीड़ा थी वह मैं स्पष्ट महसूस कर रही थी। मैंने इस समय कुछ भी पूछना उचित नहीं समझा। नहीं तो ड्राइविंग पर उसका असर पड़ता।

घर वापस आकर मैं तो अपने काम में जुट गई पर शैलेश लगातार फोन पर किसी से बात कर रहे थे, उड़ते-उड़ते कुछ शब्द मेरे कानों में भी पड़ जाते, जो मुझे बेचैन कर रहे थे, कभी पुलिस सुनाई पड़ता तो कभी कोर्ट आखिर बात क्या है? मन कुछ शंकालु-सा हो आया।

शाम को चाय पीते वक्त मैंने शैलेश से पूछा-'जब से हम वहाँ से लौटे हैं, आप कुछ परेशान से हो। कुछ बात हो तो मुझे भी बताओ।'

'कैसे बताऊँ कोई एक परेशानी थोड़ी ही है मौसी-मौसा जी की उन पर तो मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा है। शैलेश बहुत उदास स्वर में बोले।

'हाँ, मुझे भी वे दोनों बहुत परेशान से लग रहे थे। नमिता की आत्महत्या के अलावा भी कुछ है क्या?'

'हाँ है तो, मौसा जी ने बताया है पर मेरी एक शर्त है यह बात हम दोनों तक ही रहेगी। किसी को भी नहीं बताना किसी को मतलब किसी को भी नही।' शैलेश ने मेरी आँखों में आँखें डालकर कहा।

मैंने धीरे से सिर हिला कर शैलेश की तरफ देखा। वे अत्यन्त धीमे व दुख भरे स्वर में बोले-'नमिता के घर वालों ने नवीन पर नमिता को आत्महत्या के लिए उकसाने का आरोप लगाया है। यह केस दर्ज होते ही नवीन गायब हो गया है।'

'गायब मतलब?' मैंने बहुत विस्मित स्वर में पूछा।

शैलेश मेरे और नजदीक आकर बोले-'सबको बताने के लिए तो गायब है परन्तु मौसा जी को पता है कि वह कहाँ है। वे उसका पूरा ध्यान रख रहे हैं।'

मेरे पूरे शरीर में घबराहट के मारे फुरफुरी-सी दौड़ गई और मैं आँखें फाड़े शैलेश को ही देखे जा रही थी।

मेरी मुख को सवालों से भरा देख शैलेश ने कहा-'बस इसके आगे कुछ मत पूछना, समय आने पर सब बताऊँगा।'

शैलेश से मिली आधी-अधूरी जानकारी मुझे जब-तब बेचैन करती और न जाने कितने प्रश्न मन में उमड़ते-घुमड़ते रहते नमिता ने आत्महत्या क्यों की? नमिता के घरवालों ने नवीन पर यह आरोप क्यों लगाया? नवीन कहाँ है? जरूर कुछ है, जो शैलेश जानते हैं पर मुझे नहीं बता रहे।

चार महीने बीत गए। इस बीच शैलेश दो बार मौसी के पास हो आए। साथ में किसी पंडित को भी ले गए थे। कह रहे थे कि सिद्ध पंडित है। शायद इनकी पूजा-पाठ से नवीन का केस सुलझ जाए।

सावन का तीसरा सोमवार प्रत्येक वर्ष की तरह इस वर्ष भी आज के दिन घर पर शिव जी का अभिषेक हो रहा था। चार पंडित मंत्रोच्चार के साथ पूजा संपन्न करवा रहे थे। आरती के बाद मैं पंडितों के भोजन की व्यवस्था देखने में जुट गई। भोजन के पश्चात् सब पंडित दक्षिणा लेकर जाने के लिए बाहर निकले तभी नीले कुर्ते वाले पंडित जी अचानक रुककर शैलेश से बात करने लगे। जब बहुत देर हो गई तो मैं शैलेश को बुलाने बाहर आई क्योंकि सब खाने पर उनका इंतजार कर रहे थे किन्तु मुझे देखते ही वे दोनों चुप हो गए। मैंने ध्यान से देखा तो ऐसा लगा कि इन पंडित जी को मैंने पहले भी कहीं देखा है।

जब शाम को हम चाय पीने बैठे तो मैंने शैलेश से कहा-'वो नीले कुर्ते वाले पंडित जी कुछ देखे हुए से लग रहे थे, ये हर साल आते हैं क्या?'

'पिछले साल से आ रहे हैं। इन्हीं को तो मैं मौसी के यहाँ ले जाता हूँ पूजा करवाने।' शैलेश ने इत्मीनान से कहा।

पता नहीं क्यों मेरे दिमाग में कुछ शक-सा पैदा हो गया। इतनी दूर से भला पंडित ले जाने की क्या जरूरत है और उन पंडित को जिन्हें हम स्वयं केवल एक-डेढ़ साल से ही जानते हैं।

करीब महीने भर बाद मंदिर में अखंड रामायण चल रही थी, वहीं सुनने मैं अपनी सहेली के साथ गई थी। करीब दो घंटे बाद मैं अकेली ही जैसे वापिस लौटने को हुई तो देखा कि शैलेश हाथ में काफी सारा सामान लिए मंदिर के पीछे जो तीन-चार घर बने हैं, उस तरफ जा रहे हैं। मैं अचरज में पड़ गई यह सामान किसके लिए और क्यों? और फिर यहाँ आना ही था तो फिर मुझे क्यों नहीं बताया? जिज्ञासावश मैं भी अनुगामिनी बन चल पड़ी। एक घर के दरवाजे पर इनका मित्र अनुज खड़ा हुआ था। उसके साथ शैलेश घर के अंदर चले गए और उन दोनों के अंदर जाते ही दरवाजा बंद हो गया। अंदर से बात करने व खिलखिलाने की आवाजें आने लगीं। अनुज पंडित और ये, मेरा मन तुरन्त शंका के बादलों से घिर गया तभी एक विचार ने सिर उठाया कहीं यह पंडित नवीन तो नहीं! यह विचार आते ही मेरे दिल की धड़कनें बढ़ गईं। विचार को पुख्ता करनी के लिए दिमाग उसी तरफ दौड़ने लगा ओह तभी तो यह सामान लेकर। यहाँ पर, और और मौसी के यहाँ इनको लेकर जाना विचारों की कड़ी जुड़ते ही मेरा सिर चकराने लगा। किसी तरह अपने आप को सँभालती घर लौटी।

शैलेश के घर लौटते ही मैंने उन पर प्रश्नों की बौछार कर दी। सुनकर पहले तो वे बौखला से गए फिर संयमित होकर बोले-'मैं कोई गुनाह नहीं कर रहा हूँ बल्कि एक बेगुनाह को बचाने की कोशिश कर रहा हूँ। आत्महत्या करने वाला तो आनन-फानन में चला जाता है परन्तु अपने पीछे सारे परिवार को जिंदगी भर कोर्ट-कचहरी में उलझा जाता है। इस उम्र में बुजुर्ग अपने को सँभालें, पोते-पोती को सँभालें या कोर्ट के चक्कर लगाए! जरा सी बहसबाजी में लड़कियाँ ऐसे कदम उठा तो लेती हैं लेकिन परिवार के लोग नरक जैसी यंत्रणा को भोगते हैं। इस मानसिक व शारीरिक व्यथा का हमने यही तोड़ निकाला है। हमारी न्याय व्यवस्था इतनी मंथर गति से चलती है कि ईमानदार व्यक्ति जीते जी मृत अवस्था में ही गुजर-बसर करता है। बताओ क्या गलत कर रहा हूँ मौसा जी, मौसी जी व बेचारे नवीन को संजीवनी बनकर सँभाल ही तो रहा हूँ।'

मैं बुत बनी बैठी रही और शैलेश उठकर चले गए। सारा दिन यही सोचते हुए मैं बेचैन रही कि क्या शैलेश संजीवनी बनकर ठीक कर रहे हैं।

बी-4, सेक्टर-2, रॉयल रेसीडेंसी,
शाहपुरा थाने के पास,
बावड़ियाँ कलां, भोपाल-462039 (म.प्र.)
मो.- 9977655565

रविकांत की मौत

– अरुण अर्णव खरे

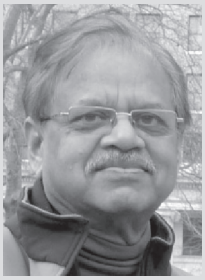

जन्म – 24 मई 1956 ।
शिक्षा – मैकेनिकल इंजीनियरिंग में स्नातक।
रचनाएँ – दस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – अखिल भारतीय भाषा साहित्य सम्मेलन सहित अनेक सम्मान।

रविकांत की आकस्मिक मृत्यु का मैसेज पढ़ते ही कार्तिक शर्मा को अपनी सारी संज्ञाएँ शिथिल पड़ती प्रतीत हुईं। वह किंकर्तव्यविमूढ़ स्थिति में कुर्सी पर ही अपने दोनों हाथों से सिर को पकड़ कर फैल गया। पास बैठे सहकर्मी मानवजीत ने उसे देखा तो उठकर पास आ गया और कंधे पर हाथ रखते हुए बोला–'तुम ठीक तो हो।' कार्तिक ने स्वयं को सँभालने की कोशिश की किंतु बड़ी मुश्किल से कह पाया–'मानव, मेरा छोटा भाई नहीं रहा, प्लीज भोपाल जाने के लिए हम तीनों, मेरा, सरला और नैवेद्य का तुरंत किसी फ्लाइट से टिकट बुक करा दो।'

बैंगलुरु से भोपाल के लिए पहली उपलब्ध फ्लाइट मुम्बई होकर रात को ग्यारह बजे थी। मानवजीत ने उसी फ्लाइट से तीनों के टिकट बुक करा दिए। कार्तिक समय से काफी पहले ही सरला और नैवेद्य को लेकर एयरपोर्ट पहुँच गया। हर पल उसे काट रहा था, जितनी जल्दी हो सके वह अपने गाँव भानपुर पहुँच जाना चाहता था। हर पाँच मिनट में वह घड़ी की ओर देखता और उसकी सुस्त चाल देखकर मन ही मन खीझ उठता।

रविकांत कार्तिक का चचेरा भाई था लेकिन वह बचपन से ही कार्तिक के साथ रहा था अतएव दोनों के बीच रिश्ता सगे भाईयों से भी बढ़कर था। रविकांत जब सात साल का था तभी चाचा उसे पढ़ने के लिए गाँव से शहर में उन लोगों के पास छोड़ गए थे। चाचा गाँव में खेती–बाड़ी का काम देखते थे। गाँव में ढंग का स्कूल भी नहीं था। रविकांत पढ़ने में पिछड़ रहा था। कार्तिक के पिता जी पी. डब्ल्यू. डी. में सब इंजीनियर थे और सागर में रहते थे। रविकांत के आने से कार्तिक, छोटा भाई सौरभ तथा बहिन वर्तिका बहुत खुश हुए थे।

रविकांत कार्तिक से दो साल छोटा था और सौरभ से केवल ग्यारह दिन बड़ा था। वर्तिका सबसे बड़ी थी। हम उम्र होने के कारण जब–तब सौरभ और रविकांत में बात–बेबात लड़ाई होती रहती, तब कार्तिक को ही दोनों के बीच सुलह करानी पड़ती। वह दोनों को अपने पास बैठाकर प्यार से समझाता। रविकांत गाँव से आया था, शुरू में उसे शहरी तौर–तरीकों से बोलने और उठने–बैठने का सलीका नहीं आता था। सौरभ के दोस्त उससे दूरी बना कर रखते। रविकांत को बुरा लगता और दोनों इसी बात को लेकर भिड़ जाते। दोनों के बीच लड़ाई के अनेक दूसरे कारण भी होते। जैसे कभी–कभी जब दोनों लूडो अथवा साँप–सीढ़ी खेलने बैठते और सौरभ बेईमानी कर जीतने की कोशिश करता, तब रविकांत 'नहीं खेलना तुझ जैसे रोंगट्टे के साथ' कहते हुए बीच में ही खेलना छोड़ देता। फिर क्या था, दोनों में तू–तू मैं–मैं होने लगती, कभी–कभी हाथापाई भी हो जाती। हार अक्सर रविकांत की होती, फिर वह कमरे में जाकर देर तक सुबकता रहता। वर्तिका दीदी सौरभ को डाँटतीं, सौरभ को भी अपनी गलती का अहसास हो जाता और फिर वह स्वयं ही रविकांत के पास जाकर अपनी छोटी अँगुली से उसकी छोटी अँगुली मिलाकर मिट्ठी कर लेता।

एयरपोर्ट पर फ्लाइट के इंतजार में बैठे कार्तिक का मन रविकांत के बचपन की सुधियों में खोया हुआ था। उसके मस्तिष्क में स्मृति–चित्रों की जैसे कोई फिल्म चल रही थी। रविकांत के साथ व्यतीत किए गए दिनों की हर छोटी–बड़ी घटना उसकी चेतना को झकझोर रही थी। वह रोना चाहता था लेकिन बड़ी मुश्किल से अपने आँसुओं के सैलाब को बाँध तोड़ कर बह जाने से रोके हुए था। नैवेद्य सरला की गोदी में रोते–रोते सो गया था। उसे सरला ने बड़ी मुश्किल से रागी और वैफर्स खिलाकर सुलाया था। उन दोनों ने तो दोपहर से कुछ भी नहीं खाया था।

'कार्तिक, आप धीरज रखिए आपकी व्यग्रता मुझे भी व्यथित कर रही है। एक बार आप गाँव में चाचा जी से भी बात कर लीजिए, मन हल्का हो जाएगा।' सरला ने कार्तिक की ओर कातर निगाहों से देखते हुए कहा।

'नहीं सरला, मैं क्या कहूँगा उनसे शांत हो जाइए, रोइए नहीं क्या हुआ यदि रविकांत नहीं रहा। मैं नहीं बात कर पाऊँगा उनसे'– कार्तिक की आवाज भर्राने लगी। उसकी वाणी में लिपटी पीड़ा ने सरला की आँखों को भी झील में तब्दील कर दिया।

'ठीक है, मैं समझ सकती हूँ बात मत कीजिए लेकिन सँभालिए अपने को। अच्छा चलिए, उठिए एक–एक कप चाय पीकर आते हैं। आप कुछ खा भी लीजिए, भूखे रहेंगे तो एसिडिटी बढ़ जाएगी।'–सरला रुक–रुक कर बोली। वह चाहती थी कि इसी बहाने कार्तिक थोड़ी चहलकदमी कर लेंगे और विषाद के अपने खोल से बाहर निकलने का प्रयास करेंगे।

'तुम बैठो, नैवेद्य जाग जाएगा। मैं तुम्हारे लिए भी चाय और कुछ स्नैक्स लेकर आता हूँ।'– कार्तिक ने कहा और स्नैक्स पार्लर की ओर चल दिया।

'आपके कहने से पर आपने ऐसा करने को कहा क्यों।'- कार्तिक के अंदर का गुस्सा उसके शब्दों में झलक आया था। सरला ने आश्चर्य से कार्तिक की ओर देखा और आँखों ही आँखों में स्वयं पर नियंत्रण रखने का अनुरोध किया। कार्तिक को लगा वह धड़ाम से आसमान से जमीन पर आ गिरा है। चाची को उन्हें बुलाना ही था तो सीधे-सीधे बोल कर बुला लेतीं, ऐसा वाहियात मैसेज भेजकर बुलाने की क्या जरूरत थी। ऐसा करके उन्होंने कितना मानसिक संताप दिया है उसे, नहीं समझेंगी चाची। कार्तिक खुद को बुरी तरह छला गया महसूस कर रहा था।

चाय पीते हुए भी कार्तिक अपने आंतरिक ऊहापोह में ही फँसा रहा। सरला ने उसका ध्यान भटकाने के लिए कई बार बात करनी चाही पर उसने हाँ, हूँ के अतिरिक्त कोई उत्तर नहीं दिया। वह रविकांत की यादों से बाहर निकलना ही नहीं चाह रहा था।

रविकांत आठवीं में मात्र 52 प्रतिशत अंक ही ला सका था। पापा ने उसे बहुत डाँटा था। एक कार्तिक ही था जिसने उसे हिम्मत बँधाई थी और हर दिन एक–दो घंटे पढ़ाने का जिम्मा लिया था। उसकी और रविकांत की मेहनत रंग लाई थी। नौवीं में रविकांत फर्स्ट आया था तथा दसवीं में तो उसे तीन विषयों में डिस्टिंक्शन मिला था। सौरभ और रविकांत में झगड़े तब भी होते रहते थे लेकिन सुलह भी दोनों में शीघ्र हो जाती। कार्तिक को याद आया जब एक बार दोनों में झगड़ा हुआ था तो कई दिनों तक दोनों ने एक–दूसरे से बात नहीं की थी। रविकांत को माचिस की खाली डिब्बियाँ और सिगरेट के पैकेट के रैपर इकट्ठे करने का शौक था। सौरभ को उसका कलेक्शन देख कर ईर्ष्या होती थी यद्यपि सौरभ के पास भी पोस्टल स्टैंप्स का अच्छा खासा कलेक्शन था जिसे देख कर रविकांत का मन भी ललचाता था। एक दिन सौरभ ने मौका पाकर रविकांत के कुछ रैपर ले लिए। बाद में जब रविकांत ने अपना कलेक्शन चेक किया तो वह तुरंत समझ गया कि किसने उसके रैपर लिए हैं। उसने भी सौरभ के एलबम से कुछ स्टैंप्स निकाल लिए। इसके बाद तो दोनों में जमकर हाथापाई हुई थी, वर्तिका दीदी भी दोनों को रोक नहीं सकी थीं। कार्तिक ने किसी तरह रविकांत को शांत कराया था।

गाँव से चाचा–चाची लगभग हर माह दो–तीन दिनों के लिए रविकांत से मिलने शहर आते रहते थे। रविकांत की पढ़ाई–लिखाई से वे संतुष्ट थे। उनकी इच्छा थी कि रविकांत बारहवीं पास करने के बाद उनके साथ गाँव में ही रहे और खेती–बाड़ी के कामों मे उनका हाथ बँटाए। रविकांत उनकी इकलौती संतान था लेकिन रविकांत आगे पढ़ना चहता था। कार्तिक भी चाहता था कि रविकांत अपनी पढ़ाई जारी रखे। आश्चर्य की बात कि सौरभ भी नहीं चाहता था कि रविकांत पढ़ाई बीच में छोड़ कर गाँव चला जाए। अंत में पापा ने सब अच्छे से सँभाल लिया था।

12वीं पास करते ही कार्तिक बी.बी.ए. करने नोएडा आ गया था। बाद में सौरभ का एडमीशन भी पुणे के इंजीनियरिंग कॉलेज में हो गया था और रविकांत भी बी.एस.सी. (एग्रीकल्चर) करने जबलपुर चला गया। रविकांत के आगे पढ़ने के निर्णय से सबसे ज्यादा खुशी कार्तिक को हुई थी। यद्यपि पापा ने ही चाचा को समझा कर रविकांत को जबलपुर भेजा था।

रविकांत से कार्तिक की अगली मुलाकात डेढ़ वर्ष पश्चात् वर्तिका दी की शादी में हुई थी। उसने शादी की व्यवस्था की सारी जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठा रखी थी। वह बहुत बड़ा हो गया था बिल्कुल घर के दूसरे बुजुर्गों की तरह। उसकी बातचीत के लहजे में भी बुजुर्गियत झलकने लगी थी। समय से पहले ही रविकांत का यूँ बड़ा हो जाना कार्तिक को अच्छा नहीं लगा था। सौरभ तो तब तक वैसा ही बेपरवाह और बिंदास था।

वर्तिका दीदी की शादी के चार माह पश्चात् ही परिवार पर दुखों का पहाड़ टूट पड़ा। तीर्थ–यात्रा पर केदारनाथ गए मम्मी–पापा वहाँ से लौट कर ही नहीं आए, आई तो उनकी मौत की खबर आई। दाह–संस्कार हेतु उनके मृत शरीर भी नहीं मिल सके।

बेटी को विदा करने के बाद मम्मी की बड़ी इच्छा थी किसी तीर्थस्थान पर जाने की। अचानक मिले इस सदमे से उबर पाना किसी के लिए आसान नहीं था। बी. बी. ए. करने के बाद कार्तिक एम. बी. ए. कर रहा था उस समय। पूरा एक साल बाकी था, डिग्री हासिल करने के लिए। सौरभ का तो इंजीनियरिंग का दूसरा ही साल था। दोनों को अपना भविष्य अंधकारमय लगने लगा था। कार्तिक के मन में तरह-तरह के विचार आने लगे थे। उनसे से एक यह भी था कि वह पढ़ाई छोड़ कर अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन दे देगा और सौरभ की पढ़ाई में अवरोध नहीं आने देगा। चाचा को पता चला तो वह नाराज हुए। उन्होंने खेत का एक छोटा सा टुकड़ा बेचकर कार्तिक और सौरभ की पढ़ाई जारी रखने की व्यवस्था की। यह तो उन्हें बहुत बाद में पता चला कि उनकी पढ़ाई के लिए रविकांत ने बहुत बड़ा बलिदान दिया था। उसने चाचा को उनकी इच्छा की याद दिला कर अपनी पढ़ाई बीच में छोड़ दी थी और खेती-बाड़ी के कामों में चाचा का हाथ बँटाने लगा था। इस घटना की याद आते ही कार्तिक की आँखें भर आईं और रुके हुए आँसू अंततः ढुलक ही पड़े।

फ्लाइट की बोर्डिंग का समय हो चुका था। कार्तिक ने नैवेद्य को गोदी में उठाया और एयरोब्रिज से होते हुए विमान में बैठ गया। उसके विचारों की शृंखला केवल उतनी देर के लिए ही बाधित हुई, जितनी देर उसे बोर्डिंग पास दिखाने से लेकर निर्धारित सीट पर बैठने में लगी। विमान में बैठते ही वह फिर यादों की खोह में घुस गया और पूरे सफर के दौरान चुपचाप बैठा रहा।

मुम्बई में लगभग दो घंटे रुकने के बाद तीनों अगली फ्लाइट पकड़ कर रात में चार बजे भोपाल पहुँचे। कार्तिक के कहने पर मानवजीत ने पहले ही गाँव जाने के लिए टैक्सी बुक कर दी थी। भोपाल से गाँव तक का सफर लगभग तीन घंटे का था। जैसे-जैसे उसका गाँव पास आता जा रहा था कार्तिक के हृदय की धड़कनें बेकाबू होने लगीं, आँखों से आँसू बाहर आने के लिए बेताब हुए जा रहे थे। सरला ने उसे रुमाल दिया, कार्तिक ने डबडबाई आँखों से उसकी ओर देखा और रुमाल लेकर चेहरे को पोंछते हुए बोला-'अब तक तो सभी रिश्तेदार भी गाँव पहुँच चुके होंगे, सभी उनका ही इंतजार कर रहे होंगे। चाचा-चाची तो देखते ही लिपट जाएँगे, रो-रोकर उनका तो बुरा हाल हो चुका होगा। कैसे सामना करेगा उनका क्या कहेगा उनसे कैसे ढाढ़स बँधाएगा उन्हें? बुढ़ापे के दिनों में कैसा दुखों का पहाड़ टूट पड़ा है उन पर।'

'आप धीरज रखिए, आप सबसे बड़े हैं अब परिवार में, इतने व्यथित रहेंगे तो चाचा-चाची को कैसे सहारा देंगे।'-सरला ने कार्तिक के सिर को सहारा देते हुए शांत स्वर में कहा।

कार्तिक ने कोई उत्तर नहीं दिया। टैक्सी जब चाचा के घर के सामने रुकी तो वहाँ का नजारा देखकर सभी आवाक रह गए, कोई भीड़-भाड़ नहीं, कोई अफरा-तफरी नहीं, रोने-धोने की आवाज भी नहीं, किसी तरह के गम का चिन्ह नहीं। धड़कते दिल और तेज कदमों से कार्तिक घर के अंदर प्रविष्ट हुआ। पौर पार करते ही आँगन में चाची उसे साबूदाने के पापड़ चादर से निकालते दिखीं। चाची ने उन लोगों को देखा तो लगभग दौड़ते हुए उनके पास आईं-'अरे बबुआ आ गए तुम बहुरिया भी आई है तुम सब वहीं ड्योढ़ी पर रुको बिट्टू पहली बार गाँव आओ है ऊकी आरती उतारने है'-कहते हुए खुशी के अतिरेक में चाची उतनी ही तेजी से चौके की ओर लपकीं। कार्तिक और सरला हतप्रभ खड़े अविश्वास से चाची को देखे जा रहे थे, उन्हें कुछ समझ में नहीं आ रहा था। चाची की हड़बड़ाहट और खुशी देख कर दोनों असमंजस में जरूर थे लेकिन उनके क्लांत हृदय की व्यथा कम होने लगी थी, उनकी आँखों से बहने को आतुर अश्रु सूखने लगे थे। अब उन्हें दूसरा प्रश्न परेशान कर रहा था-'रविकांत है कहाँ चाचा भी दिखाई नहीं दे रहे हैं। कोई रिश्तेदार भी नजर नहीं आ रहा है तो क्या किसी ने रविकांत की मौत की झूठी खबर दी उन्हें, पर किसने ऐसी घृणित शरारत की? लेकिन ऐसा कैसे हो सकता है? चाचा के नंबर से ही रविकांत की मौत का संदेश मिला था उनको किसने की है। चाचा के मोबाइल से ऐसी छेड़छाड़? उसे पता लग जाए तो वह छोड़ेगा नहीं कितनी पीड़ा सही है, उन लोगों ने पिछले 20-22 घंटों में।' कार्तिक सच जानने को उतावला हुआ जा रहा था, उसका मन पुनः अशांत होने लगा था।

'रविकांत कहाँ गया है चाची'-कार्तिक ने आरती की थाली लेकर आती हुई चाची से पूछा।

'वो डूटी पर गओ है, कछू जरूरी काम से, तीन बजे तक आ जैहे'-चाची उत्तर में बोलीं।

'वह ठीक तो है, उसे कुछ हुआ तो नहीं'-साफ-साफ पूछने में कार्तिक को झिझक महसूस हो रही थी।

'अरे नईं बबुआ, वो बिल्कुल भलो चंगो है। ऊकी महरारू अबईं परों मायके गई है। सोनी के होवे के बाद गई नईं थी अब

तक।'–कार्तिक के मानसिक उथल–पुथल से अनभिज्ञ चाची ने सहज भाव से उत्तर दिया। चाची की बातों से कार्तिक को इतना भरोसा तो हो गया था कि रविकांत सकुशल है लेकिन उसकी उत्सुकता शांत नहीं हुई थी। वह आँगन में पड़ी चारपाई पर बैठ गया। सरला चौके में चाची का हाथ बँटाने चली गईं। थोड़ी देर में चाची चाय और बेसन के लड्डू लेकर आईं और कार्तिक के पास जमीन पर बैठ गईं।

'बहुत दुबरा गए हो बबुआ इतना ज्यादा काम मती किया करो बहू, तुम भी ध्यान दिया करो, देखो कैसो चेहरा हो गओ है।'

सरला क्या जवाब देती, कैसे कहती 'जबसे देवर जी की मौत की खबर सुनी है तबसे क्या–क्या बीती है उन पर अर्द्धविच्छिप्त हो गए थे जैसे अब थोड़ा सहज दिख रहे हैं।'

'चाची'–संबोधित कर कार्तिक रुक गया और सही शब्द तलाश करने लगा कि कैसे चाची से अपने मन में चल रहे असमंजस को व्यक्त करे–'रविकांत के बारे में कल चाचा की खबर आई थी। लगता है उनके फोन से किसी ने मजाक किया था।'

'अरे नईं, वो खबर तो चाचा ने ही दई हती हमाए कहबे से।'–चाची बोली।

'आपके कहने से पर आपने ऐसा करने को कहा क्यों।'–कार्तिक के अंदर का गुस्सा उसके शब्दों में झलक आया था। सरला ने आश्चर्य से कार्तिक की ओर देखा और आँखों ही आँखों में स्वयं पर नियंत्रण रखने का अनुरोध किया। कार्तिक को लगा वह धड़ाम से आसमान से जमीन पर आ गिरा है। चाची को उन्हें बुलाना ही था तो सीधे–सीधे बोल कर बुला लेतीं, ऐसा वाहियात मैसेज भेजकर बुलाने की क्या जरूरत थी। ऐसा करके उन्होंने कितना मानसिक संताप दिया है उसे, नहीं समझेंगी चाची। कार्तिक खुद को बुरी तरह छला गया महसूस कर रहा था। रविकांत की मौत की खबर से उसका मन कितना विह्वल था कि सिर फटने को करने लगा था, अब उसका मन सिर धुनने का हो रहा था।

'भैया, आप कमाल हो, मुझे शर्त में हरवा दिया न आप तो सचमुच में हमसे पहले पहुँच गए।'–यह सौरभ की आवाज थी जो अभी–अभी अंदर आया था और कार्तिक को देखकर उससे गले लगने उसकी ओर लपक कर चला आ रहा था। पत्नी सीमा और वर्तिका दीदी भी उसके साथ आईं थीं। थोड़ी ही देर में रविकांत के मामा और मौसी भी आ गए।

'मेरे कारण कौन सी शर्त हार गए तुम।'–कार्तिक ने सौरभ से पूछा।

'वर्तिका दीदी कह रहीं थी कि देखना सबसे पहले कार्तिक ही पहुँचेगा लेकिन मैं उनकी बात से सहमत नहीं था। सो उनसे शर्त लगा ली अब शर्त हार गया न आपके कारण।'–सौरभ ठिठोली करते हुए बोला।

'क्या तुम्हें मैसेज पढ़कर दुख नहीं हुआ था जो शर्त–शर्त खेलते हुए चले आ रहे हो।'–कार्तिक थोड़े गुस्से से बोला।

'दुख की बात थी तो दुख तो होना ही था, रोया भी खूब फिर वर्तिका दीदी से बात की, उनका भी रो–रोकर बुरा हाल था। फिर सोचा जब हमारा ये हाल है तो चाचा–चाची पर क्या गुजर रही होगी? सीमा के कहने पर चाचा को फोन लगा लिया और हमें सारी वस्तुस्थिति पता चल गई।'–सौरभ ने कहा–'वर्तिका दीदी को बताया तो उन्होंने कहा, हमने चलने की तैयारी कर ही ली है तो चलते हैं चाचा–चाची से मिलने, कार्तिक भैया से भी मुलाकात हो जाएगी।'

'क्या कहा था चाचा ने।'–कार्तिक ने उतावलेपन से पूछा।

जवाब चाची ने दिया–'कल सबेरे–सबेरे जब रबी अपनी डूटी पर जा रओ तो ऊने कौए के ऊपर कौआ बैठो देख लओ हतो सबेरे–सबेरे इतनो अशुभ हमई ने चाचा से कहके सभी नाते–रिश्तेदारों को खबर कराई ती कि लोग रो–धो के शोक मना लें तो अशुभ टल जैहे।'–कहते–कहते चाची की आँखें नम हो गईं– 'बबुआ, हमाए बुंदेलखंड में कौए के ऊपर कौआ खों बैठो देखवो बहुत बड़ो अशुभ मानो जात है, देखवे वाले की अकाल मर्तू तक हो जात है। परके साल ही गोकूल कक्का को नाती ऐई कारन चल बसो हतो। गाँव के भजनलाल पंडित और रामरतन गुनिया ने जैई जतन बताओ हतो कि नजदीकी नाते–रिस्तेदार रविकांत की मर्तू को शोक मना लेहें तो बिपती टल जैहे, नईं तो अनहोनी होके रैहे अब तुमईं बताओ बबुआ हम का करते देखो बिपदा टल गई कि नईं।'

कार्तिक कुछ नहीं बोल सका। चाची के भोलेपन ने उसके मन को भीतर तक भिगो दिया था। उसका सारा गुस्सा हवा हो चुका था।

डी–1/35 दानिश नगर,
होशंगबाद रोड,
भोपाल–462026 (म.प्र.)
मो.– 9893007744

भाग्य

– दिनेश प्रताप सिंह 'चित्रेश'

जन्म – 1 मार्च, 1954।
जन्मस्थान – जासापारा, सुल्तानपुर (उ.प्र.)।
शिक्षा – स्नातक।
रचनाएँ – तीन पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – अवध साहित्य अकादमी प्रयागराज (उ.प्र.) से 'साहित्य शिरोमणि' सम्मान।

नाथद्वारा की वह ठंडी रात शिवनारायण के लिए भारी पड़ गई थी। कई करवटें बदलीं, आँख मूँदकर लेटे रहे कि अब नींद आ जाए। पर कोई हिकमत काम नहीं आ रही थी। नींद उनसे रूठकर कहीं दूर जा बैठी थी!

वह यहाँ एक साहित्यिक कार्यक्रम में आए थे। आठ बजे के करीब कार्यक्रम के बुफे स्टाल पर उन्होंने भोजन किया, फिर मंदिर वाले चौराहे से गर्म दूध पीकर अपने रूम में आ गए थे। कड़ाके की ठण्ड देखते हुए उन्होंने पैरों में मोजे चढ़ा लिए थे और हाथों में दस्ताने! अपना कंबल ओढ़ने के बाद उन्होंने गेस्ट हाउस की रजाई भी अपने ऊपर खींच ली थी। पाँच-सात मिनट में ऐसी गर्माहट आ गई कि आँखें खुद ब खुद निंदिया मूँदने लगीं मगर तभी मोबाइल का रिंगटोन बज उठी–'अरे द्वारपालों।'

नींद की शुरुआत में खलल पड़ने की गहरी खिन्नता के साथ उन्होंने मोबाइल उठाकर देखा तो पत्नी का फोन था। झल्लाहट के साथ पूछा–'अब क्या हो गया? अभी शाम को तो बात हुई थी।'

'हाँ, तब याद नहीं पड़ा। आज रमाकांत की बरसी है। उनके लड़के नृपेन्द्र ने बड़े धूमधाम वाला आयोजन किया है।' पत्नी ने बताया–'संयोग देखो कि आज अपने चारों घर में कोई उनके यहाँ जाने वाला ही नहीं है।'

'नहीं है तो न सही। आज के भाग-दौड़ वाले समय में यह कोई बड़ी बात नहीं है।' पत्नी की बात काटते हुए शिवनारायण ने कहा–'सवेरे नृपेन्द्र से बात करके मैं स्थिति स्पष्ट कर दूँगा। बस इतना समझ लो, यह जो मृत्यु से जुड़े आयोजन हैं, इनके लिए धूमधाम, भव्य जैसे विशेषण नहीं लगाए जाते हैं। मास्टरनी हो, इसका तो ध्यान रखा करो।'

बुझी सी हँसी के साथ पत्नी ने फोन काट दिया। उसने दोबारा सोने के लिए आँख मूँद ली। लेकिन नींद की जगह आँखों में पुराने दिनों की छवियाँ उमड़ने-घुमड़ने लगीं। रमाकांत उसके ही कुल का था। शिवनारायण उससे एक साल बड़े थे, बाकी दोनों साथ पढ़ते थे। एक छोटा सा रिश्ता भी था। शिवनारायण की जो भाभी थीं, उनकी बड़ी बहन रमाकांत के भाई से ब्याही थीं। इसलिए बचपन से ही उस परिवार के साथ नजदीकी थी। तब शिवनारायण उनके यहाँ मौसम पर आम, मटरफली, शकरकन्द वगैरह देने जाते थे। असल में उन दिनों वह लोग गरीब थे। जबकि शिवनारायण का परिवार खुशहाल था।

तीन साल पहले रमाकांत की गंभीर बीमारी सुनकर शिवनारायण उनके यहाँ कुछ अधिक ही जाने लगे थे। तब उनकी पत्नी से मिलने पर रमाकांत की पत्नी ने कहा था–'अपने कुल-परिवार वालों में बख्त-जरूरत कौन उनके पास नहीं पहुँचता था? वह चुपचाप पैसा निकल के दे देते थे। सब कोई पंद्रह-सोलह लाख लेकर बैठे हैं। जब से सुन पाए हैं कि कैंसर हुआ है, लोग झाँकने भी नहीं आए। यही शिवनारायण भैया अकेले हैं जो दसवें-पन्द्रहवें दिन एक चक्कर।'

शिवनारायण ने अकुलाहट के साथ करवट बदली। सारे विचारों को झिटककर आँख मूँद ली और नींद के लिए शिवजी की वंदना करने लगे, किन्तु 'नमः शिवाय' के बीच पता नहीं कैसे उसका मन उस प्रकरण से जुड़ गया। रमाकांत उन दिनों रिटायर होकर गाँव में रहने लगा था। हालाँकि लखनऊ में उसका थ्री बीएचके का फ्लैट था। जिला मुख्यालय में बड़ा मकान था। मगर उसे गाँव की रहाइश अधिक जमती थी। करीब चार एकड़ जमीन उसने गाँव में भी खरीद रखी थी। पुरखों वाली जमीन का उसका शेयर था ही! अब वह इसी में खेती करता था।

उस रोज। अपनी कार से जाते हुए उसने शिवनारायण को घर के सामने बाग में गुमशुम सा बैठा देखकर कार रोक के उसके पास चला आया था–'नमस्ते भाई, क्या बात है?'

'नमस्कार, कुछ खास नहीं। आओ बैठो।' कहते हुए शिवनारायण कुर्सी छोड़कर खड़ा हो गया और अपने लिए ओसारे से दूसरी

कुर्सी ले आया।

हालचाल के बीच उसने घर से पानी मँगवाया। कुछ देर में चाय भी आ गई। नई-पुरानी कुछ बातें हुईं। आधा घंटा बाद रमाकांत खड़ा हो गया। बोला-'अब चलता हूँ, ससुराल तक जा के वापसी भी करनी है।'

'ससुराल आपकी कौन लंदन में है, आमद-रफ्त कुल पच्चीस-तीस किलोमीटर! पाँच मिनट रुको, कपड़ा बदल के आता हूँ। मुझे चौराहे पर छोड़ देना। कोई दिक्कत तो नहीं!' उसने रमाकांत की तरफ देखा।

'बस आ जाओ, मेरा तो फायदा ही है। चौराहे तक एक बुद्धिजीवी का साथ मिल गया।' रमाकांत ने जवाब दिया था।

दस मिनट बाद वे कार में बैठे, चकरोड से आगे प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना से तैयार चिकने रास्ते पर आ गए थे। तभी रमाकांत ने पूछा-'भाई, आप तो पढ़ने-लिखने वाले व्यक्ति हो। मुझे बताओ, जिन्दगी में सबसे महत्त्वपूर्ण क्या होता है?'

शिवनारायण का मन आज सुबह से ही भारी था। यह साठ-बासठ साल की उम्र होती ही ऐसी है कि आदमी न चाहते हुए भी महीने में एक-दो बार अतीत की गहराइयों में जरूर चला जाता है। ऐसे मौके जब भी आते हैं, शिवनारायण को लगता है, भाग्य के मामले में वह औरों के मुकाबले में काफी कमजोर रहे हैं। रमाकांत के आने के पूर्व वह अपने भाग्य को ही कोस रहा था। तभी जब यह सवाल हुआ तो वह बिना किसी लिहाज और लाग-लपेट के कह उठा-'जीवन में सबसे बड़ी भूमिका भाग्य की होती है, जैसे आप हैं। अपने ऊपर गौर करें, फिर मुझे देखें। फर्क दिख जाएगा।'

उन्होंने अपना मोबाइल निकालकर उसकी तरफ बढ़ाया और कुछ कहते इसके पूर्व ही निर्मल ने कहा-'सर, जितना बढ़िया मैं अपने मोबाइल से फोटो ले सकूँगा, वैसा आप वाले से नहीं कर पाऊँगा। बस आप अपना नम्बर दें, मैं सारी फोटो आप के ह्वाट्सएप पर सेंड कर दूँगा।'
उन्होंने अपना नम्बर बताया। निर्मल ने डायल किया तो शिवनारायण के मोबाइल पर रिंग आने लगी। उन्होंने भी निर्मल का नम्बर सेव कर लिया। निर्मल ने कहा-'सर, नाश्ता। आप के लिए भी ले आऊँ।'
'नहीं, मेरा हो चुका है। आप ले लें।' शिवनारायण ने जवाब दिया।

यहीं तक होता तब भी गनीमत थी। शिवनारायण ने अपनी सारी कुंठा उगलते हुए पूरा इतिहास उधेड़ के रख दिया था। चौराहे तक पहुँचते-पहुँचते रमाकांत के भरे-भरे गेहुँए चेहरे पर अपमानबोध की गहरी स्याही पुत गई थी। रूम में नींद के लिए बेचैन शिवनारायण इस घटना की स्मृति से बेहद आहत हो उठे। वह चारपाई पर बैठ गए। हाथ में पहना दस्ताना और मोजे निकाल के बिस्तर पर रख दिया। थर्मस से ढक्कन में निकाल के दो ढक्कन पानी पिए, फिर अपने बड़े-बड़े सफेद बालों को अँगुलियों से सुलझाते वाशरूम में चले गए। वहाँ से लौटकर तौलिया से हाथ पोंछते हुए उनको लगा कि हाथ-पैर सुन्न हुए जा रहे हैं। जल्दी-जल्दी मोजे चढ़ाए और दस्ताने पहनते हुए रजाई में घुस गए। थोड़ा स्थिर होने पर उन्होंने मोबाइल में टाइम देखा। अभी बारह बजने वाले थे। उनको लगा, अब भी आँख लग जाए तो नींद पूरी हो सकती है। मगर इस बार उन्होंने नींद लाने के लिए किसी युक्ति का सहारा नहीं लिया। पुरानी यादों में डूबते-उतरते रहे।

रमाकांत शुरू में मिचमिची आँखों वाला रोगी जैसा कमजोर लड़का था। स्कूल में सदैव टाट के पिछले हिस्से में बैठता था। जबकि शिवनारायण बचपन में स्वस्थ और चटक थे। कक्षा पाँच का परीक्षाफल आया तो पाँच मेधावी बच्चों की लिस्ट में वह तीसरे नम्बर पर थे, जबकि रमाकांत साधारण नम्बरों से पास हुआ था। यही स्थिति कक्षा आठ में थी, शिवनारायण का रिजल्ट प्रथम श्रेणी में आया था। रमाकांत ने बमुश्किल पचास प्रतिशत अंकों के साथ परीक्षा पास की थी। दसवीं में तो हालत और भी खराब थी, वह छप्पन प्रतिशत के साथ शानदार गुड सेकंड क्लास में पास हुए और रमाकांत तीन नम्बर कृपांक के साथ प्रोन्नत हो पाया था। हालाँकि सेकंड डिवीजन उसका भी था।

इसके बाद एक टर्निंग प्वाइंट आता है। रमाकांत की शादी हो गई। पत्नी उम्र में ढाई-तीन साल बड़ी थी। रंग भी साफ नहीं था, लेकिन आँखें बड़ी-बड़ी थीं। शरीर उतार-चढ़ाव से भरा हुआ था और दाँत एकदम सफेद। सबसे बड़ी बात यह कि वह नई-नई मास्टरनी लगी थी और सम्पन्न परिवार से थी। जबकि शिवनारायण के परिवार में एक-एक कर दुश्वारियाँ आती गईं। पहले खेती-किसानी देखने वाले बड़े बाबू जी के लड़के नहीं रहे, इसी सदमे के बीच बंगाल में पिता जी की नई ट्रक पलटकर खाई में चली गई। इसमें ड्राइवर खलासी दोनों मारे गए थे और गाड़ी का ढाँचा-पाँचा चकनाचूर हो गया था। इस गाड़ी का अभी बीमा भी नहीं हुआ था। इसके बाद साल भी न बीता होगा कि पिताजी के कोल डिपो में भीषण आग लग गई। इसी के साथ परिवार की सारी खुशियाँ भी खाक हो गईं और वह लोग कंगाली की चपेट में आ गए थे।

बड़ी मुश्किल से इंटरमीडिएट तक उनकी शिक्षा हो पाई थी।

इस परीक्षा में भी उसके मार्क्स रमाकांत से अच्छे थे। अच्छी मेरिट की वजह से बीटीसी की ट्रेनिंग में उनका चयन हुआ था और वह मास्टर हो गए। मास्टर होने के बावजूद उसकी शादी के लिए कोई ढंग का रिश्ता नहीं आया। जो रिश्ते आए वह कानी या लूली-लँगड़ी लड़कियों के थे। वह सत्ताईस साल के हो गए थे, तब एक विधवा मास्टरनी से रिश्ता बन पाया।

रमाकांत की पढ़ाई चलती गई। इसके साथ ही उसके मरियल से व्यक्तित्व में निखार आता चला गया। पत्नी की कमाई तो थी ही! समय-समय पर ससुराल वाले भी उसकी मदद करते रहे। उसने पढ़ाई में मेहनत भी की, अन्यथा एमएससी में कालेज का टॉपर न बन पाता। इस आखिरी रिजल्ट की धमक ऐसी थी कि उसने जिस पद के लिए भी आवेदन किया, वहीं से उसका बुलावा आया। अंतत: उसने बीडीओ का पद ज्वाइन किया। बीच में एक बार विभागीय अधिकारियों के ट्रैनिंग कॉलेज का प्रिन्सिपल भी रहा। उसके बच्चे भी पढ़ाई-लिखाई में ठीक निकले। उसका एक ही लड़का नृपेन्द्र है। उसने एमबीए किया था। आज वह सफल बिजनेसमैन है। एक लड़की ने बी.टेक. किया था। रमाकांत ने एक सम्पन्न परिवार के इंजीनियर लड़के से उसकी शादी कर दी थी। दोनों एक ही फर्म में लगे हैं। दूसरी लड़की एम.एड. थी, वह ससुराल में अपना स्कूल सँभालती है। रमाकांत जिला विकास अधिकारी के पद से रिटायर हुआ था। चेहरे पर रहने वाली सदाबहार प्रसन्नता और आत्मविश्वास से उसका व्यक्तित्व गरिमामय प्रतीत होता है।

शिवनारायण इसबीच चेहरे से ही कुंठित लगने लगे हैं। बात-बात में चिढ़ जाना उनका स्वभाव बन गया है। हालाँकि उनकी स्थिति खराब नहीं है। वह संयुक्त परिवार से थे। भाई लोगों के बच्चे डॉक्टर, इंजीनियर और अफसर हैं। लड़कियाँ अच्छे परिवार में ब्याही हैं। उनका दामाद पुलिस इंस्पेक्टर है, लड़का उभरता हुआ वकील है। सबसे छोटे भाई की लड़की एयरटेल में रीजनल मैनेजर है। वह खुद जूनियर हाई स्कूल के हेडमास्टर के पद से रिटायर हुए हैं। अच्छी पेंशन उठाते हैं। पत्नी अभी सर्विस में है। भाइयों के बच्चे भी उसे मान-सम्मान देते हैं। मगर अपने विषय में सोचते हुए इन बातों पर ध्यान ही नहीं देते। उनका सारा फोकस तो इस बात पर रहता है कि उसने बच्चों को पढ़ाना चाहा तो वह मन माफिक प्रदर्शन न कर सके। उनको राष्ट्रपति पुरस्कार मिलने की बात आई, तो वह इंटरव्यू के समय तीस प्रतिशत जिन्दगी और सत्तर प्रतिशत मौत के बीच झूलते हुए ऑपरेशन थिएटर में पड़े थे। आखिर क्यों होता है बार-बार उनके ही साथ ऐसा?

उन्हें जो बीमारी थी, उसमें ज्यादातर लोग तो मर जाते हैं। जो ऑपरेशन के बाद बचते हैं, उनमें अधिकतर के साथ कुछ मानसिक या शारीरिक विकृति बची रह जाती है। जबकि वह एकदम दुरुस्त हैं। आज भी कहानी-लेख लिखते हैं। लंबी यात्राएँ कर लेते हैं। इन बातों पर वह कभी गौर नहीं करते। सिर्फ और सिर्फ अपने दुर्भाग्य पर कुढ़ना उनका स्थायीभाव बन चुका है। इस मन:स्थिति में वह आत्मनियंत्रण खो देते हैं, किसे क्या कह दें कोई ठिकाना नहीं! यही स्थिति थी, जब वह रमाकान्त के सीधे से सवाल पर अंटशंट बोल गए थे। बाद में जब उसकी बीमारी का पता चला तो वह अपराधबोध से भर उठे थे। और फिर पन्द्रह-बीस दिन में उससे मिलने जाने लगे थे। आज की रात भी वह देर तक सब बातों में उलझे हुए पता नहीं कब नींद की गिरफ्त में चले गए थे।

शिवनारायण सुबह जब जागे तो साढ़े सात बज रहे थे। जल्दी से मंजन करके वह बाहर आए, लोग खिली धूप का आनन्द ले रहे थे। आयोजकों द्वारा भेजी जाने वाली चाय का पॉट खाली हो चुका था। तश्तरी में चार-छ: टूटे हुए बिस्किट जरूर पड़े थे। वह गेस्ट हाउस के बाहर सड़क पर आए और चाय की दुकान में बैठ गए। उन्होंने अखबार उठा लिया। उसमें जयपुर, मेड़तासिटी, भीलवाड़ा और अलवर में भीषण शीतलहर के कारण जन-हानि की कई खबरें थीं। उनके ध्यान में आया कि शीतलहर की चपेट में उत्तर प्रदेश में भी हर साल चार-पाँच सौ लोग तो मरते ही होंगे, इनमें दो-तीन प्रतिशत लापरवाह लोग होते हैं, बाकी बेहद गरीब। जिनको ओढ़ने-बिछाने का संकट रहता है। इसी समय उनके सामने चाय आ गई। उन्होंने चाय का गिलास उठा लिया और आदत के हिसाब से धीरे-धीरे सिप करने लगे। अखबार के पन्ने पलटते हुए समाचारों के शीर्षक भी देखते रहे। दस मिनट बाद चाय वाले को पैसे देकर वह सीधे रूम में आ गए।

शिवनारायण इत्मीनान से काम करने के आदी हैं। नहाने और तैयार होने में उनको घंटे भर से कम नहीं लगता। करीब दस मिनट तो उनको अपने बड़े-बड़े बालों को सँवारने और खसखसी दाढ़ी को सेट करने में लग जाता है। वह ऊनी कुर्ता, सदरी और सफेद पैंट में सजे-धजे रूम से बाहर आए तो गेस्ट हाउस का मौन इंगित कर रहा था कि और लोग कार्यक्रम स्थल की तरफ जा चुके हैं। वह फाइल बगल में दबाए थोड़ा तेज चलके कार्यक्रम स्थल पर पहुँच गए। स्टाल से खाने-पीने की सामग्री लेकर लोग नाश्ता करने में जुटे थे। उन्होंने एक प्लेट उठाई और दो ब्रेड पकौड़ों पर टोमैटो सास डालकर एक किनारे आ गए। पकौड़े स्वादिष्ट थे। इसे समाप्त करके उन्होंने

स्टाल के दोनों कार्नर से बारी-बारी दो कॉफी ली।

आज शिवनारायण का सम्मान होना था। इसकी कवरिंग के लिए वह धूप में बैठे नई उम्र के कवि निर्मल कुमार के पास पहुँच गए। बोले-'भाई निर्मल जी, आज मेरा सम्मान होना है। मैं चाहता हूँ, आप इस अवसर के मेरे कुछ फोटो ले लें।'

'बिल्कुल सर, मुझे खुशी होगी।' निर्मलकुमार एकदम राजी था।

उन्होंने अपना मोबाइल निकालकर उसकी तरफ बढ़ाया और कुछ कहते इसके पूर्व ही निर्मल ने कहा-'सर, जितना बढ़िया मैं अपने मोबाइल से फोटो ले सकूँगा, वैसा आप वाले से नहीं कर पाऊँगा। बस आप अपना नम्बर दें, मैं सारी फोटो आप के ह्वाट्सएप पर सेंड कर दूँगा।'

उन्होंने अपना नम्बर बताया। निर्मल ने डायल किया तो शिवनारायण के मोबाइल पर रिंग आने लगी। उन्होंने भी निर्मल का नम्बर सेव कर लिया। निर्मल ने कहा-'सर, नाश्ता। आप के लिए भी ले आऊँ।'

'नहीं, मेरा हो चुका है। आप ले लें।' शिवनारायण ने जवाब दिया।

निर्मल स्टाल की तरफ जाने लगा। तभी भदोही वाला ओमप्रकाश दिख गया। इसका लिखा-पढ़ा तो उनको कभी नहीं दिखा। मगर बिहार, मध्य प्रदेश, यूपी और उत्तराखंड के कई साहित्यिक कार्यक्रमों में यह उनसे मिल चुका था। उन्होंने आवाज दी-'अरे भाई पाण्डेय जी।'

'नमस्ते सर।' कहते हुए वह उनके पास आ गया-'और सर, कैसे हैं?'

'एकदम ठीक, अपनी सुनाओ। क्या चल रहा है?' शिवनारायण ने पूछा-'नया क्या लिख रहे हैं?'

'कुछ नहीं सर, मुझे कुंडली बनाने, ग्रह शांति की पूजा और महाजनों के धार्मिक आयोजन के प्रबन्धन के काम से ही फुरसत नहीं मिलती। कुछ अखबारों में राशिफल और व्रत-त्यौहार से सम्बन्धित लेखों तक बँध के रह गया हूँ।' उसने बताया।

इसी समय लपकता हुआ सामने से बिरेन लोढ़ा आ गया। शिवनारायण से मुखातिब होकर बोला-'सर, जलपान हो गया हो तो हाल में चलें।'

तीनों लोग हाल में आ गए। यहाँ अभी कम ही लोग आए थे। वह और ओमप्रकाश सामने की कुर्सी पर अगल-बगल बैठ गए। एकबार मन में आया कि नृपेन्द्र को फोन लगा के अपनी स्थिति स्पष्ट कर दें। लेकिन तभी दिमाग में आया कि अभी तो टेंट और कैटरिंग वालों के हिसाब-किताब में उलझा होगा, इसलिए दूसरी मीटिंग में। उस समय आयोजक प्रतिभागियों को हल्दी घाटी का दर्शन कराने ले जाएँगे। शिवनारायण पहले दो-तीन दफे उस तरफ जा चुके हैं, इसलिए उनको नहीं जाना है। बल्कि इस समय उन्होंने गोपाल नागदा और शंकरलाल मोहता को गेस्ट हाउस आकार मिलने का समय दे रखा है।

तभी मंच पर साहित्य मंडप के प्रमुख श्यामप्रकाश जी दिखे। उनके पीछे वीरेंद्र पारीक भी पहुँच गए। श्याम जी ने माइक संभाला। उनकी आवाज हाल में गूँजने लगी-'साथियो, न चाहते हुए भी हम आधा घंटा लेट हो चुके हैं। अभी सवा दस बजे हैं। दो बजे मैंने हल्दी घाटी निकलने के लिए बस वाले को बोल रखा है। हमारे पास सिर्फ पौने चार घंटे हैं। इसी में हमारा चालीस मिनट का लंच भी शामिल है।'

इसके बाद उन्होंने माइक वीरेंद्र पारीक की तरफ बढ़ा दिया। पारीक ने सधे अंदाज में कार्यक्रम की व्यवस्था आगे बढ़ाई। स्थानीय वयोवृद्ध साहित्यकार धनराज छाजेड़ को अध्यक्षता के लिए आमंत्रित किया। तालियों की तड़तड़ाहट के बीच एक व्यक्ति उनको सहारा देता मंच पर पहुँचा गया। मनसुखलाल मांडविया को विशिष्ट एवं दुलीचंद जैन को मुख्य अतिथि के दायित्व निर्वहन के लिए मंच पर आहुत किया। इनके नाम पर भी तालियाँ बजीं। सरस्वती प्रतिमा के समक्ष दीप प्रज्ज्वलित किया गया। सरस्वती वंदना हुई। इसके पश्चात् शिवनारायण, पूनम लोहार और धनंजय सेठिया क्रमशः मंच पर आमंत्रित करते हुए, पारीक ने इनके साहित्यिक अवदान पर प्रकाश डाला। सम्मान के अंतर्गत मोतियों की माला, श्रीनाथ जी का रेशमी दुपट्टा, श्रीफल, शाल, मेवाड़ी पगड़ी, प्रमाणपत्र, श्रीनाथ जी का बड़ा विग्रह और लिफाफा यह हाल में उपस्थित अलग-अलग गणमान्य प्रतिभागियों द्वारा सबको प्रदान कराया गया।

इस पूरे सिलसिले को वीरेंद्र पारीक ने बड़े ही सुव्यवस्थित और गरिमा के साथ सम्पन्न किया। इसमें न हड़बड़ी थी, न उबाऊपन! बल्कि एक स्तरीय लयबद्धता थी। आयोजकों की तरफ से फोटोग्राफी की व्यवस्था थी। साढ़े बारह के आसपास सम्मान की प्रक्रिया समाप्त हुई। मंचासीन विद्वानों ने अपने विचार रखे। मुख्य अतिथि और विशिष्ट अतिथि तो सम्मानित होने वालों के प्रति शुभकामना और साहित्य मंडप के बेहतरीन आयोजन के लिए बधाई देने तक ही सीमित रहे। मगर छाजेड़ जी ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में शुभकामना और बधाई के साथ सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न और गतिशील समाज में साहित्य की निरन्तर

उपस्थिति की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला। इसे शिवनारायण सहित हाल में उपस्थित कई प्रतिभागियों ने रिकार्ड किया था।

एक बजे सत्रावसान हुआ। लोग बुफे पंडाल में आ गए। शिवनारायण ने पहले सम्मान में मिला सामान कमरे में रखा, फिर पंडाल में आए। भोजन की प्लेट लिए निर्मल सामने आ गया। बोल–'सर, देखिएगा मैंने हर स्टेप को कवर किया है।'

'धन्यवाद भाई, आभार! भोजन के बाद कमरा नम्बर पंद्रह में आएँ।' कहते हुए वह प्लेट लेकर लाइन में लगने चले गए।

बुफे में शुरुआत कुछ हड़बड़ी जैसी होती है, मगर यहाँ स्टाल और पंडाल बड़ा था। इसलिए दिक्कत नहीं हुई। लोग खाद्य सामग्री अपनी प्लेट में रखते गए और पंडाल में बिखर के बातचीत के बीच लंच लेते रहे। शिवनारायण पन्द्रह मिनट के अन्दर भोजन समाप्त कर, रूम में आ गए। उनके पीछे निर्मल भी आ गया। फोटो शूट करने में उसने कमाल कर दिया था। शिवनारायण प्रसन्न हुए, उन्होंने सारे स्नैप अपने मोबाइल में तो लिए ही, लगे हाथों नृपेन्द्र का नम्बर देकर उसके व्हाट्स ऐप पर भी सेंड करा दिए। निर्मल जल्दी ही निकल गया। इसके बाद शिवनारायण ने नृपेन्द्र को फोन लगाया। दो–तीन रिंग के बाद फोन उठ गया–'बाबू जी प्रणाम!'

'खुश रहो बेटा।' आशीर्वाद के बाद वह बरसी में न शामिल हो पाने की बात करने वाले थे, तभी नृपेन्द्र कहने लगा–'बाबू जी, अभी मेरे व्हाट्सऐप पर आपकी सम्मानित होने की फोटोज आई हैं। आप इस उम्र में दूर दराज के इलाके में सम्मानित होते हैं। जिले और गाँव का नाम रोशन कर रहे हैं। कितने भाग्यवान हैं आप! मैं आप के भाग्य की सराहना करता हूँ। बधाई और शुभकामनाएँ!'

वह स्तब्ध थे और फोन कट चुका था, फिर भी वह स्क्रीन की तरफ देखते रहे। उनके मन के अन्दर एक खुश करने वाला अहसास उमड़–घुमड़ रहा था कि मेरा भी एक भाग्य है।

ग्राम–पोस्ट : जासापारा
वाया : गोसाईगंज–228119
सुलतानपुर (उ. प्र.)
मो.–7379100261

प्रतिक्रिया

'अक्षरा' दिसम्बर '23 के शीर्षक-विहीन सम्पादकीय का मुद्दा आपने सीधे साहित्य-परिसर से उठाया है और जिस तरह उसका 'विश्लेषण' किया है, उससे आपकी वस्तुपरकता, तार्किकता, बहुज्ञता और बहुपठनीयता का बोध होता है किन्तु यह आपको जानने वालों के लिए नई बात नहीं है। नई बात तो यह है कि इसके बहाने आपने न सिर्फ साहित्य और विचारधारा, साहित्य और इतिहास-बोध, साहित्य और भारतीय समाज, धर्म, राष्ट्रीयता, संवेदना और साहित्यकार के दायित्व और उसकी लेखकीय जिम्मेदारी जैसे प्रश्न भी उठाए हैं। यों आपने उस कथित कविता का 'विश्लेषण' मात्र किया है किन्तु उस विश्लेषण के लिए चले चप्पुओं से जो लहरें उठी हैं, वे इन निकायों को भिगोती हैं और उन्हें भी विमर्श के घेरे में ले लेती हैं। साहित्य के लिए किसी भी विचारधारा का प्रकाश और प्रभाव एक धनात्मक पक्ष है किन्तु जब वह किन्हीं कारणों से जिन लोगों के सिर चढ़कर बोलने लगती है तब वह इस तरह की कविताओं और श्री देवीप्रसाद मिश्र जैसे कवियों को निर्मित करता है। वामपंथी होकर भी काव्य में केदारनाथ अग्रवाल, गद्य में परसाई और आलोचना में रामविलास शर्मा ऐसे रचनाकार हैं जो इस बात के प्रमाण हैं कि रचना में मनुष्य और उसकी संवेदना ही सर्वोपरि है न कि विचारधारा की राजनीति। इसीलिए इन्हें पढ़कर अपनपौ का एहसास होता है। स्वयं नामवर जी ने अपने आरंभिक दिनों में अच्छे गीत लिखे थे, जो 'नीम' शीर्षक से प्रकाशित भी हुए थे और उसकी कुछ बानगी श्री अशोक वाजपेयी संपादित 'पूर्वग्रह' में उन दिनों पाठकों को देखने को मिली थी। यह बात अलग है कि उन्हीं नामवर ने बाद में छायावाद के राष्ट्रीय चेतना सम्पन्न काव्य की बखिया (कविता के नए प्रतिमान) उधेड़ दी। मेरा आशय सिर्फ यह कहना है कि विचारधारा तो सर्चलाइट की तरह होती है। अब उसे लोग अपनी सुविधा के लिए ओढ़ने-बिछाने लग जाएँ तो उसका बड़ा नुकसान व्यक्ति और समाज के लिए है फिर वह विचारधारा वाम हो या दाक्षिणात्य। आपने इस कविता का जो 'विश्लेषण' किया है, वह इस शब्द से अधिक कुछ है। वह व्याख्या से, काव्यालोचन से 'अर्थ' से और मीमांसा से भी अधिक है। हमारे पढ़ने-पढ़ाने के उत्तरार्द्ध में अकादमिक दुनिया में एक पद आया था 'पाठालोचन', उस के करीब है यह। और आपकी लेखन-शैली का सहारा लेकर कहें तो पोस्टमार्टम जैसा है यह। कविवर मिश्र की इस कविता ने प्रकाशित होते ही साहित्य परिसर में एक नकारात्मक माहौल निर्मित कर दिया था और 'नव भारतटाइम्स' में विद्वानों के बीच एक व्यापक विमर्श हुआ था। साहित्य के एक विद्यार्थी से अधिक इस देश के जिम्मेदार नागरिक के नाते मुझे भी एक झटका-'बकरे की तरह तकलीफ के झटके' वाला झटका नहीं-दिया था और उससे मुझे मानसिक उत्ताप-हुआ था जिसे केन्द्रित कर और उसके काव्यांश को उद्धृत करते हुए मैंने एक लेख 'धर्म की राजनीति बनाम राजनीति का धर्म' लिखा था। यह लेख उस समय एकाधिक पत्रिका में छपकर अब मेरी समीक्षात्मक पुस्तक 'कविता की आँच' में संकलित है। मैं इसे आपके अवलोकनार्थ भेज रहा हूँ, प्रासंगिक लगे तो इसे 'अक्षरा' में स्थान देने का कष्ट करें क्योंकि इस कविता का चतुर्दिक परिदृश्य आज भी वही है जो उस समय था। आपकी अन्वेषी दृष्टि का अभिनन्दन करते हुए -

सत्येन्द्र शर्मा, सतना (म.प्र.)

डाकमुंशी

मूल : फकीर मोहन सेनापति
अनु. : दिनेश कुमार माली

दिनेश कुमार माली

जन्म – 9 नवंबर 1968।
जन्मस्थान – सिरोही (राज.)।
शिक्षा – बी.ई., एम.बी.ए., एम.ए.।
रचनाएँ – तैंतीस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – राजस्थान साहित्य अकादमी सहित अनेक संस्थाओं से सम्मानित।

फकीर मोहन सेनापति

जन्म – 14 जनवरी 1843।
प्रयाण – 14 जून 1918।

हरि सिंह सरकारी कामकाजों में अब तक कई छोटे-बड़े कस्बों में स्थानांतरित हो चुके थे। अब वह दस साल से कटक हेड पोस्ट-ऑफिस में काम कर रहे हैं। अच्छी कार्यशैली होने के कारण उन्हें प्रमोशन मिलते रहे। अब वह हेड चपरासी हैं। मासिक वेतन नौ रुपए। कटक शहर में सब कुछ खरीदना पड़ता है। आग जलाने के लिए माचिस की पेटी भी खरीदनी पड़ती थी। पेट काटकर जितना भी बचाओ, मगर पाँच रुपए से कम खर्च नहीं आता था। किसी भी हालत में घर में कम से कम चार रुपए नहीं भेजने से नहीं चलता था। घर में पत्नी और आठ साल का बेटा था गोपाल। छोटे से गाँव की जगह थी। इसलिए चार रुपए में जैसे-तैसे काम चल जाता था। अगर चार रुपए से एक पैसा कम हुआ तो मुश्किल हो जाती थी। गोपाल माध्यमिक विद्यालय में पढ़ रहा था। स्कूल की फीस महीने में दो आने थी। स्कूल फीस के अलावा किताबें खरीदने के लिए कुछ ज्यादा पैसे लग जाते थे। जब कुछ अतिरिक्त खर्च आ जाता था तो वह महीना मुश्किल से गुजरता था। कभी-कभार बूढ़े को भूखा तक रहना पड़ता था। वह भूखा रहे तो कोई बात नहीं, मगर उसके बेटे की पढ़ाई तो चल रही थी।

एक दिन पोस्ट मास्टर सर्विस बुक खोलकर बतलाने लगे, 'हरि सिंह, तुम पचपन साल के हो गए हो। अब तुम्हें पेंशन मिलेगी। अब तुम नौकरी में नहीं रह सकोगे।'

सिंह के सिर पर वज्रपात हो गया। क्या करेगा? घर-संसार कैसे चलेगा? घर की बात छोड़ो, गोपाल की पढ़ाई ठप्प हो जाएगी। जब से गोपाल पैदा हुआ है तब से हरि सिंह ने मन में एक सपना सँजोकर रखा है-गोपाल, कस्बे के पोस्ट ऑफिस में सब पोस्ट-मास्टर होगा-कम से कम गाँव में पोस्ट-मास्टर तो होगा ही। परंतु थोड़ी सी अंग्रेजी नहीं आने से नौकरी मिलना मुश्किल है। कस्बे में अंग्रेजी पढ़ने की व्यवस्था नहीं है। इसलिए कटक भेजकर उसे पढ़ाई करवाना उचित होगा। अगर नौकरी खत्म हो गई तो उसका सपना चूर-चूर हो जाएगा। यही बात सोच-सोचकर उसका शरीर शुष्क लकड़ी की तरह हो गया था। रात को आँखों से नींद गायब हो गई थी।

हरि सिंह के ऊपर पोस्ट-मास्टर की मेहरबानी थी। उनके घर में नौकर होते हुए भी ऑफिस का काम खत्म करने के बाद शाम को हरि सिंह पोस्ट-मास्टर के घर जाकर कुछ काम कर लेता था। शाम को आराम कुर्सी में बैठकर पोस्ट-मास्टर अंग्रेजी समाचार पढ़ते समय तंबाकू की चिलम बनाता था। वह जैसे चिलम तैयार करता था, कोई नहीं कर पाता था। एक दिन हरि सिंह ने चिलम तैयार कर के बाबू के सामने रखी। बाबू के मुँह से इंजिन की तरह भक-भक करके धुँआ निकलता था और नशे से आँखों की पलकें गिर जाती थीं। तब हरि सिंह को लगा, यह उचित समय है। हरि सिंह ने पोस्ट-मास्टर जी को साष्टांग दंडवत करते हुए हाथ जोड़कर विनीत भाव से अपने दुख-दर्द को सामने रखा। गोपाल के लिए उसने जो सपना बुना था, उसे भी बताना नहीं भूला। पोस्ट-मास्टर बाबू तन्द्रावस्था में थे। वे गंभीर मुद्रा में बोले, 'ठीक है, एक आवेदन-पत्र भरकर दे देना।'

बाबू जी यह कार्य सहज भाव से कर सकते थे क्योंकि पोस्टल इंसपेक्टर या अधीक्षक जब दौरे पर आते थे तब वे उनके बँगले में ही रुकते थे। वह उच्च अधिकारियों के लिए खाने-पीने की समुचित व्यवस्था भी करते थे। उस रात पोस्ट-मास्टर बाबू बार-बार 'हरि सिंह, हरि सिंह' कहकर पुकार रहे थे। हरि सिंह बहुत अनुभवी आदमी था। कई सालों से बड़े-बड़े साहबों को वह देख चुका था। वह अच्छी तरह से उनके मिजाज के बारे में जानता था। वह यह भी अच्छी तरह जानता था कि कौन साहब किस तरीके से खुश होते हैं। उस दिन आधी रात तक हरि सिंह को पोस्ट-मास्टर

बाबू के बँगले में रुकना पड़ा क्योंकि ओड़िशा के प्रदूषित वातावरण के कारण कहीं बाबू बीमार पड़ उल्टी करने न लग जाएँ। उल्टी करने के समय हरि सिंह को सोडा, नींबू आदि की व्यवस्था करने के साथ-साथ बाबू जी को भी सँभालना था। बाबू जी के आराम से सोने के बाद हरि सिंह आधीरात को अपने घर लौटकर खाना बनाकर खाता। इस प्रकार हरि सिंह अपने ऊपर के बड़े हाकिमों से परिचित था।

हरि सिंह के आवेदन-पत्र में बाबू जी ने अपनी तरफ से अच्छी तरह सिफारिश लिखकर शहर भेज दी थी। थोड़े दिनों के बाद एक्सटेंशन ऑर्डर आ गया था। हरि सिंह बहुत खुश हो गया। उसने यह खुशखबरी अपने गाँव में भी भेज दी।

लोग तुरंत मिले सुख-दुख में खो जाते हैं, मगर भविष्य में विधाता ने जो उनके लिए तय किया है उस तरफ उनकी नजरें नहीं जाती हैं। हरि सिंह का यह सुख पानी के बुलबुले की तरह समाप्त हो गया। उसके घर से एक पत्र आया कि गोपाल की माँ को सन्निपात की बीमारी हो गई है और उसके जीने की आशा नहीं के बराबर है। हरि सिंह ने पोस्ट-मास्टर बाबू को वह चिट्ठी दिखाई। बाबू बड़े ही दयालु स्वभाव के थे, तुरंत ही उसकी घर जाने की छुट्टी मंजूर कर दी। एक ही झटके में हरि सिंह अपने घर चला गया। घर पहुँच कर उसने जो देखा, उसे देखकर उसकी आँखों की चमक चली गई। यह संसार मानो अँधकार में लुप्त हो गया। उसकी पत्नी मरणासन्न थी। पति को धुंधली आँखों से देखते हुए दोनों हाथ उठाकर प्रणाम किया और चरण रज लेने के लिए इच्छा व्यक्त की। सिर्फ चरण-रज लेने के लिए उसकी साँसें अटकी हुई थीं? उसके बाद सब शांत। हरि सिंह की दुनिया उजड़ गई। अपने घर का बचा-खुचा सामान बेचकर वह बेटे के साथ कटक लौट आया। गोपाल माइनर स्कूल (कक्षा सात) में पढ़ता था। हरि सिंह की मुश्किल से गुजर बसर हो रही थी, क्योंकि वह पेंशनभोगी हो गया था। कभी लोटा, तो कभी काँसे के बर्तन बेचकर किसी तरह घर चलता था। जब नौकरी थी तब महीने में दो-चार आने रखकर बचत खाते में रखा करता था। गोपाल के माइनर स्कूल की पढ़ाई में सब खर्च हो गया था। हरि सिंह सोचा करता था कि गोपाल के माइनर पास करने के बाद सब कष्ट दूर हो जाएँगे। गोपाल ने भी कई बार इस बात पर आश्वासन दिया था, 'पिता जी, भले कर्ज लेकर मुझे पढ़ाएँ नौकरी लगने के बाद सारा कर्ज चुकता कर दूँगा।'

गोपाल की बात सुनकर बूढ़े का दिल दहल गया। वह एकदम गुमसुम होकर बैठ गया। अपने बेटे की बात वह किससे करता? उसके दिल में उस जगह घाव हो गए, जिसे वह किसी को दिखा भी नहीं सकता था। जिसके सामने वह अपने मन की बात रख सकता था, वह तो इस दुनिया से चल बसी थी। उसे बूढ़ी की याद आने लगी। वह मन ही मन खूब रोने लगा। रोते-रोते उसने चारों तरफ दृष्टि डाली मगर कोई भी भरोसे वाला आदमी नहीं मिला। बूढ़ा सुख-दुख में बूढ़ी को खूब याद करता था। बूढ़े ने रोना बंद किया क्योंकि उसके रोने से गोपाल का अनिष्ट होगा।

हरि सिंह की प्रार्थना दीनबंधु दीनानाथ ने सुन ली। हरि सिंह की खुशी की कोई सीमा नहीं रही। वहीं पुराने पोस्ट-मास्टर बाबू अभी भी नौकरी में थे। हरि सिंह ने उनके हाथ-पैर पकड़कर काफी अनुनय-विनय की। हरि सिंह के ऊपर भी बड़े लोगों की कृपा-दृष्टि थी। गोपाल तुरंत भक्रामपुर पोस्ट-ऑफिस में सब पोस्ट-मास्टर की हैसियत से नियुक्त हो गया। महीने में बीस रुपए तनख्वाह थी। हरि सिंह खुशी से फूले नहीं समा रहे थे। फिलहाल सदर पोस्ट ऑफिस से चार महीने प्रशिक्षण लेकर वह अपने कस्बे में लौट जाएगा।

हरि सिंह बार-बार भगवान के सामने नतमस्तक हो रहा था, 'धन्य प्रभु, तुम्हारी दया से मुझ जैसे दीन आदमी के दुखों का निवारण हो गया।'

नौकरी लगने की खबर जिस दिन बूढ़े को मिली थी उस रात अकेले में बैठकर खूब रोया था, 'हाय! आज अगर बूढ़ी जिंदा होती तो कितना खुश होती। उसके गोपाल को बड़े साहब की नौकरी मिली है। घर में उत्सव सा माहौल हो जाता। हाय! अभागी की किस्मत में ये दिन देखने को नहीं थे।

देखते-देखते गोपाल बड़ा साहब बन गया। भगवान उसकी रक्षा कीजिए।'

गोपाल ने पहले महीने की तनख्वाह लाकर बूढ़े के हाथ में दे दी। बूढ़ा बहुत खुश। उसके पैर जमीन पर नहीं पड़ते थे। बेटा बड़ा साहब बन गया है, बहुत सारा पैसा एक साथ कमाकर लाया है। रुपयों को चार-पाँच बार गिनकर अपने अंटी में बाँधकर रखा। अगले दिन हड़बड़ाकर वह बाजार की तरफ भागकर गया। जूते, कुर्ता, धोती जिन-जिन सामानों की जरूरत थी, सब खरीदकर लाया था। गोपाल बड़ा साहब बन गया है, अब क्या वहीं पुराने कपड़े पहनेगा? ललाट देखकर तिलक लगाते हैं। उसी तरह नए कपड़ों की जरूरत थी।

यहाँ गोपाल बाबू ऑफिस में बैठकर और पाँच आदमियों की तरह अंग्रेजी लिखता था। बाबुओं के साथ उसका उठना-बैठना होने लगा। सभी उसे डाक-मुंशी बाबू के नाम से बुलाते थे। पूरा नाम था गोपाल चंद्र सिंह।

यहाँ गोपाल घर लौटकर देखता था बूढ़ा मैली धोती पहनकर काम कर रहा है।

गोपाल किस तरह अच्छा खाना खाएगा?

वह नहाया या नहीं?

गीले कपड़े सूखे हैं या नहीं?

बेचारे के पास काम की कमी नहीं है।

ये सारी चिंताएँ वह दिन भर करता था। पहले हरि सिंह कभी-कभार हरिनाम लिया करता था। कुछ दान-पुण्य करता था। अब गोपाल के लिए सब भूल चुका था। शायद भगवान यह सब देखकर बूढ़े के ऊपर गुस्सा हो गए थे। मानो कह रहे थे अरे! बुद्धिहीन, ये सब क्या कर रहे हो? एक दिन तुम्हें सब पता चल जाएगा।

अब गोपाल बाबू के हाव-भाव में कुछ परिवर्तन होने लगा था। अब पिता जी को देखने से बिना किसी कारण से वह चिड़ने लगा था। 'यह मूर्ख है। इसे अंग्रेजी मालूम नहीं है। मजदूर कहीं का, मैले-कुचैले कपड़े पहनने वाले इस आदमी को मैं पिता जी कहकर संबोधित करूँगा। लोग क्या सोचेंगे?' उस दिन गाउन पहने हुए कुछ पढ़ी-लिखी औरतें खड़ी थीं। बूढ़े के शरीर पर कमीज नहीं थी। छि: ! छि: ! शरम नहीं आई उसको। अगर इसे घर से बाहर नहीं निकाला जाता है तो मेरी इज्जत का कबाड़ा हो जाएगा।

एक दिन डाकमुंशी बाबू पिता जी को कहने लगा, 'देखो, तुमने मेरे लिए कुछ भी नहीं किया है। मुझे पढ़ाकर कोई मेहरबानी नहीं की। मन है तो यहाँ रहो, नहीं तो यहाँ से चले जाओ। मगर याद रखना, अगर यहाँ रहना चाहते हो तो बाबू लोग आने पर घर के भीतर से बाहर मत निकलना।'

गोपाल की बात सुनकर बूढ़े का दिल दहल गया। वह एकदम गुमसुम होकर बैठ गया। अपने बेटे की बात वह किससे करता? उसके दिल में उस जगह घाव हो गए, जिसे वह किसी को दिखा भी नहीं सकता था। जिसके सामने वह अपने मन की बात रख सकता था, वह तो इस दुनिया से चल बसी थी। उसे बूढ़ी की याद आने लगी। वह मन ही मन खूब रोने लगा। रोते-रोते उसने चारों तरफ दृष्टि डाली मगर कोई भी भरोसे वाला आदमी नहीं मिला। बूढ़ा सुख-दुख में बूढ़ी को खूब याद करता था। बूढ़े ने रोना बंद किया क्योंकि उसके रोने से गोपाल का अनिष्ट होगा।

गोपाल अगले दिन सुबह किसी काम के लिए कस्बे की तरफ जा रहा था। मगर उसने यह बात बूढ़े को नहीं बताई। सुबह उठकर रूखी आवाज में कहने लगा, 'ऐ बाबा! मैं गाँव जा रहा हूँ। तुम ये सारा सामान लेकर आओ। ज्यादा सामान नहीं है। कुली क्यों करूँगा? कुली को देने के लिए मेरे पास पैसे नहीं हैं।' गोपाल बाबू कपड़े पहनकर बगल में छतरी डालकर लाठी घुमाते हुए निकल पड़े। अब बूढ़ा क्या करेगा? सारा सामान इकट्ठा करके पोटली बाँधकर सिर पर रखकर चल पड़ा। वह ढंग से चल भी नहीं पा रहा था। उसके शरीर में अब वह ताकत नहीं बची थी। आँखों से आँसू टपकने लगे। जैसे-तैसे दस जगह उठते-बैठते हुए शाम तक वह भक्रामपुर में पहुँचा। विलम्ब होने के कारण बाबू ने उसे डाँटा-फटकारा। बूढ़ा गुमसुम होकर बैठ गया।

गोपाल बाबू सुबह-शाम ऑफिस आने लगे। बूढ़ा घर में बैठकर घर गृहस्थी का काम देखता था। कभी भी बाप-बेटा बैठकर सुख-दुख की बातें नहीं करते थे, डाक मुंशी यानी कस्बे के बड़े साहब। कितने लोग आकर नमस्ते करते थे। मूर्ख बूढ़ा क्या जानता है? जो उसके साथ बातचीत करेगा। कस्बे की जलवायु बूढ़े के लिए अनुकूल नहीं थी। ज्वर होने लगा। खों-खों करके खाँसने लगा। रात को कुछ ज्यादा ही खाँसी होती थी। गोपाल बाबू के सोने में परेशानी होने लगी। उसने अपने चपरासी को बुलाकर आदेश दिया, 'जाओ, इसे बूढ़े को ले जाकर कहीं झाड़ियों में फेंक दो।'

वह चपरासी मूर्ख था। अंग्रेजी उसे नहीं आती थी। फिर भी वह देशी हृदय वाला था। वह सोचने लगा-क्या इस बूढ़े को ले जाकर झाड़ियों में छोड़कर आना उचित होगा? ज्वर से काँप रहा है। तीन दिन से पेट में एक भी दाना नहीं गया। आधी रात को अँधेरे में बाहर छोड़ना ठीक नहीं है। ठंड की वजह से बूढ़े की खाँसी और ज्यादा बढ़ गई। गोपाल बाबू के गुस्से की सीमा नहीं रही, उसने बूढ़े के सीने में दो अंग्रेजी मुक्के जड़ दिए। और बिस्तर-बिछौने को उठाकर बाहर फेंक दिया। बूढ़ा अपने गाँव को लौट गया।

आस-पास के लोगों के मुँह से यह बात सुनने को मिल रही थी। उस दिन से गोपाल बाबू का मन बहुत खुश है और वहाँ बूढ़े ने भी अपने गाँव लौटकर दो बीघा जमीन खेती करने के लिए मजदूरी पर दे दी। घर में बैठे-बैठे अनाज मिल जाता था, पेंशन के पैसों से कपड़ा-लत्ता तथा घर के परचूनी सामानों का खर्च निकल जाता था। जब से खाँसी हो रही थी तब से वह अफीम खाने का आदी हो गया। मगर उसका सारा खर्च आराम से निकल जाता था। बरामदे में बैठकर वह भगवान का नाम लेता था। अब बाप-बेटा दोनों खुश थे। पाठक महाशय दूसरों का सुख देखकर खुश होंगे।

क्वार्टर नं. सी/34, लिंगराज, टाउनशिप,
पो. हंडिधुआ, तालचेर,
जिला अनुगुल-759100 (ओडिशा)
मो.-9438878027

वृंदावनलाल वर्मा

जन्म : 09 जनवरी 1889
प्रयाण : 23 फरवरी 1969

लुटेरे का विवेक (कहानी)

बात बारहवीं शताब्दी के अंत की है। मुहम्मद साम दिल्ली का सुल्तान था और भीम द्वितीय गुजरात का राजा। भीम ने लगभग इकसठ वर्ष राज किया। वह सिद्धांत पर चलता था, जिसे सत्रहवीं शताब्दी में छत्रसाल ने यों व्यवहृत और व्यक्त किया था–'रैयत सब राजी रहे, ताजी रहे सिपाह'। भीम बल–पराक्रम और प्रजा–पालन के लिए एक समान प्रसिद्ध था।

मुहम्मद साम ने गुजरात पर आक्रमण किया। भीम ने उसे बुरी तरह हराया। हार खाई, साम का धन–जन बहुत नष्ट हुआ। गुजरात की राजधानी पाटन थी। पाटन में गजनी का बसाबुहीर नाम का एक मुसलमान व्यवसायी बहुत समय से रहता था। उसके जहाज चलते थे। पाटन से बगदाद और गजनी माल भेजा–मँगाया करता था। लाखों की संपत्ति पाटन में थी और कम–से–कम दस लाख की गजनी में। बसाबुहीर पाटन की नगर पंचायत का एक मुखिया भी हो गया था।

मुहम्मद साम दिल्ली लौटकर फिर से गुजरात पर चढ़ाई करने की बात सोचने लगा; परंतु इतना नुकसान उठाकर आया था कि रुपए–पैसे की बहुत कमी पड़ गई। सिपाही और रुपए दोनों की आवश्यकता। बड़ी सेना खड़ी करने के लिए काबुल–कंधार इत्यादि से लड़नेवाले चाहिए। इन लड़नेवालों के लिए पैसा का ही आकर्षण सबसे बड़ा था। इधर साम की गाँठ बहुत कमजोर।

साम के एक मंत्री ने उसे सुझाव दिया, 'बसाबुहीर नाम का एक गजनवी पाटन में रहता है। उसने बहुत माल–जायदाद पाटन में जोड़ रक्खी है, और कम–से–कम दस लाख की गजनी में। गजनवी होने पर भी बसाबुहीर हिंदी हो गया है– पाटन शहर का एक मुखिया तक। गजनी में उसकी जो जायदाद है, वह जब्त कर ली जाए। उस रुपए से काबुल–कंधार के लड़ाकुओं को इकट्ठा करने में बड़ी मदद मिलेगी; फिर गुजरात की फतह बाएँ हाथ का खेल हो जाएगा।'

साम सोचने लगा और सोचता रहा। कई दिन तक उसने अपने मंत्री को कोई उत्तर नहीं दिया।

मंत्री उकता रहा था। उसने अपने हाथ से लिखकर एक प्रार्थना–पत्र मुहम्मद साम के पास भेजा, जिसमें उसने अपने जबानी सुझाव को विस्तार के साथ प्रकट किया था।

मुहम्मद साम निश्चय पर पहुँच गया। मंत्री के प्रार्थना–पत्र पर साम ने लिख भेजा– 'अगर कभी पाटन शहर मेरे हाथ में आया तो बसाबुहीर की पाटनवाली जायदाद की कौड़ी–कौड़ी लूटकर अपने कब्जे में कर लूँगा– मेरा हक होगा; लेकिन उसकी जो जायदाद गजनी में है, उसे जब्त करना बटमारी के बराबर होगा और इनसाफ के बिल्कुल खिलाफ।'

G20 भारत 2023 INDIA | Bearth BANKING FOR A GREENER PLANET

बैंक ऑफ़ बड़ौदा
Bank of Baroda
विजया VIJAYA | देना DENA

त्यौहारों के इस मौसम में
गृह एवं कार ऋण पर **पाएं आकर्षक ब्याज दरें**

आपकी खुशियों की चाबी

#bobHomeLoan

@8.40% प्रति वर्ष

- शून्य प्रक्रिया शुल्क
- मैक्स सेवर गृह ऋण के साथ ब्याज दर में अतिरिक्त छूट

#bobCarLoan

@8.70% प्रति वर्ष

- शून्य प्रक्रिया
- निश्चित एवं फ्लोटिंग ब्याज दर

बॉब के संग त्यौहार की उमंग

शुभ भी. लाभ भी

त्यौहारी ऑफर्स के लिए स्कैन करें

*ऑफर सीमित अवधि के लिए वैध, शर्तें लागू

बैंक ऑफ़ बड़ौदा के त्यौहारी ऑफर्स के साथ पाएँ लाइफटाइम खुशी

MY FAMILY MY BANK	BARODA SALARY A/c	BOB BRO SB A/c	BARODA NRI POWERPACK	BOB LITE SB A/c	PERSONAL LOAN
• No Individual HAB/GAB • 10 bps Concession on Home & Car Loan	• Free Personal Accident Insurance upto ₹1 Cr • 10 bps Concession on Home & Car Loan and 50 bps Concession on Personal Loan	• Lifetime Zero Balance A/c for Age Group 16yrs to 25yrs • Exclusive Festive Offers on Top Brands • 15 bps Concession on Education Loan • Upto 7.50 Lakhs Collateral Free Education Loan	• International Airport Lounge Access • Free Health Check-up in India	• Lifetime Zero Balance A/c • Free Platinum RuPay Debit Card with Attractive Offers	• ROI Starts at 10.10% • Nil Processing Fee

बॉब डेबिट और क्रेडिट कार्ड पर त्यौहारी ऑफर्स

amazon.in | Ajio | bookmyshow | croma | cleartrip | Domino's | EaseMyTrip | JioMart | makemytrip | Myntra | MediBuddy | Paytm | Reliance Digital | Shoppers Stop | SWIGGY | TATA CLiQ | vijay sales | zomato

प्रेषक, प्रकाशक, मुद्रक कैलाशचन्द्र पंत, भोपाल द्वारा, स्वत्वाधिकारी मध्य प्रदेश राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल से प्रकाशित एवं श्रेया ऑफसेट, 4 लाजपत भवन, जोन-1, एम.पी.नगर, भोपाल से मुद्रित।